अध्ययन मण्डल

अध्यक्ष **संयोजक**
कुलपति **निदेशक समाज विज्ञान विद्याशाखा**
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी
1.प्रो0 अरविंद के जोशी, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी (उत्तर प्रदेश)
2.प्रो0 बी.मोहन कुमार, जी.बी.पंत कृषि व प्रोद्योगिकी विश्वविद्यालय, पंतनगर, उत्तराखण्ड

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

इकाई लेखन

1. **डा0 प्रवीन कुमार, समाजशास्त्र विभाग, एस.डी .पी जी .कॉलेज ,गाज़ियाबाद (उत्तर प्रदेश)**
2. **डॉ0 संतोष कुमारी, जैन कन्या पाठशाला (पी.जी) कॉलेज ,मुज्जफरनगर**
3. **डा0 अमित अग्रवाल, मोतीराम बाबूराम राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय,हल्द्वानी**
4. **डॉ0 अमित मलिक, डीएवी कॉलेज , मुज्जफरनगर**
5. **डॉ0 घनश्याम जोशी, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी**
6. **डॉ0 नीरजा सिंह, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय,हल्द्वानी**

संपादन

डॉ0 दीपक पालीवाल, सहायक प्राध्यापक समाजशास्त्र, उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

कापीराइट @ उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय

प्रकाशन वर्ष- 2020

प्रकाशन- उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी- 263139

सर्वाधिक सुरक्षित। इस प्रकाशन का कोई भी अंश उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी

MASO-504

ग्रामीण समाजशास्त्र - I
RURAL SOCIOLOGY – I

Block 1	**Rural Sociology-Introduction and Concept**	
Unit 1:	Concept of Rural Sociology, Origin and Development and Scope ग्रामीण समाजशास्त्र की अवधारणा, उत्पत्ति एवं विकास और क्षेत्र	पृष्ठ–1-19
Unit2:	Subject matter, methods and Tools of Rural Sociology ग्रामीण समाजशास्त्र की विषय वस्तु, पद्धति, प्रविधि एव उपकरण	पृष्ठ–21-41
Unit3:	Rural-Urban Continuum-differences and Linkages ग्रामीण–नगरीय सातत्य– विभिन्नता एवं सम्बद्धता	पृष्ठ–42-56
Block 2	**Basic Concepts of Rural Sociology**	
Unit 4:	Indian Rural Community भारतीय ग्रामीण समुदाय	पृष्ठ–57-78
Unit 5:	Little Community, Peasant Society and Folk Culture लघु समुदाय, कृषक समाज और लोक संस्कृति	पृष्ठ–79-99
Unit 6:	Little and Great Tradition लघु एवं वृहत् परम्पराएं	पृष्ठ–100-111
Unit 7:	Parochialisation and Universalization स्थानीयकरण एवं सार्वभौमिकरण	पृष्ठ–112-125
Block 3	**Rural Social Structure and Institutions**	
Unit 8:	Rural Social Structure in India-Concept, Changes in rural social structure भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना–अवधारणा, ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवर्तन	पृष्ठ–126-144
Unit 9	Rural Social Institutions-Family, Kinship and Marriage	पृष्ठ–145-176

	ग्रामीण सामाजिक संस्थाऐं–परिवार, नातेदारी और विवाह	
Unit 10	Rural Social Stratification-Inter-caste relations and jajmani system ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण : अन्तर्जातीय सम्बन्ध और जजमानी व्यवस्था	पृष्ठ–177-202
Unit 11	Dominant caste and Rural Factions प्रभु जाति और ग्रामीण गुट	पृष्ठ–203-216
Unit 12	Rural Power Structure and Leadership ग्रामीण भाक्ति संरचना और ग्रामीण नेतृत्व	पृष्ठ–217-238

इकाई– 1 ग्रामीण समाजशास्त्र की अवधारणा, उत्पत्ति एवं विकास और क्षेत्र
(Concept of Rural Sociology, Origin and Development and Scope)

इकाई की रूपरेखा

1.1 उद्देश्य
1.2 प्रस्तावना
1.3 ग्रामीण समाजशास्त्र की अवधारणा
1.4 ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा
1.5 ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास
1.5(i) अमेरिका में ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास
1.5(ii) भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र की उतपत्ति एवं विकास
1.5(ii) (अ) स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास
1.5(ii) (ब) स्वतन्त्रता के पश्चात भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र का विकास
1.6 ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र की अवधारणा
1.6(i) ग्रामीण समाजशास्त्र का क्षेत्र
1.6(ii) ग्रामीण समाजशास्त्र के क्षेत्र की समीक्षा
1.7 सारांश
1.8 शब्दावली
1.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
1.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.12 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

- समझ पायेंगे कि वास्तविक रूप में ग्रामीण समाजशास्त्र क्या है।
- ग्रामीण समाजशास्त्र का अर्थ एवं परिभाषा के बारे में जान सकेंगे।
- ग्रामीण समाजशास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास के बारे में जान सकेंगे।

- ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के बारे में जान सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना

गाँव' मानव के सामूहिक जीवन का प्रथम पालना है। मानव ने सबसे पहले जब सामूहिक रूप में रहना प्रारम्भ किया तो गाँव ही उसके निवास स्थान रहे। संसार की अधिकां"ा जनसंख्या आरम्भ से लेकर अब गाँवों में ही बसी है। समाज"ाास्त्र में अध्ययन की सुविधा के लिए समय–समय पर अनेक शाखाओं और उप"ााखाओं की स्थापना की गई। आदिम समाजों के समाज"ाास्त्रीय अध्ययन के लिये सामाजिक मानव"ाास्त्र की स्थापना की गई। समाज से सम्बन्धित मनोवैज्ञानिक पक्ष का गहन अध्ययन करने के लिए सामाजिक मनोविज्ञान एक वि"िाष्ट विषय के रूप में विकसित हुआ। इसी क्रम में ग्रामीण समाजों का समाज"ाास्त्रीय दृष्टिकोण वि"िाष्ट, गहन एवं सारगर्भित अध्ययन करने के लिए ग्रामीण समाज"ाास्त्र विषय की स्थापना की गई। ग्रामीण समाज"ाास्त्र का मुख्य उद्दे"य ग्रामीण समाजों का समाज"ाास्त्रीय परिप्रेक्ष्य से अध्ययन करके इन समाजों को सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, प्रकार्य और उनमें होने वाले परिवर्तनों का गहन अध्ययन करना व उनसे सम्बन्धित समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्तों का निर्माण करना है।

1.3 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अवधारणा

शाब्दिक दृष्टिकोण से 'ग्रामीण समाज"ाास्त्र' 'ग्रामीण' (Rural) एवं 'समाज"ाास्त्र' (Sociology) दो शब्दों से मिलकर बना है जिसका अर्थ हुआ, ग्रामीण समाज"ाास्त्र, समाज"ाास्त्र की वह शाखा है। जो ग्रामीण जीवन, ग्रामीण समूहों, ग्रामीण सम्बन्धों एवं ग्रामीण जगत का वैज्ञानिक अध्ययन करती हैं। अनेक समाजवेताओं ने ग्रामीण समाज"ाास्त्र को परिभाषित करने का प्रयास किया जिसे निम्न प्रकार से स्पष्ट किया गया है–

1.4 ग्रामीण समाज"ाास्त्र का अर्थ एवं परिभाशा

एफ0 स्टुअर्ट चैपिन अपनी पुस्तक '**Social Structure in Rural Society**' में ग्रामीण समाज"ाास्त्र को परिभाषित करते हुए लिखते है कि ''ग्रामीण जीवन का समाज"ाास्त्र ग्रामीण जनसंख्या, ग्रामीण सामाजिक संगठन और ग्रामीण समाज में कार्यरत सामाजिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है'' स्टुअर्ट चैपिन इस परिभाषा में तीन महत्वपूर्ण बातों का स्पष्ट करते है–

1. **ग्रामीण सामाजिक संगठन**– जिसमें गाँवों की संरचनात्मक एवं प्रकार्यात्मक अध्ययन पर जोर दिया गया है।
2. **ग्रामीण जनसंख्या**– जिसमें गाँवों के जनसंख्यात्मक आधार, स्त्री–पुरुष अनुपात, घनत्व एवं जनसंख्या वितरण के अध्ययन पर जोर दिया गया है।

3. **सामाजिक प्रक्रियाएं**– जिसमें ग्रामीण जनसंख्या में पाई जाने वाली वि"ोष संगठनात्मक एवं विघटनात्मक सामातजिक प्रक्रियाओं के अध्ययन पर जोर दिया गया है जैसे सहयोग, अनुकूलन, प्रतिस्पर्द्धा आदि।

टी0 लीन स्मिथ अपनी पुस्तक **The Sociology of Rural Life** में लिखते ह 'ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों के व्यवस्थिति ज्ञान को ही हम सही अर्थों में ग्रामीण जीवन का समाज"ाास्त्र कह सकते है इस के अलावा स्मिथ अन्य स्थान पर लिखते है 'ग्रामीण समाज"ाास्त्र अथवा उत्तम रूप में ग्रामीण जीवन का समाज"ाास्त्र ज्ञान की व्यवस्थित शाखा है जो ग्रामीण समाज, इसके संगठन और संरचना तथा इसकी प्रक्रिया में वैज्ञानिक विधि के परिणामस्वरूप पनपी है।'

जे0बी0 चिताम्बर अपनी पुस्तक **Introductory Rural Sociology'** में लिखा लिखा है कि 'ग्रामी समाज"ाास्त्र को एक ऐसे वैज्ञानिक अध्ययन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है, जो ग्रामीण मानव का उन समूहों के संदर्भ में अध्ययन करता है, जिन समूहों के मध्य वह ग्रामीण मानव अन्तःक्रिया करता है।'

डी0 सेण्डरसन अपनी पुस्तक '**Rural Sociology and Social Organization**' में लिखते है 'ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में निहित जीवन का समाज"ाास्त्र है।'

लोरी नेलसन ने अपनी पुस्तक '**Rural Sociology**' में लिखते है 'ग्रामीण समाज"ाास्त्री की विषय–सामग्री विभिन्न प्रकार के समूह जैसे वे ग्रामीण पर्यावरण में पाये जाते है, का विवेचन एवं वि"लेषण है।'

डॉ0 ए0आर0 देसाई ने अपनी प्रतिष्ठित पुस्तक '**Rural Sociology in India**' में ग्रामीण समाज"ाास्त्र की परिभाषा न प्रस्तुत करके इसके उद्दे"यों के आधार पर स्पष्ट किया है–

1. ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में मानवीय सम्बन्धों का अध्ययन करता है।
2. ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अन्तर्गत ग्रामीण समूहों, ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाओं एवं अन्तःक्रियाओं, ग्रामीण सामाजिक संरचना, एवं संगठन आदि का व्यवस्थित अध्ययन किया जाता है।
3. ग्रामीण समाज"ाास्त्री सम्पूर्ण ग्रामीण–जीवन का ही विज्ञान है।
4. यह केवल सैद्धान्तिक ज्ञान ही नहीं वरन् ग्रामीण समस्याओं के निराकरण, ग्रामीण पुनर्निर्माण और उत्थान में व्यावहारिक योगदान देने वाला विज्ञान भी है।

ऊपर हमने ग्रामीण समाज"ाास्त्र की कुछ विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं प्रस्तुत की है यदि हम इन परिभाषाओं का सारगर्भित वि"लेषण करें तो हम देखेगें कि ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण समाज का वैज्ञानिक अध्ययन करता है इसे हम और अधिक स्पष्ट करने के लिए निम्न बिन्दुओं में प्रस्तुत कर सकते है–

1. ग्रामीण समाज"ाास्त्र, समाज"ाास्त्र की एक शाखा है।

2. ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण पर्यावरण में रहने वाले लोगों का अध्ययन करता है।

3. ग्रामीण समाज"ाास्त्र का मुख्य सम्बन्ध ग्रामीण सामाजिक संगठन उसकी संरचना, प्रकार्यों, सामाजिक प्रतिमानों एवं प्रक्रियाओं से है।

4. एक प्रकार से ग्रामीण समाज"ाास्त्र गाँव में रहने वाले लोगों के सामाजिक जीवन के समस्त पक्षों के अध्ययन से सम्बन्धित है।

5. समाज"ाास्त्र की अपेक्षा ग्रामीण समाज"ाास्त्र, ग्रामीण समुदायों के व्यवहारिक जीवन से सम्बन्धित होने के कारण अधिक व्यावहारिक है इस प्रकार से ग्रामीण समाज"ाास्त्र मूलतः ग्रामीण सामाजिक जीवन, प्रतिमानों, प्रक्रियाओं एवं व्यवहारों का अध्ययन है।

1.5 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास

ग्रामीण समाज से पूर्व की अवस्था वाले समाज आदिम समाज, जनजातीय समाज, आखेटक समाज, मछलीपालक समाज, गिरिजन, घुमन्तू प"ुपालकों अनकानेक प्रकार के समाज देखे जा सकते है। इन समाजों का अध्ययन सामाजिक मानव"ाास्त्र करता है। जब मानव ने कृषि करना प्रारम्भ किया, एक स्थान पर स्थाई रूप से रहने लगा तब ग्रामों का विकास हुआ। मानव के विभिन्न समाजों के क्रम में आदिम समाज, ग्रामीण समाज, कस्बाई समाज, नगरीय समाज, औद्योगिक समाज, महानगरीय समाज के रूप में रहा है तथा इसी क्रम में समाज"ाास्त्र में अनेक शाखाओं की उत्पत्ति और विकास हुआ है। गाँवों का इतिहास तो प्राचीन है लेकिन ग्रामीण समाज"ाास्त्र का इतिहास 19वीं शताब्दी से स्पष्ट देखा जा सकता है। इस प्रकार जब से ग्रामीण समाज का क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन वैज्ञानिक विधियों से प्रारम्भ हुआ सिम्स ने अपनी पुस्तक 'ऐलिमेन्ट्स ऑफ रूरल सो"ायोलॉजी' में लिखा है 'जिस समय सामान्य समाज"ाास्त्र का जन्म हुआ शहरी जीवन समस्याओं से आक्रान्त था, उसी प्रकार से ग्रामीण समाज"ाास्त्र का जन्म भी उसी समय हुआ जब ग्रामीण जीवन अत्यधिक असन्तुलित हो गया था। वर्तमान में ग्रामीण समाज"ाास्त्र का उदय आव"यकता की ही देन है। चार्ल्स होफर इस सम्बन्ध में लिखते है 'ग्रामीण समाज"ाास्त्र अन्य सभी विज्ञानों के समाज किसी आव"यकता के परिणामस्वरूप विकसित हुआ है। वैज्ञानिक विचारों के क्षेत्र में यह एक मूल तथ्य है कि जब कभी मानव मस्तिष्क को विचलित कर देने वाली घटनाओं का वर्तमान विज्ञानों अथवा पद्धतियों द्वारा सन्तोषप्रद अध्ययन नहीं किया जाता, उसी समय कोई न कोई विज्ञान प्रका"ा में आता है' यही बात हम ग्रामीण समाज"ाास्त्र के बारे में भी कह सकते है।

19वीं शताब्दी घटनाओं ने गाँवों में अनेक समस्याएं पैदा कर दी थी जिसके परिणामस्वरूप ग्रामीण समाज"ाास्त्र की स्थापना हुई। ये प्रमुख घटनाएं– म"ाीनों द्वारा उत्पादन, पूँजीवादी अर्थव्यवस्था का उदय, औद्योगिकरण एवं नगरीकरण की प्रक्रिया में तेजी, यातायात एवं संचार के साधनों का तीव्र गति से विकास और विस्तार आदि। जिसके कारण अनेक विद्वानों का ध्यान गाँवों के अध्ययन की और गया जिसका परिणाम स्वरूप ग्रामीण समाज"ाास्त्र एक विषय के रूप में सामने आया।

1.5(i) अमेरिका में ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उतपत्ति और विकास

ग्रामीण समाज"ाास्त्र विषय की उतपत्ति और विकास में अमेरिका के विद्वानों का वि"ोष योगदान रहा है। अमेरिका में ग्रामीण समाज"ाास्त्र का विकास 19वीं शताब्दी में मानवतावादी द"ार्न के कारण हुआ। 1890 से 1920 की अवधि में अमेरिका के गाँवों में भूमि का मूल्य बहुत बढ़ गया था, भू–स्वामियों का वर्चस्व बढ़ गया। किसानों की भूमि छिन गई, लोग गाँव छोड़कर नगरों की तरफ पलायन कर रहे थे। गाँव विरान एवं नष्ट हो रहे थे।

दे"ा में अनाज की कमी का डर पैदा हो गया सिम्स कहते है कि अमेरिका में यह 'सम्पूर्ण काल ग्रामीण सामाजिक पतन का काल था' ग्रामीण समस्याओं को हल करने एवं ग्रामीण लोगों का भला करने की लोगों में इच्छा जागृत हुई और सर्वप्रथम पादरियों ने यह कार्य प्रारम्भ किया। बाद में विभिन्न विद्वानों, अध्यापकों आदि ने ग्रामीण साहित्य का सृजन किया। यही वह समय था जब ग्रामीण समाज"ाास्त्र का जन्म हुआ। इस साहित्य ने अमेरिका में ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन को सम्भव बनाया। अमेरिका के कई कॉलेजों और वि"वविद्यालयों में ग्रामीण समाज"ाास्त्र का विधिवत अध्ययन प्रारम्भ किया गया जिनमें ि"ाकागो वि"वविद्यालय, मिि"ागन वि"वविद्यालय मिि"ागन स्टेट कॉलेज, उत्तरी इकोटा वि"वविद्यालय कोलम्बिया वि"वविद्यालया, हावार्ड वि"वविद्यालय तथा विसकान्सिका वि"वविद्यालय वि"ोष रूप से उल्लेखनीय है। 1908 में डीन वैली की अध्यक्षता में 'ग्रामीण जीवन आयोग' की नियुक्ति अमेरिका के राष्ट्रपति रूजबेल्ट ने ग्रामीण एवं कृषि जीवन की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए की। इस आयोग का प्रतिवेदन ग्रामीण समाज"ाास्त्र के लिए 'अधिकार–पत्र' सिद्ध हुआ। 1906 से 1912 के बीच कोलम्बिया वि"वविद्यालय में भी ग्रामीण समाज"ाास्त्र से सम्बन्धित कई शोध–लेख प्रकाि"ात हुए जो क्षेत्रीय साक्षात्कार पद्धति पर आधारित एवं आँकड़ों से परिपूर्ण थे। जे0एन0 विलियम्स ने 'अमेरिकन कस्बा', बी0एच0 विल्सन ने 'क्लेवर पहाड़ी' एन0एल0 सिम्स ने 'एक हुजियर ग्राम' आदि रचनाएं प्रकाि"ात की जो क्षेत्रीय साक्षात्कार पद्धति पर आधारित थी। गेलपिन ने 'कृषक समुदाय का सामाजिक शरीर रचना"ाास्त्र' नामक प्रस्तुत लिखी।

कॉलेज पाठ्यक्रम के लिए 1916 में जे0एम0 गिलेट ने प्रथम पुस्तक लिखी। 1917 में अमेरिका में 'सोि"ायोलॉजिकल सोसाइटी' के अन्तर्गत ग्रामीण समाज"ाास्त्र पर एक अलग विभाग की स्थापना की गयी। अमेरिकन सरकार ने राज्यों को ग्रामीण समाजों के अध्ययन में सहायता देने के लिए 1925 में पुरनेल अधिनियम बनाया। 1936 में 'रूरल सोि"ायोलॉजी' त्रैमासिक पत्रिका प्रारम्भ हुई तथा 1937 में रूरल 'सोि"ायोलॉजिकल सोसाइटी' की स्थापना हुई। इससे ग्रामीण समाज"ाास्त्र विषय का तेजी से प्रचार और प्रसार हुआ जिसका प्रभाव द्वितीय महायुद्ध के बाद संसार के विभिन्न राष्ट्रों में देखा जा सकता है। संयुक्त राष्ट्र संघ ने ग्रीस, इटली, जापान, दक्षिण अमेरिका व अन्य अनेक राष्ट्रों के किए गए ग्रामीण सामाजिक अध्ययनों को प्रकाि"ात किया ग्रामीण समाज"ाास्त्र के विकास में उल्लेखनीय योगदान में नेल्सन की 'रूरल सोि"ायालॉजी' लूमिस और बौगल की रूरल सोि"ायोलॉजी, बरट्राण्ड की 'रूरल सोि"ायोलॉजी तथा कोब एवं ब्रूनर की 'ए स्टडी ऑफ रूरल सोसायइटी' वि"वविख्यात पुस्तकें है ग्रामीण

समाज"ाास्त्र के विकास एवं प्रसार में अमेरिका के वैज्ञानिक सोरोकिन, जिमरमैन, टेलर, लेण्डिस, रार्बट रेड फील्ड, स्मिथ, कोल्ब, ब्रेनर आदि का योगदान वि"ोष उल्लेखनीय रहा है।

1.5(ii) भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उत्पत्ति और विकास

2011 की जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार भारत की 68.8 प्रति"ात जनसंख्या 6.41 लाख गाँवों में निवास करती है। इसीलिए भारत को गाँवों का दे"ा कहा जाता है भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का आधार यहाँ के गाँव ही रहे है। हमारे प्राचीन धर्म ग्रन्थों, वेदों, पुराणों, स्मृतियों एवं संहिताओं में ग्रामीण जीवन के विभिन्न पलों पर विस्तार से चर्चा मिलती है रचनाकारों एवं कवियों ने ग्रामों की अपने साहित्य में प्र"ांसा की है तथा उनकी स्वर्ग से तुलना की है। किन्तु पिछली दो शताब्दियों में कुछ ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएं घटी जिससे गाँवों का प्राचीन स्वरूप बदल गया। औद्योगीकरण, नगरीकरण व यातायात के विकसित साधनों ने ग्रामीण जीवन को प्रभावित किया और आर्थिक दृष्टि से स्वावलम्बी गाँव परावलम्बी हो गये। सुसंगठित गाँवों में विघटन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई, लोग नगरीय चमक एवं सुविधाओं की और आकष्रित हुए और गाँव छोड़कर शहर की और पलायन होने लगे। गाँवों में गरीबी, बेकारी, ऋणग्रस्तता एवं कृषि से सम्बन्धित अनेक समस्याओं ने जन्म लिया। अंग्रेजी शासन काल में गाँवों की बिगड़ती द"ाा पर कोई ध्यान नहीं दिया गया और गाँव की हालत बद से बदतर होती गयी। हम भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र के विकास को दो भागों में बाँट सकते है।

(अ) स्वतन्त्रता से पूर्व भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र का विकास

भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान 19वीं सदीं में ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित कुछ अध्ययन हुए जिनका उद्दे"य ग्रामीण पुनर्निर्माण, सुधार या कल्याण करना नहीं अपितु राजनैतिक लाभ प्राप्त करना था इन अध्ययनों का एक लाभ यह अव"य हुआ कि इनके द्वारा स्थापित प्रारूपों ने आगे होने वाले अध्ययनों का मार्गद"ान किया और ग्रामीण अध्ययन की रूपरेखा प्रस्तुत की विलियम टेनेण्ट द्वारा प्रका"ित पुस्तक 'इण्डियन रिक्रिए"ान' सन 1803 लिखी जो ग्रामीण पारिवारिक एवं आर्थिक जीवन का विवरण देती है। वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से यह पुस्तक चाहे अपूर्ण ही थी लेकिन प्रारम्भिक प्रयत्न के रूप में यह एक उपयोगी दस्तावेज था। सन् 1861 में सर हेनरीमेन की 'एनी"ियन्ट लॉ' नामक पुस्तक प्रका"ित हुई जिसमें भारतीय गाँवों की सामाजिक–आर्थिक समस्याओं एवं भूमि व्यवस्था पर प्रका"ा डाला गया। भारत में प्रारम्भिक ग्रामीण अध्ययन कर्ताओं में गिलबर्ट स्लेटर, हैराल्ड एच0 मैन तथा चार्ज ग्रियर्सन के नाम वि"ोष रूप से उल्लेखनीय है इनके वि"वसनीय अध्ययनों के कारण ही इन्हें भारतीय ग्रामीण का जन्मदाता माना जाता है।

(ब)स्वतन्त्रता के प"चात भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र का विकास

भारत ने 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्त की। नई सरकार ने गाँवों की बिगड़ती द"ाा को सुधारने का नि"चय किया। 1951 में 82.7 प्रति"ात जनसंख्या गाँवों में निवास करती थी। महात्मा गाँधीजी ने कहा था। दिल्ली भारत नहीं है भारत तों गाँवों में बसता है। अतः यदि हमें भारत को उन्नत करना है तो गाँवों की द"ाा सुधारनी होगी। उन्होंने नारा दिया था 'गाँवों को वापस चलो'

इस कारण भारत सरकार ने ग्रामीण पुनर्निर्माण के लिए सामुदायिक विकास योजना का शुभारम्भ किया। भारत सरकार के अतिरिक्त अनेक अर्थ"ाास्त्रियों, समाज"ाास्त्रियों सांख्यिकी वैत्ताओं, राजनीति"ाास्त्रियों एवं बुद्धिजीवियों ने गाँवों की समस्याओं की और ध्यान दिया और अपना अध्ययन कार्य किया। भारत में यही से ग्रामीण समाज"ाास्त्र की पृष्ठभूमि तैयार हुई। भारत सरकार ने ग्रामीण जनता के लिए अनेक कल्याणकारी योजनाओं प्रारम्भ की। पंचवर्षीय योजनाएं, सामुदायिक विकास योजना, समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, सहकारिता, भूदान, ग्रामदान एवं सर्वोदयी योजनाओं के द्वारा गाँवों की कायाकल्प करने का प्रयास किया गया है। सफलतापूर्वक विकास कार्यक्रमों को लागू करने के लिए गांवों की जानकारी उपलब्ध होना आव"यक है ए0आर0 देसाई इस सम्बन्धित कहते है ''ग्रामीण सामाजिक संगठन इसके ढाँचे (संरचना) कार्य व उद्विकास का व्यवस्थित अध्ययन केवल आव"यक ही नहीं हो गया वरन् स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद अनिवार्य भी हो गया है'' आज हम सभी यह महसूस करने लगे है कि ग्रामीण भारत की उन्नति एवं विकास के लिए ग्रामीण जीवन का वैज्ञानिक एवं व्यवस्थित अध्ययन का होना आव"यक है बुद्विजीवियों ने ग्रामीण अध्ययनों के प्रति पिछले कुछ वर्षों में रूचि दिखाई है तथा अनेक विद्वानों ने भारत के विभिन्न गाँवों का अध्ययन किया है। ये अध्ययन सामुदायिक विकास योजनाओं, कृषि समस्याओं, औद्योगीकरण एवं नगरीकरण के प्रभावों, कृषक समाजों, ग्रामीण नेतृत्व, गाँवों की बदलती सामाजिक संरचना (परिवार, जाति, नेतेदारी में परिवर्तन आदि) से सम्बन्धित रहे है। इसके भारत के ग्रामीण समाज के बारे में जानकारी प्रदान करने वाली आज अनेक पुस्तकें, पत्र पत्रिकाएं एवं संस्थाएं हैं जिनमें मुख्यतः राज्यों के राज–पत्र, जनगणना रिपोर्ट, राज्य एवं केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रका"ित की जाने वाली विज्ञप्तियाँ, पिछड़ा वर्ग, अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों की रिपोर्ट, राजय एवं केन्द्र की समाज कल्याण बोर्ड की रिपोर्ट एवं प्रका"ान तथा विभिन्न संस्थाओं एवं सरकारों द्वारा किये गये आर्थिक सांख्यिकी एवं सामाजिक सर्वेक्षण आदि प्रचुर मात्रा में ग्रामीण सामग्री उपलब्ध है। इस के अलावा भारत सरकार के प्रयासों से भारतीय गाँवों का अध्ययन करने के लिए कुछ विदे"ाी समाज"ाास्त्रियों मोरिस ओपलर, मेण्डलबाम, मैकिम मैरियट रोजर्स, श्रम आदि को अध्ययन के लिए आमन्त्रित किया गया। इन विद्वानों ने भारतीय संस्कृति एवं गाँवों का विदे"ाी संस्कृतियों एवं गाँवों से तुलनात्मक अध्ययन प्रसतुत किया। ऑस्कर लेविस नें मैक्सिकों तथा भारत के दो गाँवों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। ग्रामी समाज के बारे में सामग्री संकलन में 'भारतीय ग्रामीण समाज' नामक संस्था ने भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

इसके अतिरिक्त अनेक वार्षिक, अर्द्धवार्षिक, त्रैमासिक, मासिक एवं परिक्षक पत्र–पत्रिकाएं समय–समय पर ग्रामीण क्षेत्रों के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान करती है। इनमें कुरूक्षेत्र, ग्राम सेवक, योजना आर्थिक समीक्षा, रूरल इण्डिया, इकोनॉमिक एण्ड पोलिटिकल वीकली आदि प्रमुख है। इसके अलावा विभिन्न विद्वानों ग्रामीण समाज से सम्बन्धित पुस्तकें बहुत महत्वपूर्ण है जो इस प्रकार से है एस0सी0 दुबे की 'इण्डियन विलेज' डी0एन0 मजूमदार की सम्पादिक पुस्तके 'रूरल प्रोफाइल, मैकिम मैरियट की सम्पादित पुस्तक विलेज इण्डिया', एम0एन0 श्रीनिवास की सम्पादित 'इण्डियाज विलेजेज' एस0सी0 दुबे; इण्डियाज चेन्जिंग विलेजेज, एम0एन0 श्रीनिवास सो"ायल सिस्टम ऑफ ए मैसूर विलेज, रिमेम्बर विलेज, डी0एन0 मजूमदारः कास्ट एण्ड कम्यूनिके"ान इन एन इण्डियन विलेज, राधाकमल मुखर्जी द इकॉनोमिक्स ऑफ रूरल सोसायटी और सिक्स

विलेजेज ऑफ बंगाल, ए0आर0 देसाईः रूरल सोि"ायोलॉजी इन इण्डिया (सम्पादिक) एफ0जी0 वेली कास्ट खण्ड द इकॉनोमिक फ्रन्टियर इसके अतिरिक्त और भी अनेक पुस्तकें प्रकाि"ात हुई लेकिन सभी का यहाँ पर वर्णन करना सम्भव नहीं है।

वर्तमान में पी–एच0डी0 डिग्री के लिए, एम0फिल0 एवं एम0ए0 के डिजरटे"ान के लिए अनेक छात्रों ने अपने अध्ययनों द्वारा ग्रामीण समाज पर शोध प्रबन्ध लिखे है अतः आज भारतीय ग्रामीण जीवन पर जानकारी देने वाला प्रचुर साहित्य उपलब्ध है। फिर भी भारतीय गाँवों की बनावट, भाषा, जाति, भौगोलिक स्थिति, धर्म, संस्कृति में पर्याप्त रूप से भिन्नता होने के कारण कोई भी अध्ययन सम्पूर्ण भारतीय गाँवों का अध्ययन प्रतिनिधि नहीं कहा जा सकता है। अतः इस बात की आव"यकता है कि अधिक मात्रा में क्षेत्रीय अध्ययन हो जिसकी सहायता से उस क्षेत्र वि"ोष की समस्याओं के कारणों का पता लगाया जा सके तथा उनके निर्वाण के लिए सफल प्रयास किये जा सके। सभी गाँवों पर एक–सी योजना लागू करना केन्द्र सरकार की योजना की सफलता को सन्दिग्ध बना देता है इतना ग्रामीण साहित्य उपलब्ध होने पर भी अभी अनके भारतीय वि"वविद्यालयों में ग्रामीण समाज"ाास्त्री को एक पृथक विषय के रूप में मान्यता नहीं दी गयी है इसे अर्थ"ाास्त्र, समाज"ाास्त्र, सो"ाल वर्क, कृषि विज्ञान के अन्तर्गत ही पढ़ाया जा रहा है।

वर्तमान द"ाक में कुछ वि"वविद्यालयों में यह पृथक विषय के रूप में पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया है। वर्तमान समय में आव"यकता इस बात की है कि भारतीय ग्रामीण समाज पर उपलब्ध साहित्य का संकलन कर उसका समन्वय किया जाए और उचित निष्कर्ष निकाले जायें तथा ग्रामीण जीवन की समुचित व्याख्या प्रस्तुत की जाए, उसके अतीत और वर्तमान तथा विकास के नियमों को ज्ञात किया जाए। ऐसी स्थिति में ही गाँवों का उज्जवल भविष्य के निर्माण में ग्रामीण समाज"ाास्त्र अपनी भागेदारी दे सकेगा।

1.6 ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र की अवधारणा

ग्रामीण समाज"ाास्त्री, गामीण पर्यावरण में पाये जाने वाले समस्त सामाजिक सम्बन्धों का अध्ययन करता है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या ग्रामों के प्रकार, ग्रामों के वर्गीकरण, ग्रामीण परिवार, ग्रामीण आर्थिक संस्थाएं, ग्रामीण व्यवसाय, कृषि एवं उत्पादन के ढंग, ग्रामीण जनसंख्या का भूमि से सम्बन्ध, ग्रामीण जीवन–स्तर, ग्रामीण विवाह, ग्रामीण सामाजिक स्तरण, वर्ग एवं जातियाँ, राजनीतिक संस्थाएं, ग्राम पंचायतें, ग्रामीण नेतृत्व, ग्रामीण स्वायन्तशासन ग्रामीण धर्म, ग्रामीण रीति–रिवाज, ग्रामीण लोक–गीत, ग्रामीण नृत्य, ग्रामीण मनोरंजन के अन्य साधन, ग्रामीण कला, ग्रामीण जीवन पर स्तर सामाजिक तत्वों का प्रभाव, ग्राम एवं नगर का सम्बन्ध, नवीन विचारधाराओं का प्रभाव, समुदायिक विकास योजना आदि का अध्ययन आता है।

1.6(i) ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र

ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में स्मिथ और नेल्सन ने क्रम से निम्न विचार व्यक्त किए हैं–

टी0एल0 स्मिथ विचार– स्मिथ ने 'द सोि"ायोलॉजी ऑफ रूरल लाइफ' में ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन–क्षेत्र को तीन भागों में वर्गीकृत करके स्पष्ट किया है–

ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र

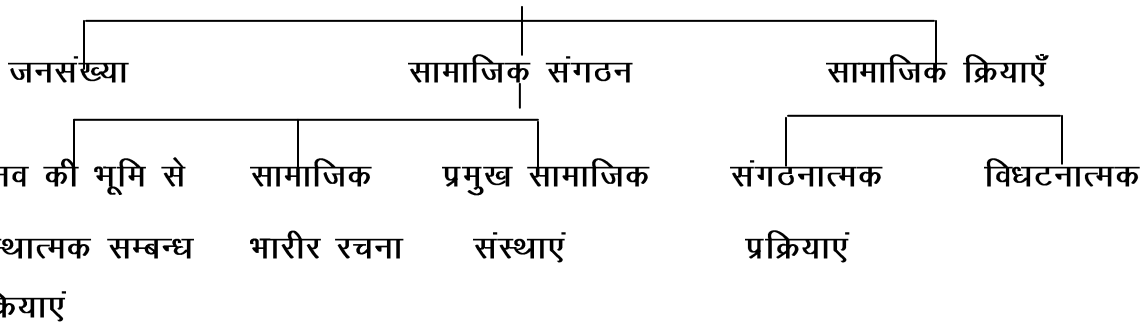

1. जनसंख्याः– आपका कहना है कि ग्रामीण जीवन को समझने के लिए ग्रामीण जनसंख्या के अध्ययन को महत्त्व देना चाहिए क्योंकि ग्रामीण समाज और ग्रामीण जीवन ग्रामीण जनसंख्या के लक्षणों के ज्ञान पर आधारित होता है। इसलिए ग्रामीण जनसंख्या का वितरण घनत्व, वृद्धि, शारीरिक एवं मानसिक वि"ोषताएं, जनसंख्या का आगमन–निगमन आदि का अध्ययन करना चाहिए।

2. ग्रामीण सामाजिक संगठनः– इसके अन्तर्गत स्मिथ ने निम्न तीन का अध्ययन सम्मिलित किया है–

2.1 मानव का भूमि से संस्थात्मक सम्बन्ध– इसके अन्तर्गत आपने भूमि का सर्वेक्षण, निवास के प्रतिमान, भूमि अधिकार, भू–स्वामित्व का आकार एवं कृषि व्यवस्था आदि के अध्ययन को सम्मिलित किया है।

2.2 सामाजिक भारीर रचना– इसमें आपने सामाजिक विभेदीकरण एवं सामाजिक संस्तरण को सम्मिलित किया है।

2.3 प्रमुख सामाजिक संस्थाएं– इसमें आपने धर्म राजनीति तथा सरकार, ि"ाक्षा आदि का अध्ययन रखा है।

3. सामाजिक प्रक्रियाएंः– स्मिथ ने ग्रामीण समाज की संगठनात्मक और विघटनात्मक प्रक्रियाओं, जैसे– सहयोग, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष व्यवस्थापन, एकीकरण, संस्कृतिकरण, सामाजिक गति"ाीलता जैसे–सहयोग, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष व्यवस्थापन, एकीकरण, संस्कृतिकरण, सामाजिक गति"ाीलता आदि को रखा है।

स्मिथ ने इन उपर्युक्त वर्णित क्षेत्रों के अतिरिक्त सामाजिक परिवर्तन तथा सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों एवं ग्रामीण सामाजिक समस्याओं के अध्ययन को भी ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत रखने का सुझाव दिया है।

लॉरी नेल्सन के विचार– नेल्सन ने अपने लेख 'रूरल सोि"ायोलॉजी–डाइमेन"ानस् एण्ड हॅराइजन्स्', जर्नल ऑफ रूरल सोि"ायोलॉजी में ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन क्षेत्र को निमन तीन वर्गों में विभाजित किया है।

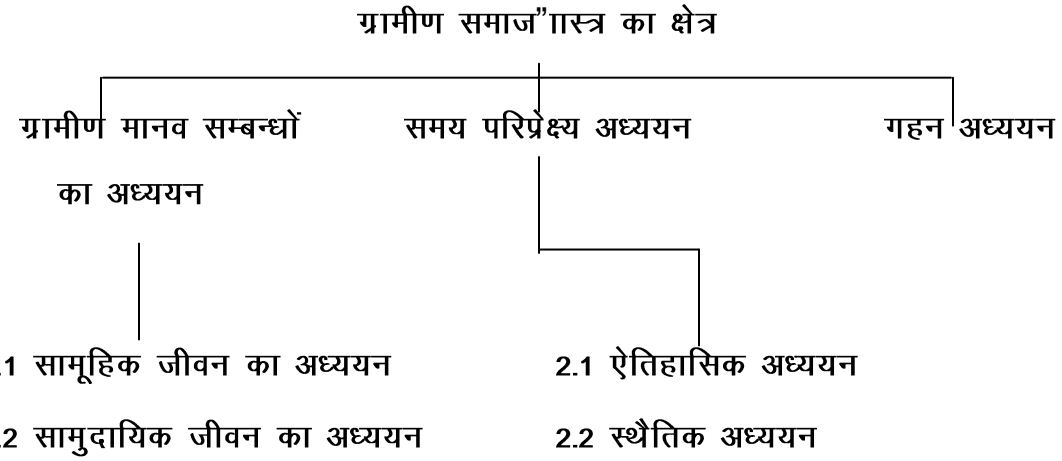

1. ग्रामीण मानव के सम्बन्धों का अध्ययनः– इसके अन्तर्गत ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण मानव के सामूहिक जीवन, पारस्परिक सम्बन्धों, विभिन्न प्रकार के समूहों की रचना एवं उनके कार्यों का अध्ययन करता है। इस दृष्टिकोण से इसका क्षेत्र सामूहिक जीवन के सभी क्षेत्रों से सम्बन्धित है जो सम्पूर्ण वि"व में पाए जाने वाले विभिन्न ग्रामीण समूहों का अध्ययन करते हैं। इस प्रकार नेल्सन के अनुसार ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र– (1) ग्रामीण क्षेत्रों के सामूहिक जीवन, (2) सामुदायिक जीवन, एवं (3) मानव जाति के सामाजिक जीवन तीनों का अध्ययन करना है।

2. समय परिप्रेक्ष्य अध्ययनः– नेल्सन का कहना है कि समय परिप्रेक्ष्य के अनुसार ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र व्यापक होना चाहिए अर्थात् इसे वर्तमान ग्रामीण समाजों के अध्ययन के साथ–साथ इन समाजों की उत्पत्ति ओर विकास का ऐतिहासिक अध्ययन भी करना चाहिए। इस विज्ञान को ग्रामीण समाजों की वि"ोषताओं का विभिन्न कालों में भी अध्ययन करके इस विषय को पूर्णता प्रदान करनी चाहिए।

3. गहन अध्ययनः– नेल्सन ने लिखा है कि ग्रामीण समाज"ाास्त्र को उन सभी विषयों का गहनता से अध्ययन करना चाहिए जो ग्रामीण लोगों एवं ग्रामीण समुदायों के व्यवहारों को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार से आपके अनुसार ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत विभिन्न मूल्यों, महत्त्वाकांक्षाओं, सहानुभूति, प्रतिस्पर्धा तथा विषमताओं से सम्बन्धित सभी प्रकार के व्यवहारों का अध्ययन भी आ जाता है।

ए0आर0 देसाई के विचार– आपने ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन करने के बाद निम्न विचार व्यक्त किए हैं, 'सभी एक मत से घोषणा करते हैं कि ग्रामीण समाज"ाास्त्र का प्रमुख लक्ष्य ग्रामीण सामाजिक संगठन, उसकी संरचना, प्रकार्य और विकास की वस्तुपरक प्रवृत्ति का वैज्ञानिक व्यवस्थित और व्यापक अध्ययन करके इसके विकास के नियमों की खोज करना है।''

1.6(ii) ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र की समीक्षा

ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के सम्बन्ध में स्मिथ, नेल्सन, देसाई, सिम्स, चिताम्बर, चार्ल्स होफर और जिम्मरमेन ने जो विचार व्यक्त किए हैं उसके आधार पर इसके क्षेत्र को ग्रामीण सामाजिक संगठन से लेकर ग्रामीण पुनर्निर्माण के क्रम में निम्नानुसार क्रम से समीक्षा की जा सकती है–

ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र

ग्रामीण सामाजिक संगठन	ग्रामीण सामाजिक संरचना	ग्रामीण सामाजिक संस्थाएँ	ग्रामीण सामाजिक समूह	ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाएँ	ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन	ग्रामीण सामाजिक समस्याएँ	ग्रामीण नगरीय सम्बन्ध	ग्रामीण सामाजिक जनसंख्या	ग्रामीण पुनर्निर्माण

सन्दर्भः ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र का यह चित्र स्मिथ, नेल्सन, देसाई, सिम्स, चिताम्बर, चार्ल्स होफर और जिम्मरमेन के विचारों के आधार पर बनाया गया है।

- **ग्रामीण सामाजिक संगठन**

ग्रामीण सामाजिक संगठन अन्य समाजों, जैसे– आदिम समाज, नगरीय, औद्योगिक के सामाजिक संगठन से भिन्न एवं वि"िाष्ट होता है। इसलिए ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र, ग्रामीण सामाजिक संगठन स्वयं है जिसका निर्माण भारत के ग्रामों में विभिन्न छोटे–छोटे संगठनों, जैसे– परिवार, संयुक्त परिवार, गोत्र–समूह, उपजाति और जातियों से मिलकर बनता है। ग्रामों के इन विभिन्न तत्त्वों के अतिरिक्त विभिन्न प्रस्थितियाँ सम्बन्ध सत्ता आदि भी संगठन का निर्माण करते हैं। ग्रामीण सामाजिक संगठन के इन विभिन्न तत्त्वों का अध्ययन ग्रामीण समाज"ाास्त्र का अध्ययन का प्रमुख क्षेत्र है।

- **ग्रामीण सामाजिक संरचना**

ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामों की बसावट, उनकी बसावट के विभिन्न प्रकार एवं प्रतिमान उनका सामाजिक जीवन पर प्रभावों का अध्ययन करता है। ग्रामीण सामाजिक सम्बन्धों को निर्धारित एवं निर्दे"ात करने में ग्रामीण जनसंख्या की बस्तियाँ महत्वपूर्ण कारक होती हैं। भारत के ग्रामों की बसावट जातीय आधार होती है। अलग–अलग जातियों की भिन्न–भिन्न बस्तियाँ व मोहल्ले होते हैं। इनका निर्धारण जाति संरचना एवं उसकी उच्चता–निम्नता के क्रमानुसार होता है। अस्पृ"य जातियां गांव से दूर निचले एवं गन्दे स्थानों पर बसी होती हैं। ग्राम की बसावट जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों की निर्धारक होती है। भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन के क्षेत्र में जातियों की भौगोलिक बनावट एवं ग्रामीण संरचना का वि"ोष स्थान है।

- **ग्रामीण सामाजिक संस्थाएं**

सभी समाजों की तरह ग्रामीण समाजों में भी आव"यकताओं को पूर्ण करने के लिए ग्रामीण समाज द्वारा मान्यता प्राप्त विधियाँ होती हैं जिन्हें संस्था कहते हैं। ग्रामीण समाजों में जनरीतियाँ, प्रथाएँ, रूढ़ियाँ, रीति–रिवाज, कानून आदि होते हैं जिनके प्रकारों एवं कार्यों का अध्ययन करना इस विषय का अध्ययन क्षेत्र है। ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन–क्षेत्र के अन्तर्गत धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, आर्थिक राजनैतिक, पारिवारिक आदि संस्थाएं रखी गई हैं।

- **ग्रामीण सामाजिक समूह**

मानव अपनी सभी आव"यकताओं– भोजन, वस्त्र, आवास, लैंगिक इच्छा की पूर्ति, आदि समूह में रहकर पूर्ण करता है। इन्हीं आव"यकताओं की पूर्ति के लिए वह समूह और समाज में जीवन व्यतीत करता है। विभिन्न आव"यकताओं की पूर्ति के लिए ग्रामीण समाज ने भी उपर्युक्त एवं वि"िाष्ट समूहों का निर्माण किया है, जैसे– नातेदारी–समूह, धार्मिक समूह, क्रीडा–समूह, सांस्कृति–समूह, राजनैतिक–समूह, ग्राम–पंचायत, जाति पंचायत आदि। ये विभिन्न समूह ग्रामीण समाज"ाास्त्री के विषय–क्षेत्र के अन्तर्गत रखे गए हैं जिनका अध्ययन करके ग्रामों को समझा जा सकता है।

- **ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाएं**

स्मिथ ने भी ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र में विभिन्न संगठनात्मक और विघटनात्मक ग्रामीण सामाजिक प्रक्रियाओं, जेसे–सहयोग, व्यवस्था, एकीकरण, सात्मीकरण, प्रतिस्पर्धा, संघर्ष आदि को सम्मिलित किया है। इनके अतिरिक्त भारत के ग्रामों में अनेक वि"िाष्ट प्रक्रियाएं, जैसे– सांस्कृतिकरण सार्वभौमिकरण, स्थानीयकरण आदि देखी जा सकती हैं। इनके अध्ययन के बिना ग्रामीण समाज"ाास्त्र का ज्ञान अधूरा है। इसलिए इसे ये विभिन्न सामाजिक प्रक्रियाएं ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के अभिन्न अंग हैं। इतना ही नहीं ग्रामीण समाज"ाास्त्र व्यक्तियों, समूहों एवं व्यक्ति और समूह के नीचे परस्पर अन्तःक्रियाओं का समाज"ाास्त्रीय अध्ययन भी करता है।

ग्रामीण समाजों में विद्यमान सभी प्रकार की प्रक्रियाएं ग्रामीण समाज"ाास्त्र के क्षेत्र के अन्तर्गत आती है।

- **ग्रामीण सामाजिक परिवर्तन**

पहिले ग्रामीण समाज स्थिर या बहुत धीमी गति से परिवर्तन प्रकृति के रहे होंगे लेकिन आज अनेक कारकों– औद्योगिकरण, नगरीकरण, संचार एवं यातायात के साधनों के विकास, व्यवसायों की बाहुल्यता, आधुनिक ि"ाक्षा, म"ाीनीकरण, पंचवर्षीय योजनाएं, सामुदायिक विकास योजनाएं, एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा अन्य अनेक विकास योजनाओं के प्रभावों के कारण भारतीय ग्रामीण समाज तेजी से परिवर्तित हो रहे हैं। ग्रामीण समाजों को योजनाबद्ध विकसित करने के लिए आव"यक है कि इन समाजों के परिवर्तन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों–परिवर्तन के कारणों, कारकों दि"ाा, गति, प्रकृति, स्वरूप, परिणाम आदि का वैज्ञानिक अध्ययन है। इसीलिए आज ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र इन समाजों के परिवर्तन का अध्ययन करना भी है।

- **ग्रामीण सामाजिक समस्याएं**

सत्य तो यह है कि ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उत्पत्ति और विकास का मूल कारण ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन और समाधानों की खोज करना रहा है। सिम्स ने इसी तथ्य को निमन शब्दों में व्यक्त किया है, **''गाँवों में रहने से उत्पन्न समस्या या अनेक समस्याओं को ही सामान्यतः ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विशय–वस्तु माना जाता है''** ग्रामीण समस्याएं अनेक है जिन्हें गिनाना सम्भव तो नहीं है। कुछ प्रमुख समस्याएं– गरीबी, बेरोजगारी, अि"ाक्षा, ऋणग्रस्तता, निम्न जीवन–स्तर, कुपोषण, बीमारी, जनसंख्या की वृद्धि सभी क्षेत्रों में पिछड़ापन आदि हैं।

- **ग्रामीण–नगरीय सम्बन्ध**

ग्राम और नगर एक–दूसरे के विरोधी और विपरीत संगठन नहीं बल्कि ये दोनों समाज एक–दूसरे के पूरक हैं। ग्राम **''ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण एवं नगरीय संस्कृति के बीच अन्तःक्रियाओं की उपेक्षा नहीं कर सकता''** ग्राम अपनी अनेक आव"यकताओं के लिए एक–दूसरे पर निर्भर रहते हैं। ग्रामीण एवं नगरीय जीवन का तुलनात्मक अध्ययन ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन का क्षेत्र है।

- **ग्रामीण जनसंख्या**

किसी समाज का समाज"ाास्त्रीय अध्ययन इस समाज की जनसंख्या की संरचना, घनत्व, प्रकृति, जन्म–मृत्यु दर, आयु संरचना, रहन–सहन, व्यवसाय, औसत आयु, जाति, धर्म, भाषावार वितरण आदि से प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से सम्बन्धित होता है। ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अध्ययन–क्षेत्र के अन्तर्गत भी ये सभी जनसंख्यात्मक आधार एवं कारक आते हैं। चिताम्बर ने निम्न शब्दों में इस तथ्य को स्पष्ट किया है, **''जनसंख्या का अध्ययन ग्रामीण समाज के सम्बन्ध में**

महत्वपूर्ण ज्ञान का स्रोत है। जनसंख्या मानव के व्यवहारों एवं क्रियाओं को प्रभावित करती है'' चैंपिन ने भी लिखा है, ''ग्रामीण जीवन का समाज"ाास्त्र ग्रामीण जनसंख्या का अध्ययन है।

- **ग्रामीण पुनर्निर्माण**

ग्रामीण समाज"ाास्त्र का घनिष्ठ सम्बन्ध ग्रामीण पुनर्निर्माण की समस्याओं, कारकों, योजनाओं, स्रोतों, दि"ाा आदि से है। चार्ल्स होफर ने लिखा है कि किसी विज्ञान की उत्पत्ति और विकास समस्याओं के निदान एवं समाज के पुनर्निर्माण के लिए होता है। निम्न शब्दों में इन्होंने ये विचार व्यक्त किए हैं, **''ग्रामीण समाज"ाास्त्र अन्य सभी विज्ञानों के समान किसी आव"यकता के परिणामस्वरूप विकसित हुआ है।'' ए0आर0 देसाई** ने इसी तथ्य को इसकी परिभाषा देते हुए इस प्रकार स्पष्ट किया है, **''ग्रामीण समाज"ाास्त्र का मूल कार्य ग्रामीण समाज के विकास के नियमों को खोज निकालना है।''** यह सब कुछ तभी सम्भव हो सकता है जब इस लक्ष्य को विषय–क्षेत्र के अन्तर्गत रखा जाए।

अनेक विद्वानों ने पुनर्निर्माण के अध्ययन को ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र बताया है। ग्रामीण समाज"ाास्त्र विषय का महत्व मात्र ज्ञान का विकास करना नहीं बल्कि उस सैद्धान्तिक ज्ञान के आधार ग्रामीण पुनर्निर्माण के लिए व्यावहारिक और उपयोगी योजनाएं बनाकर देना है। ए0 आर0 देसाई ने एक स्थान पर इस महत्त्व को स्पष्ट करते हुए लिखा, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र ग्रामीण कार्यकर्त्ताओं को ग्रामीण समस्याओं के यथार्थ वि"लेषण में सहायता करेगा और आगे उन्हें समस्याओं पर नियंत्रण करने के लिए उपयुक्त उपचार करने या कार्यक्रम बनाने के योग्य बनाएगा। जिम्मरमेन ने तो यह भी लिखा है कि भूतकाल में ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों ने सुधारों की योजनाओं पर पहिले ध्यान दिया तथा उनसे सम्बन्धित सिद्धान्तों का निर्माण बाद में किया। आपने लिखा है, **''भूतकाल में ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों ने ग्रामीण जीवन में आव"यक सुधारों की योजनाओं, का प्रयत्न उन सिद्धान्तों को विकसित करने से पहिले किया जिन पर ये सुधार आधारित हो सकते थे।''** उपर्युक्त कथनों से यह निष्कर्ष निकलता है कि ग्रामीण समाज"ाास्त्री के क्षेत्र के अन्तर्गत ग्रामीण पुनर्निर्माण एक महत्त्वपूर्ण विषय हैं।

1.7 सारां"ा

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान चुके है कि–

ग्रामीण जीवन को समझने के लिए ग्रामीण समाज"ाास्त्र अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। हमने ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अवधारणा, अर्थ एवं परिभाषा को समझा, इस इकाई में ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास के विषय में विस्तार से समझा तथा ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्र की अवधारणा तथा विभिन्न ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों द्वारा ग्रामीण समाज"ाास्त्र का अध्ययन क्षेत्र को विस्तार से समझा है।

1.8 शब्दावली

ग्रामीण समाज"ाास्त्रः ग्रामीण समाज का विज्ञान है सामान्य रूप से ग्रामीण समाज की संरचना तथा विकास के नियम किसी वि"ाष्ट ग्रामीण समाज का नियन्त्रण एवं संचालन करने वाले असाधारण नियमों का पता लगाने में सहायता प्रदान करते है। ग्रामीण समाज"ाास्त्र का मूलभूत कार्य ग्रामीण जीवन के विकास के नियमों की खोज करना।

ग्रामीण समाज"ाास्त्र का क्षेत्रः इस के अन्तर्गत ग्रामीण समाज के जीवन का वि"लेषण एवं ग्रामीण समाज मे रहने वालों के सम्बन्धों तथा अन्तःक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

1.9 अभ्यास प्र"न

1. ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र का मूल कार्य ग्रामीण समाज के विकास के नियमों को खोज निकालना है'' के लेखक है

   (अ) लोरी नेल्सन (ब) जी0बी0 चिताम्बर

   (स) ए0आर0 देसाई (द) टी0लीन स्मिथ

2. निम्नलिखित लेखक एवं पुस्तक के सही जोड़े बनाइये–

   1. एस0 सी0 दुबे (अ) Rural Socilogy in India

   2. एम0एन0 श्रीनिवास (ब) Indian Village

   3. मैकिम मैरियट (स) India's Village (Ed)

   4. ए0आर0 देसाई (द) Village India (Ed)

   (अ) ब स, द अ (ब) स, द, अ, ब

   (स) अ स ब स (द) द स अ ब

3. निम्न में से ग्रामीण समाज"ाास्त्र के विषय क्षेत्र का चयन कीजिए–

   (अ) संरचना एवं संगठन (ब) ग्रामीण नगरी सम्बन्ध

   (स) पुननिर्माण (ब) उपर्युक्त सभी

5. ग्रामीण जीवन एवं ग्रामीण समस्याओं का अध्ययन किस शास्त्र में किया जाता है–

(अ) नगरीय समाज"ाास्त्र (ब) ग्रामीण समाज"ाास्त्र

(स) औद्योगिक समाज"ाास्त्र (ब) अपराध"ाास्त्र

6. ग्रामीण समाज"ाास्त्र के विषय–क्षेत्र में क्या सम्मिलित नहीं है–

(अ) ग्रामीण सामाजिक संस्थाए (ब) ग्रामीण सामाजिक संगठन

(स) विकास कार्य (ब) नगरीय जीवन का अध्ययन

7. ग्रामीण समाज"ाास्त्र निम्न में से किस कार्य में सहायक नहीं है–

(अ) ग्रामीण समस्याओं के समाधान में सहायक
(ब) ग्रामीण सामाजिक पुनर्निर्माण में सहायक
(स) उद्योग एवं नगरीय जीवन को समझने में सहायक
(ब) सामुदायिक विकास कार्यक्रमों में सहायक

अभ्यास प्र"नों के उत्तर–

1. स, 2. अ, 3. द, 4. ब, 5. द, 6. स

1.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एस0सी0दुबे, 'भारतीय गांव', 1955।
2. डी0एन0 मजूमदार (सम्पादित), 'ग्रामीण रूपरेखा', 1955।
3. मिकिम मैरियट (सम्पादित), 'ग्रामीण भारत'।
4. रामकृष्ण मुखर्जी, 'ग्रामीण समाज की गत्यात्मकता', 1957।
5. ए0आर0 देसाई, (सम्पादित), 'भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र'।
6. बी0आर0 चौहान, 'ए राजस्थान विलेज'।

1.11 सहायक/उपयोगी पाठसामग्री

1. Doshi and Jain, Rural Socialogy (2014), Rawat Publication, Jaipur
2. तेजमल दक ''भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', किताब महल प्रा0लि0, इलाहाबाद
3. वी0 प्रका"ा, शर्मा, ''ग्रमीण समाज"ाास्त्र (1999)'', पंच"ाील प्रका"ान, जयपुर
4. डॉ0 एम0एम0 लवानिया, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', रिसर्च पब्लिके"ान्स, जयुपर
5. डॉ0 वीरेन्द्रनाथ सिंह, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', विवेक प्रका"ान, दिल्ली
6. रामबिहारी तोमर, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', श्री मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा
7. गुप्त एवं शर्मा– भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र, साहित्य अब पब्लिके"ान (1998), आगरा।

1.12 निबंधात्मक प्र"न

1. ग्रामीण समाज"ाास्त्र किसे कहते है इसके विषय–क्षेत्र का वण्रन कीजिए।
2. ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उत्पत्ति एवं विकास का वर्णन कीजिये।
3. भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र की उत्पत्ति और विकास का वर्णन कीजिए।
4. ग्रामीण समाज"ाास्त्र की परिभाषा एवं विषय क्षेत्र का उल्लेख कीजिए।

इकाई– 2 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विषय वस्तु, पद्धति, प्रविधि एव उपकरण (Subject Matter, Methods and Tools of Rural Sociology)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्दे"य
2.2 प्रस्तावना
2.3 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विषय–वस्तु की अवधारणा
2.4 ग्रामीण के आधार पर निर्मित अवधारणाएँ
2.5 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन की पद्धति
- ऐतिहासिक–उद्विकासीय पद्धति
- संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति
- तुलनात्मक अध्ययन पद्धति
- अन्तः सांस्कृतिक या अतः राष्ट्रीय पद्धति
- अन्तः शास्त्रीय अध्ययन पद्धति

2.6 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन प्रविधि एवं उपकरण
- सामाजिक अनुसंधान प्रविधि
- समाजमिति प्रविधि
- सांख्यिकी प्रविधि
- ग्रामीण सर्वेक्षण
- जनगणना एवं निद"ान
- साक्षात्कार
- व्यक्तिगत अध्ययन
- प्र"नावली
- अनुसूची

2.7 सारां"ा
2.8 शब्दावली
2.9 अभ्यास प्र"नों के उत्तर
2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
2.12 निबंधात्मक प्र"न

2.1 उद्दे"य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप–

1. ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अवधारणा एवं विषय–वसतु को समझ सकेंगे।
2. ग्रामीण अध्ययनों के आधार पर निर्मित अवधारणाओं को समझ सकेंगे।
3. ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन की पद्धति एवं उपकरण को समझ सकेंगे।
4. ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन की प्रविधि एवं उपकरण को समझ सकेगें।

2.2 प्रस्तावना

ग्रामीण समाज"ाास्त्र भी ग्रामीण समाजों का समाज"ाास्त्र में प्रचलित विभिन्न उपागमों या पद्धति की सहायता से ग्रामीण–समाजों का क्रमबद्ध और व्यवस्थिति अध्ययन करता है समाज"ाास्त्रा के प्रमुखतः पाँच पद्धति– (1) ऐतिहासिक–उद्विकासीय पद्धति, (2) संरचनात्मक प्रकार्यात्मक पद्धति, (3) तुलनात्मक पद्धति, (4) अन्तः सांस्कृतिक या अन्तः राष्ट्रीय पद्धति, (5) अन्तः शास्त्रीय पद्धति है। ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय अध्ययन में भी इन्हीं पद्धति का प्रयोग होता है इन के द्वारा ग्रामीण समाज"ाास्त्री ग्रामीण समाजों की सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक अव्यवस्था, सामाजिक समस्या और उनमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन विभिन्न प्रविधियों और उपकरणों की सहायत से करते है।

2.3 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विषय–वस्तु

भारतीय ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था के इतिहास का सिंहावलोकन करने से ज्ञात होता है कि 18वीं और 19वीं शताब्दी में ग्रामीण अर्थव्यवस्था नियन्त्रण के अभाव के कारण बद–से–बदतर होती जा रही थी। प्रथम वि"वयुद्ध की समाप्ति के बाद तो ग्रामों में गरीबी एवं विघटन बहुत स्पष्ट हो गया। ब्रिटि"ा सरकार ने कृषकों में विद्यमान असन्तोष की ओर ध्यान दिया और 1926 में कृषि पर प्रथम **रॉयल कमी"ान** की स्थापना की। इस प्रकार विदे"ाी सरकार द्वारा पहला प्रयास भारतीय ग्रामों के अध्ययन के रूप में प्रारम्भ हुआ। इस अध्ययन का उद्दे"य ग्रामीण लोगों की आव"यकताओं को ज्ञात करना था कि ग्रामीण लोग कैसे रहते हैं? वे किस प्रकार से अर्द्ध मानवीय जीवन व्यतीत करते हैं? तथा इस सभी समस्याओं के सम्बन्ध में तथ्य भी एकत्रित करने थे।

प्रथम वि"व युद्ध के बाद जब किसान संकट में आ गए थे और उन पर गांधीजी का प्रभाव पड़ा जिसके फलस्वरूप किसान स्वतंत्रता आन्दोलन में भाग लेने लग गए। गांधीजी का 1920 का जन–आन्दोलन का उद्दे"य भी ग्रामीण विकास करना ही था। आपने चम्पारन और केरा

के ग्रामीण कृषकों का नेतृत्व भी किया था। इस आन्दोलन का प्रभाव बुद्धिजीवियों पर पड़ा। उनकी ग्रामीण जीवन के अध्ययन के प्रति रूचि जागृत हुई। गांधीजी के जन–आन्दोलन से प्रभावित होकर ही **जी0 कीटिंग्स** एवं **हेराल्ड मेन** ने बम्बई में, **ई0वी0 लूकस** ने पंजाब में और **गिलबर्ट स्लेटर** ने मद्रास में भारत के ग्रामों की कृषि की समस्याओं का अध्ययन किया। इन अध्ययनों के प्रभाव से लोगों का ग्रामीण अध्ययनों के प्रति और आकर्षण बढ़ा। 1930 के द"ाक में अनेक सामाजिक कार्यकर्ताओं एवं संगठनों ने ग्रामीण क्षेत्रों में सुधारात्मक कार्यों के साथ–साथ उनका अध्ययन भी किया। **रवीन्द्र नाथ टैगोर** द्वारा स्थापित 'वि"व भारती' ि"ाक्षण संस्था ने शान्ति निकेतन के आस–पास एवं बंगाल में अनेक ग्रामीण सर्वेक्षण किए। इसी प्रकार के ग्रामीण अध्ययनों को करने के लिए कलकत्ता में इण्डियन स्टेटिस्टिकल इन्स्टीट्यूट, बंगाल बोर्ड ऑफ इकोनोमिक एन्क्वारी, और पंजाब बोर्ड ऑफ इकोनोमिक एन्क्वायरी आदि बोर्ड स्थापित किये गए। **गिलवर्ट स्लेटर** ने जैसे ग्रामीण अध्ययन किए थे उसी प्रकार के अध्ययन मद्रास वि"वविद्यालय के **थॉमस** तथा **रामकृश्ण** ने भी दक्षिण भारत के ग्रामों के किए। **भांकर मेन** के तत्वावधान में कई ग्रामों के वर्णन कोचीन सरकार की सहायता से 1935 में किए गये। **जे0सी0 कुमारप्पा** ने गुजरात विद्यापीठ के तत्वावधान में मातार बालके का सर्वेक्षण 1947 में किया। **सुब्रह्मण्यम्** ने कांग्रेस इकोनोमिक एण्ड पोलिटिकल स्ट्डीज के तत्वाधान में 1936 में दक्षिण भारत के एक ग्राम का सामाजिक सर्वेक्षण किया। अनेक सर्वेक्षण महाराष्ट्र में गोखले इन्स्टीट्यूट ऑफ पॉलिटिक्स एण्ड इकोनोमिक्स ने भी किए। इन उपरोक्त वर्णित संस्थाओं, संगठनों एवं सर्वेक्षणों का उद्दे"य ग्रामीण लोगों के आर्थिक जीवन एवं समाज की समस्याओं के सम्बन्ध में तथ्य एकत्रित करना था। इण्डियन स्टेटिस्टिकल इन्स्टीट्यूट कलकत्ता ने बंगाल के अकालग्रसत ग्रामों का 1943 में अध्ययन किया। इस संस्था ने अकाल के प्रभावों, ग्रामीण ऋणग्रस्तता एवं कृषि मजदूरों की द"ाा को ज्ञात करने का प्रयास किया था।

ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय अध्ययनों का सर्वेक्षण करें तो पायेंगे कि 1948 से लेकर 1954 तक केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों के कृषि एवं श्रम विभागों ने भी उसी प्रकार के ग्रामीण अध्ययन किए जिस प्रकार के स्वतंत्रता–प्राप्ति से पूर्व किए जाते रहे। 1950 में ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित सर्वेक्षण करने के लिए भारत सरकार ने ने"ानल सेम्पल सर्वे संस्था का गठन किया। वास्तविक स्थिति तो यह है कि 1949 से समाज"ाास्त्रियों और सामाजिक मानव"ाास्त्रियों, समाज"ाास्त्रियों परिप्रेक्ष्य से ग्रामों का अध्ययन करना प्रारम्भ किया है। इसका विवेचन इस प्रकार है।

1949 में ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय से सम्बन्धित प्रथम सम्पादित पुस्तक **ए0आर0 देसाई** की 'Introduction to Rural Sociology in India' प्रकाि"ात हुई। इसके पुनः संस्करण 1958, 1959, 1961 और 1969 में Rural Sociological India शीर्षक से प्रकाि"ात हुए और बाद में भी होते रहे। इस पुस्तक के प्रका"ान का उद्दे"य सामाजिक वास्तविकता के व्यवस्थित अध्ययन के महत्व की ओर छात्रों, विद्वानों, प्र"ाासकों, राजनैतिक एवं सामाजिक कार्यकर्त्ताओं का ध्यान आकर्षित करना था। अनेक संस्करणों के प्रका"ान से इसके उद्दे"यों की सफलता स्पष्ट हो जाती है। 1952 में **एम0एन0 श्रीनिवास** की Religion and Society Among the Coargs of South India वि"ावविख्यात पुस्तक आई।

1950 में **डी0एन0 मजूमदार** के निर्दे"ान में समाज"ाास्त्री दृष्टिकोण से ग्रामीण अध्ययन का शुभ्भारम्भ हुआ। इसी क्रम में 1955 का वर्ष भी भारतीय ग्रामीण समाजों का समाज"ाास्त्रीय और सामाजिक मानव"ाास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन का महत्वपूर्ण वर्ष रहा है। इस वर्ष भारतीय ग्रामीण अध्ययनों पर चार वि"ावविख्यात समाज"ाास्त्रीय पुस्तकें और अनेक शोध–पत्र प्रकाि"ात हुय। ये चार महत्वपूर्ण कृतियाँ– 1. **एस0 सी दुबे** की Indian Village, 2. **डी0एन0 मजूमदार** द्वारा सम्पादित Rural Profiles, 3. **मैरियट** द्वारा सम्पादित Village India और 4. **एम0एन0 श्रीनिवास** द्वारा सम्पादित पुस्तक India's Villages ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय जगत में आई।

कास्टेयर– द्वारा लिखित Twice Born, 1957, एफ0जी0बेली– Caste and the Economic Frontier, 1957 एस0सी0 दुबे India's Changing Village, 1958 आस्कर लेविस Village Life in Northern India, 1958 और अल्बर्ट मेयर Pilot Project India, 1958 कृतियों का ग्रामीण समाज"ाास्त्र में योगदान हुआ। भारतीय ग्रामीण समा"ा"ाास्त्री के लिए 1958 का वर्ष भी वि"ोष महत्व का रहा है। ये सभी अध्ययन सामाजिक मानव"ाास्त्रियों के द्वारा ही किये गये हैं और इनके अध्ययन की वैज्ञानिक पद्धतियां, अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची आदि रही हैं। इसलिए ये अध्ययन उच्चकोटि के माने ज ाते हैं। **इरावती कर्वे** ने 1955 में एक सम्मेलन का आयोजन मद्रास में किया था जिसमें विदे"ाी सामाजिक मानव"ाास्त्री **राबर्ट रेडहिल** ने भी सक्रिय भाग लिया था।

भारतीय एवं विदे"ाी समाज"ाास्त्रियों एवं सामाजिक मानव"ाास्त्रियों ने समय–समय पर जो ग्रामीण अध्ययन किये हैं उनका संक्षिप्त एवं सारगर्भित वर्णन **ब्रजराज चौहान** ने 'Rural

Studies : A Trend Report', सम्पादित प्रतिवेदन A Survey of Research in Sociology and Social Anthropology, प्रयोजक Indian Council of Social Science Research, नई दिल्ली के पृष्ठ संख्या 84–114, पाप्युलर प्रका"ान, बम्बई में किया है, आपने इस प्रतिवेदन में ग्रामीण समाजों के अध्ययनों का संक्षिप्त परिचय, अध्ययन की इकाई, वैज्ञानिक अध्ययन–पद्धति सम्बन्धी अभिमुखन भविष्य में अनुसंधान के लिए सुझाव और विषय सूची आदि शीप्रकों के अन्तर्गत लागभग सभी पहलुओं पर प्रका"ा डाला है। इसके अतिरिक्त आपने अनेक ग्रामीण अध्ययन एवं अवधारणाओं का संक्षिप्त परिचय भी दिया है।

प्रथम पंचवर्षीय योजना एवं सामुदायिक विकास कार्यक्रम स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत के ग्रामों में 2 अक्टूबर, 1952 से प्रारम्भ किए गये। इन योजनाओं का ग्रामीण समाजों पर क्या प्रभाव पड़ा? इसका मूल्यांकन **बलवन्तराय** की अध्यक्षता में एक कमेटी द्वारा किया गया। इस कमेटी ने विभिन्न योजनाओं की सफलताओं के लिए ग्रामों के स्तर पर प्रजातांत्रिक विकेन्द्रीकरण एवं तीन स्तरीय पंचायतों राज की स्थापना का सुझाव दिया। विभिन्न कानूनों द्वारा जमींदारों प्रथा का उन्मूलन एवं भूमि सुधार किए गये। **विनोबा भावे** एवं **जयप्रका"ा नारायण** ने भू–दान, ग्राम–दान और सर्वोदय जैसी योजनाओं और अभियानों को चलाया। समय–समय पर ग्रामीण स्तर पर जितने भी विकास एवं सुधार कार्यक्रम चलाए गए। उनका प्रभाव, सफलता और असफलता, कार्य–कारण सम्बन्ध एवं मूल्यांकन करने के लिए सामाजिक वैज्ञानिकों ने क्षेत्रीय अध्ययन किये। इन क्षेत्रों में किए गये सर्वेक्षणों का संक्षेप में वर्णन **ब्रजराज चौहान** ने उपरोक्त वर्णित प्रतिवेदन Rrual Studies and Tend Report में किया है।

ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अन्तर्गत किये गये अध्ययनों के विकास में अनेक पत्र–पत्रिकाओं का भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समाज"ाास्त्रीय सम्मेलनों का आयोजन एवं पत्र–पत्रिकाओं में शोधकर्त्ताओं और सामाजिक वैज्ञानिकों के अध्ययनों को प्रका"ात करके ग्रामीण अध्ययनों को प्रोत्साहित किया गया है। ये उल्लेखनीय पत्र–पत्रिकाएं सो"ायोलोजिकल बुलटिन, Economic and Political Weekly, Rural India, योजना, कुरूक्षेत्र, मानव, National Sample Survey, Constitutional to Indian Sociology, आर्थिक समीक्षा आदि हैं। Indian Sociological Conference में वार्षिक अधिवे"ानों के द्वारा ग्रामीण अध्ययनों को प्रोत्साहित किया है। भारत के विभिन्न वि"वविद्यालयों में Rural Institute की स्थापना की गई और समाज"ाास्त्र विभाग में ग्रामीण समाज"ाास्त्री प्र"न–पत्र प्रारम्भ किए गये।

2.4 ग्रामीण अध्ययनों के आधार पर निर्मित अवधारणाएं

विभिन्न भारतीय तथा विदे"ाी समाज–वैज्ञानिकों ने ग्रामीण अध्ययनों में सहायता के लिए कई अवधारणाओं का प्रयोग किया है। उनमें से प्रमुख हैं– प्रभु जाति, संस्कृतिकरण, विसंस्कृतिकरण, कुलीनीकरण, दीर्घ एवं लघु परम्पराएं, बहुमुखी परम्पराएं, पि"चमीकरण, आधुनिकीकरण, लौकिकीकरण, स्थानीयकरण, ब्राह्मणीकरण, ग्राम एकता, गुट, कृषक समाज, लघु समुदाय, ग्राम–नगर सातत्य, प्रसार, सीमा प्रदे"ा, विस्तार, जाल और क्रिया प्रमिान आदि। इन अवधारणाओं को समझे बिना ग्रामीण अध्ययनों का कार्य अपूर्ण ही रहेगा। इन अवधारणाओं ने ग्रामीण जीवन और घटनाओं को समझने में बहुत योग दिया है।

एन0एन0 श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण एवं पि"चमीकरण की अवधारणा प्रस्तुत की। **संस्कृतिकरण** से तात्पर्य उस प्रक्रिया से है जिसके द्वारा एक निम्न जाति उच्च जातियों की जीवन–विधि, देवी–देवता, रहन–सहन, खान–पान आदि को अपनाती है और अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने का प्रयास करती है। प्रारम्भ में श्रीनिवास ने इसे **ब्राह्मणीकरण** का नाम दिया था। भारत में 150 वर्षों के अंग्रेजी राज्य के परिणामस्वरूप भारतीय समाज एवं संस्कृति में होने वाले परिवर्तनों के लिए **एन0एन0 श्रीनिवास** ने **पि"चमीकरण** शब्द का प्रयोग किया है और यह शब्द प्रौद्योगिकी, संस्थाएं, विचारधारा एवं मूल्य आदि विभिन्न स्तरों पर होने वाले परिवर्तनों को आत्मसात करता है।

योगेन्द्र सिंह का मत है **आधुनिकीकरण** की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारतीय समाज पर रूस, अमेरिका और अन्य दे"ाों का प्रभाव भी पड़ा, आधुनिकीकरण में उन सभी आधुनिक परिवर्तनों को शामिल किया गया है। जो सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, बौद्धिक और पारिस्थितिकी के क्षेत्र में घटित हुए हैं। ि"ाक्षा का प्रसार, प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि, उत्पादन में म"ाीनों एवं जड़ शक्ति का प्रयोग, परानुभूति, धर्मनिरपेक्षता, वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तार्किकता, नगरीकरण, औद्योगीकरण, अर्जित पदों के महत्व में वृद्धि, वयस्क मताधिकार एवं प्रजातन्त्र आदि सभी आधुनिकीकरण की प्रक्रिया के अंग हैं। उच्च जातियों द्वारा अपनी परम्परात्मक जीवन विधि का त्याग और निमन जातियों के रीति–रिवाजों को अपनाने की प्रक्रिया को **मजूमदार** ने विसंस्कृतिकरण का नाम दिया है। **एन0एन0 श्रीनिवास** ने **लौकिकीकरण** की प्रक्रिया का उल्लेख भी किया है। लौकिकीकरण में धर्म की पुनर्व्याख्या, बुद्धिवाद और तर्क पर

वि"ोष जोर दिया जाता हैं पवित्रता एवं अपवित्रता का स्थान स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियम ले लेते हैं। लौकिकीकरण में अनेक परम्परात्मक कर्मकाण्डों को त्याग दिया जाता है।

एन0एन0 श्रीनिवास ने जातियों में प्रभुत्व और संस्तरण का अध्ययन किया और **प्रभु जाति** की अवधारणा प्रस्तुत की। प्रभु जाति वह जाति होती है जो गांव में अथवा क्षेत्र में संख्या की दृष्टि से सर्वाधिक होती है, राजनीतिक एवं आर्थिक दृष्टि से शक्ति"ाली होती है तथा जो परम्परागत सामाजिक संस्तरण में उच्च स्थान रखती है। **रैडफील्ड** ने **दीर्घ** एवं **लघु परम्पराओं** की अवधारणा प्रस्तुत की है। **मैरियट** ने **सार्वभौमिकरण** एवं **स्थानीयकरण्** की प्रक्रियाओं का उल्लेख किया है। ये दोनों प्रक्रियाएं भारतीय सभ्यता की जटिलता, दीर्घ एवं लघु परम्पराओं के बीच संचार श्रंखला व अन्तःक्रिया को प्रकट करती हैं। **एस0सी0 दुबे** ने लघु एवं दीर्घ परम्पराओं के स्थान पर **बहुमुखी परम्पराओं** को ग्रामीण समाज को समझने के लिए लाभदायक माना है। **ऑस्कर लेविस** ने ग्रामीण राजनैतिक सामाजिक जीवन को समझने के लिए नातेदारी पर आधरभूत समूह **'गुट'** के अध्ययन को आव"यक बताया है।

रैडफील्ड ने गांव के उन लोगों को जो कृषि को व्यापार न मानकर जीवन विधि के रूप में स्वीकार करते है, **कृशक समाज** की संज्ञा प्रदान की है। इन लोगों की संस्कृति को वह **'लोक संस्कृति** को कहते है।

रैडफील्ड ने **लघु समुदाय** की अवधारणा उन गाँवों के लिए दी है जिनमें लघुता, वि"िाष्टता, समानता एवं आत्म–निर्भरता पायी जाती है। **रैडफील्ड** ने ग्रामों में घटित होने वाले नगरीय परिवर्तन को **ग्राम–नगर सातत्य** के द्वारा प्रकट किया है। इस प्रकार हम देखते है कि ग्रामीण अध्ययनों के दौरान अनेक अवधारणाओं का प्रयोग हुआ है।

2.5 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन की पद्धति

प्रत्येक वि"िाष्ट विज्ञान और उसकी शाखाओं में अध्ययन के परिप्रेक्ष्य, उपागम, अध्ययन की पद्धति, प्रविधि एवं सिद्धान्तों आदि में परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। क्योंकि ग्रामीण समाज"ाास्त्र, समाज"ाास्त्र की एक शाखा हैं इसलिए ग्रामीण समाज"ाास्त्र का पद्धति एवं प्रविधि का मूल आधार एवं निर्धारक समाज"ाास्त्रीय पद्धति एवं प्रविधि है। जिस प्रकार समाज"ाास्त्र मानव–समाज का समाज"ाास्त्रीय परिप्रेक्ष्य के अनुसार विभिन्न पद्धतियों के द्वारा व्यवस्थित और क्रमबद्ध अध्ययन का समाज"ाास्त्रीय परिप्रेक्ष्य में समाज"ाास्त्र में प्रचलित विभिन्न पद्धति की सहायता से ग्रामीण समाजों का क्रमबद्ध और व्यवस्थित अध्ययन करता है। समाज"ाास्त्र के

प्रमुखतः पांच पद्धति– (1) ऐतिहासिक–उद्विकासीय पद्धति, (2) संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति, (3) तुलनात्मक पद्धति, (4) अन्तःसांस्कृतिक या अन्तःराष्ट्रीय, और (5) अन्तः"ाास्त्रीय पद्धति है। ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय पद्धति भी ये पांच ही है जिनके द्वारा ग्रामीण समाज"ाास्त्री ग्रामीण समाजों की सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक अव्यवस्था और उनमें होने वाले परिवर्तनों का अध्ययन करता है। उन पद्धतियों की सविस्तार विवेचना प्रस्तुत है।

ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय पद्धति

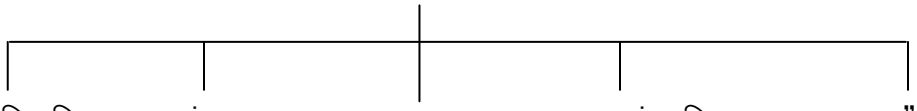

- **ऐतिहासिक–उद्विकासीय पद्धति**

ऐतिहासिक–उद्विकासीय पद्धति के अन्तर्गत सामाजिक गति"ाीलता, समाज के विकास एवं परिवर्तन के अध्ययन पर जोर दिया जाता है। इस पद्धति में सामाजिक तथ्यों की प्रमाणिकता और सत्यता को ऐतिहासिक घटनाओं के आधार पर वि"ोलेषित किया जाता है। इसमें समाज का काल–क्रमिक अध्ययन किया जाता है। भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र के साहित्य का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि 1951 तक अधिकतर सामाजिक वैज्ञानिकों ने भारतीय ग्रामों का ऐतिहासिक उद्विकासीय पद्धति के द्वारा अध्ययन किया था। तब तक अन्य पद्धति बहुत अधिक प्रचलन में भी नहीं थे। प्रारम्भ में भारत के ग्रामों से सम्बन्धित उनके इतिहास, उद्विकास, अर्थव्यवस्था, राजनैतिक व्यवस्था, भू–स्वामित्व, बसावट के प्रति एवं रेवेन्यू व्यवस्था आदि का काल–क्रमिक वर्णनात्मक अध्ययन करते थे। 1951 से पूर्व के सभी अध्ययन भारत के विभिन्न स्थानों एवं कालों में ऐतिहासिक–प्रमाण एकत्रित करके किए गए थे। **बी0आर0 चौहान** ने Rural Studies, A Trend Report; Survery of Research in Socialogy and Social Anthropology, Indian Council of Social Science Research, New Delhi, Vol. I में लिखा है कि 1951 से पूर्व भारत में होने वाले लगभग सभी अध्ययन उद्विकासीय पद्धति पर आधारित थे और इन अध्ययनों में भारतीय ग्रामीण समुदायों की चर्चा दो प्रकार से की गई है– (1) आदिम साम्यवाद के इतिहास को ज्ञात करने के लिए एवं (2) भारतीय ग्रामों को लघु गणतन्त्र के रूप में देखने तथा उनकी वि"ोषताओं को ज्ञात करने के लिए आपने एवं **योगेन्द्र**

सिंह ने लिखा है कि भारतीय ग्रामों में सामूहिक स्वामित्व का अध्ययन **बेडन पावेल** ने Village Communities एवं **हेनरी मेनन** Village Communities in the East and West में प्रस्तुत किया। इन्होंने भारतीय कृषक समाजों एवं ग्रामीण समाजों के सम्बन्ध में गहन एवं विस्तृत सूचनाएं प्रदान की है। इन विद्वानों ने भारतीय समुदायों के इतिहास, भू–स्वामित्व, अर्थव्यवस्था, ग्रामों के बसावट के प्रतिमान और रेवेन्यू व्यवस्था आदि का काल क्रमिक क्रमबद्ध वर्णन किया है। उनेक विद्वानों ने भारतीय ग्रामीण व्यवस्था, जमीदारी द्वारा शोषण, ग्रामीण जनसंख्या के प्रतिमान आदि का ऐतिहासिक उद्विकासीय पद्धति के द्वारा विवेचन किया है।

- **संरचात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति**

संरचात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति समाज"ाास्त्र एवं सामाजिक मानव"ाास्त्र में **रेडक्लिफ–ब्राउन** और **मेलिनोव्स्की** के नाम से जाना जताा है। इन विद्वानों ने वि"व के स्तर पर इस पद्धति का प्रयोग एवं महत्व 20वीं शताबदी के प्रारम्भ में बढ़ाया है। इस पद्धति के द्वारा ऐसे सिद्धान्त अथवा नियम की खोज करना है जो वह स्पष्ट करे कि संरचना की एक इकाई तथा अन्य सभी इकाईयां किसी एक वि"ाष्ट इकाई को कैसे प्रभावित करती हैं और प्रभावित होती है एवं समाज का अस्तित्व किस प्रकार से बना रह ता है। प्राकर्यात्मक पद्धति में इकाई का पूर्ण से, पूर्ण का इकाई से इकाइयों के परस्पर अन्तःसम्बन्धों का अध्ययन किया जाता है। भारतवर्ष में स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ग्रामों के अध्ययन में इस पद्धति का उपयोग होने लगा। यह पद्धति सम्पूर्ण समाज के संगठन का अध्ययन करता है तथा इस मान्यता पर आधारित होता है कि एक वि"ोष ग्रामीण संरचना एवं उससे सम्बन्धित प्रकार्यों को जानने के बाद ही विभिन्न ग्रामीण प्रतिमानों एवं उसकी समस्याओं को समझना सम्भव है। भारत के ग्रामीण समुदायों, उनकी विभिन्न संरचनाओं, परिवर्तन"ाील प्रक्रियाओं, जैसे– आर्थिक संरचनाओं, शक्ति संरचनाओं, ग्रामीण नेतृत्व आदि में इस पद्धति का प्रयोग किया गया **है। एन0एन0 श्रीनिवास** ने **रेड क्लिफ ब्राउन** के निर्दे"ान में दक्षिण भारत के कुर्ग समाज तथा धर्म का अध्ययन इस उपागम के द्वारा किया। **भयामाचरण दुबे** ने **भामीर पेट** ग्राम का अध्ययन भी इसी पद्धति के अनुसार किया है। **एम0सी0 मेयर** Caste and Kinship in Central India, **मैकिम मैरियट** की सम्पादित पुस्तक Village India, जो विभिन्न अध्ययनों पर आधारित लेखों की सम्पादित पुस्तक है, में इसी पद्धति को प्रयोग किया गया। **डी0एन0 मजूमदार** ने **मोहना** एवं **दुद्दी, चट्टोपाध्याय** ने **रंजना** और **चौहान** ने **राणावतों की सांदडी** ग्रामों का अध्ययन इसी पद्धति की सहायता से किया है। **वाइजर** ने जजमानी प्रथा का वि"ले"ाण, **बेली** ने जाति एवं आर्थिक

व्यवस्था का वि"लेषण **के0ए0 माथुर** ने जाति से सम्बन्धित संस्कारों का अध्ययन इसी पद्धति के आधार पर किया है। **बृजराज चौहान** ने संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति के आधार पर भारत के सभी ग्रामों को चार निमन प्रकारों में वर्गीकृत किया है– (1) बड़ा ग्राम, (2) मध्य ग्राम, (3) नगर के निकट वाला ग्राम एवं (4) जनजातियों के निकट का ग्राम। संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति के द्वारा किए गए अध्ययन अधिक वैज्ञानिक, प्रमाणित; सत्य एवं तथ्यों पर आधारित होते हैं जबकि ऐतिहासिक पद्धति पर आधारित अध्ययन अनुभाविक एवं प्रमाणिक तथ्यों पर कठिनाई से ही आधारित हो पाते है। **भयामाचरण दुबे** और **मेकिम मैरियट** ने भारतीय ग्रामों का प्रकार्यात्मक–संरचनात्मक अध्ययनों के आधार पर यह निष्कर्ष दिया है कि भारतीय ग्राम एक सीमा तक एक पृथक इकाई भी है तो दूसरे स्तर पर कुछ सीमा तक बड़े समुदायों का एक अंग भी है। **एस0सो0 दुबे** ने सुझाव दिया है कि हमें भारतीय ग्रामों के सम्बन्ध में सामान्यीकरण करने के लिए संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति के द्वारा विभिन्न क्षेत्रों व ग्रामों का बड़ी संख्या में अध्ययन करना चाहिए।

- **तुलनात्मक पद्धति**

ग्रामीण समाज"ाास्त्र में तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग 1918 में **गिलबर्ट स्लेटर** ने दक्षिण भारत के 12 गांवों का अध्ययन करने में किया था। यह अध्ययन 'सम साउथ इण्डियन–विलेजेज' शीर्षक के अन्तर्गत प्रका"ात हुआ। भारतीय ग्रामों के अध्ययन में तुलनात्मक पद्धति का उपयोग **आस्कर लेविस, योगे"ा अटल, ए0सी0दुबे, दामले, रामकृश्ण मुखर्जी** आदि ने भी किया है। तुलनात्मक पद्धति को निम्नलिखित अध्ययनों के रूपों में देखा जा सकता है – (1) एक ही काल में दो या अधिक ग्रामों का तुलनात्मक अध्ययन, (2) एक ही ग्राम का दो या अधिक कालों में तुलनात्मक अध्ययन, और (3) विभिन्न काल में दो या अधिक ग्रामों का तुलनात्मक अध्ययन। ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अन्तर्गत इस उपागम का प्रयोग प्रयोगात्मक पद्धति के विकल्प के रूप में किया जाता है। उपर्युक्त वर्णित तुलना को तीनों स्थितियों में समान तथा असमान वि"ोषताओं से सम्बन्धित तर्क एकत्र करके सामान्यीकरण करने का प्रयास किया जाता है। इस उपागम द्वारा एक ही राष्ट्र के विभिन्न ग्रामों की तुलना भी की जाती है और एक से अधिक राष्ट्रों के ग्रामों का भी तुलनात्मक पद्धति से अध्ययन किया जाता है। **आस्कर लेविस** ने **मैक्सिको** के ग्राम **तपोजलान** की तुलना **भारत** के ग्राम **रानी खेड़ा** से की है। **योगे"ा अटल** ने Changing Frontiers of Caste में मध्य प्रदे"ा के खेटिया और राजस्थान के खेड़ी ग्राम का तुलनात्मक अध्ययन किया। **प्रोफेस्टाइन** ने मैसूर के छः ग्रामों का तुलनात्मक अध्ययन

Economic Development and Social Change कृति के रूप में प्रकाि"ात किया है। **के0एल0 भार्मा** ने राजस्थान के छः ग्रामों का The Changing Rural Stratification System तथा **रामकृश्ण मुखर्जी** ने बंगला के बांकुरा जिले के छः ग्रामों का तुलनात्मक अध्ययन Rural Class Structure in West Bengal in the Dynamics of Rural Society में प्रकाि"ात किया। **जी0एस0 घुर्रे** ने बिहार के तालुका जिले के ग्रामों का तुलनात्मक अध्ययन 'Anatomy of a Rural-Urban Community Development' नामक कृति के रूप में प्रकाि"ात किया। भारतवर्ष में इन उपर्युक्त वर्णित अध्ययनों के अतिरिक्त सामुदायिक कार्यक्रमों के प्रभावों, शक्ति संरचना, नेतृत्व, नातेदारी, जातिप्रथा में परिवर्तन सामाजिक स्तरीकरण आदि विषयों का तुलनात्मक अध्ययन स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद अनेक विद्वानों द्वारा किए गए हैं।

- **अन्तःसांस्कृतिक या अन्तःराश्ट्रीय पद्धति**

जब कोई वैज्ञानिक दो या अधिक राष्ट्रों या सांसकृतिक क्षेत्रों के ग्रामीण जीवन का तुलनात्मक अध्ययन करता है और एक सामान्य प्रतिमान को विकसित करता है तो इस प्रकार के उपागम पर आधारित वैज्ञानिक अध्ययन अन्तःसांस्कृतिक या अन्तः राष्ट्रीय पद्धति कहलाता है। कुछ विद्वानों ने इस पद्धति को तुलनात्मक पद्वति का ही एक प्रकार माना है। लेकिन कुछ विद्वानों ने इसे वि"ाष्ट प्रकार की पद्धति इसलिए माना है कि यह दो विभिन्न सांस्कृतिक क्षेत्रों या सामान्य सांस्कृतिक तथ्यों के बीच अध्ययन करने के लिए प्रयुक्त किया जाता है। अन्तः सांस्कृतिक पद्धति इन सांसकृतिक क्षेत्रों के लिए वि"ोष महत्व का है जिनमें ग्रामीण समाजों का अध्ययन अपनी शै"ाव अवस्था में हैं अमेरिका एवं अन्य दूसरे दे"ाों में ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों ने द्वितीय वि"व के बाद इस पद्वति को ग्रामीण समाजों के अध्ययन के लिए वि"ोष महत्वपूर्ण माना है। **भूमेकर** ने Communication of Innovation : A Croos Curtural Approach' में ब्राजील, नाइजीरिया एवं भारत के ग्रामों का इस पद्धति के द्वारा अध्ययन किया। **ऑस्कर लेविस** का मैक्सिको के ग्राम **तपोजलान** तथा भारत के ग्राम **रानी खेड़ा** का तुलनात्मक अध्ययन इसी अध्ययन–पद्वति के अन्तर्गत आता है। इस पद्वति के द्वारा विकसित दे"ाों के ग्रामों एवं निष्कर्षों को विकास"ाील दे"ाों सातत्व और प्रमाणिकता की जांच करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है विद्वानों का सुझाव है कि विषयों की तीसरी शक्ति के अन्तर्गत आने वाले दे"ाों की अधिकां"ा ग्रामीण समस्याएं करीब–करीब एकांकी हैं और उनका अध्ययन अन्तःसांस्कृतिक या अन्तःराष्ट्रीय पद्वति के द्वारा करके समस्याओं के निराकरण की खोज की जानी चाहिए।

- **अन्तः"ाास्त्रीय पद्धति**

यह पद्धति वह है जिसमें किसी भी घटना या समस्या का अध्ययन अनेक विज्ञानों के वि"ोषज्ञों द्वारा अपने–अपने विज्ञानों के परिप्रेक्ष्यों को ध्यान में रखकर किया जाता है और अन्त में सभी वैज्ञानिक मिलकर घटना या समस्या से सम्बन्धित सिद्धान्त निर्मित करते हैं अथवा समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं। इस पद्धति के अन्तर्गत ग्रामीण समाज के संगठन व्यवस्था या किसी समस्या का अध्ययन जिसमें विभिन्न सम्बन्धित विषयों के वि"ोषज्ञों के द्वारा अपने–अपने परिप्रेक्ष्यों के अनुसार तथ्य संकलित किए जाते हैं, उनका वर्गीकरण एवं वि"लेषण किया जाता है और अन्त में निष्कर्ष निकाले जाते हैं। **श्यामचरण दुबे** ने सामुदायिक विकास योजनाओं के प्रभावों का अध्ययन करने के लिए वि"ोष विद्वानों का एक संगइन बनाया था और अन्तः"ाास्त्रीय पद्वति के द्वारा प्रभावों का मूल्यांकन किया था। ये अध्ययन आपके द्वारा लिखित पुस्तक 'Indian's Changing Villages' में प्रकाि"ात हुआ है। भारत के ग्रामीण समाजों से सम्बन्धित विभिन्न विषयों, जैसे– पंचवर्षीय योजना, पंचायती राज लोकतांत्रिक विकेन्द्रीकरण, हरित–क्रान्ति, भूमि–सुधार आन्दोलन आदि का अध्ययन इस पद्वति के द्वारा किया जाता रहा है। इस पद्धति में किन–किन विषयों के वि"ोषज्ञों का दल संगठित किया जायेगा। यह इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीण समाज का अध्ययन का विषय क्या है और उस विषय से सम्बन्धित किन–किन पहलुओं का अध्ययन नि"चित किया गया है। उदाहरण के रूप में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, भौगोलिक और पारिस्थितिक पक्षों को लिया जाता है। इसलिए ग्रामीण समाज"ाास्त्र में अधिकतर अध्ययनों में अन्तः"ाास्त्री पद्धति के अन्तर्गत सम्बन्धित विषयों के वि"ोषज्ञों द्वारा अध्ययन किया जाता है। ग्रामीण समाज"ाास्त्र में प्रभुत्व जाति, नेतृत्व, संस्कृतिकरण, विकास योजनाएं आदि का अध्ययन समय–समय पर इस उपागम के द्वारा किया जाता रहा है।

2.6 ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन प्रविधि एवं उपकरण

प्रविधि से अभिप्राय सामाजिक अनुसान्सा के उस उपकरण यन्त्र या माध्यम से है जिसकी सहायता से अनुसन्धानकर्ता सुव्यवस्थित ढंग से अध्ययन समस्या से सम्बन्धित आँकड़ों या सामग्री

का संकलन करता है तथा इन्हें क्रमबद्ध करता है। अनुसन्धान में वास्तविक रूप में आंकड़े एकत्रित करना, सही निष्कर्ष निकालने के लिए अनिवार्य है। प्रत्येक विज्ञान में आंकड़े संकलन करने की विभिन्न प्रकार की प्रविधियाँ हो सकती है तथा एक ही विषय में भी समस्या की प्रकृति के आधार पर एक से अधिक प्रविधियों का चयन करके उस समस्या से सम्बन्धित आंकड़ एकत्रित किए जाते है। प्रत्येक विज्ञान अपनी प्रकृति के अनुसार अलग–अलग प्रविधियों को विकसित करता है तथा प्रविधि में कई बार आव"यकतानुसार परिवर्तन भी किया जा सकता है ग्रामीण समाज"ाास्त्र में निम्न प्रविधियों को अनुसंधान के विकसित किया गया है।

- **सामाजिक अनुसंधान प्रविधि**

आधुनिक युग में अनुसन्धान शब्द के साथ जुड़–सा गया है। मानव सभ्यता के उद्धान्त और चरम तथ्यों की पुनः खोज करने की दृष्टि से आज लगभग सभी क्षेत्रों में अनुसंधान हो रहे है जिनके अनुसार यह कहा जा सकता है कि किसी वस्तु या किसी विषय के तथ्यों एवं सिद्धान्तों के अन्वेषणों हेतु वि"ोष सावधानीपूर्वक किया गया एक अन्वेषण उस विषय में की गई निरन्तर सावधानीपूर्वक जाँच अथवा शीध्र अनुसंधान कहलाता है।

ग्रामीण समाज"ाास्त्र में इस प्रविधि को सार्वभौमिक रूप से अपनाया जाता है। क्योंकि एक व्यवस्थित प्रणाली के रूप में संसार के सभी प्रगतिवादी विचारकों ने इस प्रविधि के महत्व को स्वीकार किया है। समाज"ाास्त्र सामाजिक समस्याओं के निष्पक्ष वि"लेषण का शास्त्र कहा जाता है। इसे सामाजिक अनुसंधान प्रविधि का शास्त्र कहा जाता है। सामाजिक अनुसन्धान प्रविधि के द्वारा विभिन्न महत्वपूर्ण सामाजिक समस्याओं का निष्पक्ष वि"लेषण किया जा सकता है। सामाजिक अनुसंधान की उपयोगिता इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय है कि इसमें समाज के वि"लेषण हेतु शुद्ध और वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाया जाता है। वि"वसनीय तथ्यों का ज्ञान प्राप्त करने की दृष्टि से भी सामाजिक अनुसंधान बड़ी उपयोगी प्रविधि है।

- **समाजमिति प्रविधि**

समाज"ाास्त्र यह चाहता है कि समाज का परिमाणात्मक और गुणात्मक दृष्टि से अध्ययन प्रस्तुत करे। इसलिए इस शास्त्र में दोनों ही प्रकार की प्रविधि का अनुसरण किया जाता है। परिमाणात्मक पहलुओं और घटनाओं के सम्बन्ध में समाज"ाास्त्री बड़ी ही सरलता से निष्कर्ष निकाल लेते हैं गुणात्मक दृष्टि से प्राप्त किए गए तथ्यों की प्रकृति का भी बड़ी सरलता से निष्कर्ष मालूम किया जाए और गुणात्मक घटनाओं के परिणामस्वरूप वि"लेषण प्राप्त किया जाये।

समाज"ाास्त्री इस कठिनाई से बच नहीं सकता। इसमें प्रत्येक तथ्य को दोनों दृष्टियों से ही अवलोकन करना अनिवार्य है।

वास्तव में, समाजमिति एक प्रकार से गुणात्मक तथ्यों की गणना विधि है, अथवा हम यह कह सकते है कि यह पद्धति गणना विधि और आद"ार्ा कल्पना विधि दोनों का मिश्रण है। आद"ार्ा कल्पना विधि की दृष्टि से समाजमिति संख्यात्मक और गुणात्मक पहलूओं जैसे– ईर्ष्या, द्वेष, संघर्ष, स्नेह आदि के सम्बन्ध में संख्यात्मक कल्पनाओं का निरूपण करती है। इस तरह व्यक्तियों के परिस्परिक सम्बन्धों में मानसिक और भावात्मक उद्दे"यों के प्रति संख्यात्मक कल्पनाओं का निरूपण कर इन्हें मापने योग्य बनाती है।

- **सांख्यिकी प्रविधि**

सामाजिक विज्ञानों के क्षेत्र में संख्यात्मक पद्धति से तथ्यों को मापने के लिए सामाजिक सांख्यिकी पद्धति का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है। सामाजिक जीवन के अध्ययन में संस्थाओं, समितियों, समूहों आदि का अध्ययन किया जाता है। इस समस्त अन्य विषयों के अध्ययन में वि"ाल संख्याओं का भी प्रयोग किया जाता है। सामाजिक तथ्यों से सम्बन्धित संगृहीत सामग्री का स्वरूप इतना वि"ाल और भिन्न होता है कि उसके द्वारा मानव जीवन के बारे किसी भी प्रकार के निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते है। इस कार्य को सांख्यिकीय माध्यमों द्वारा सरल बनाया जाता हैं इस सम्बन्ध में **जी0पी0 यंग** ने भी उचित लिखा है, ''वि"ाल अंकों को संक्षिप्त करने के लिए आवृत्ति वितरण अत्यधिक उपयोगी है, लेकिन संक्षिप्तीकरण की प्रकृति सम्पूर्ण श्रेणी की वि"ोषताओं को एक अथवा अधिक से कुछ महत्वपूर्ण अंकों को संकुचित करने के द्वारा बहुत अधिक आगे बढ़ाई जा सकती है। ये अंक माध्य के रूप में जाने जाते है तथा वे एक चरण के वि"ाष्अ मूल्यों का प्रतिनिधितव करते है।''

- **ग्रामीण सर्वेक्षण**

ग्रामीण सर्वेक्षण अनुसन्धान का एक ऐसा तत्व है जोकि बड़ी संख्या में ग्रामीण व्यक्तियों के वि"वासों, मनोवृत्तियों, विचारधाराओं तथा व्यवहारों अध्ययन, उन्हें प्रभावित करने वाले, विभिन्न कारकों तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का वि"लेषण एवं विवेचन करने के लिए तथ्यों के संकलन से सम्बन्धित है भारत में सम्पूर्ण गांवों सर्वेक्षण के लिए कृषि मंत्रालय भारत सरकार वित्त की व्यवस्था करता है सम्पूर्ण भारत के गाँवों का आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक, साथ अन्य

कारकों के आधार पर समय–समय पर ग्रामीण सर्वेक्षण करता है। जिसकी सहायता से ग्रामीण विकास की योजना तथा ग्रामीण विकास के रचनात्मक कार्यक्रमों को लागू किया जाता है।

- **जनगणना एवं निद"र्न प्रविधियाँ**

समाज"ाास्त्रीय एवं ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय अन्वेषण की विषय–वस्तु व्यक्ति, परिवार, समूह, संस्थाएं एवं संगठन इत्यादि है। अनुसंधान समस्या का निर्माण कर लेने के प"चात अनुसान्धकर्ता समस्या से सम्बन्धित उपकल्पनाओं का निर्माण करता है तथा फिर सामग्री एकत्रित करने की उपयुक्त प्रविधि का निर्माण करके सामग्री एकत्रित करने का कार्य प्रारभ्भ करता है। सामग्री एकत्रित करने से पहले उसे यह निर्णय लेना पड़ता है कि अध्ययन की इकाई क्या होगी और वह कितनी इकाइयों अथवा सूचना दाताओं का अध्ययन करेगा इस सन्दर्भ में उसके सामने दो विकल्प है।

जनगणना– जनगणना का अभिप्राय समग्र या सम्पूर्ण की सभी इकाईयों का अध्ययन करना है इस समग्रता की इकाई एक समूह समुदाय (गांव अथवा नगर) तहसील, जिला, राज्य अथवा सम्पूर्ण राष्ट्र हो सकता है भारत में सर्वप्रथम जनगणना 1872 ई0 में करवाई गई थीं तब से प्रत्येक दस वर्ष के प"चात सरकार द्वारा जनगणना करवाई जाती है समाज"ाास्त्र में जनसंख्या सम्बन्धी अध्ययनों की एक वि"िाष्ट शाखा है जिसे सामाजिक जनांकिकी के नाम से जाना से जाना जाता है इस से प्राप्त आंकड़ों का प्रयोग परिवार नियोजन, कृषि समस्या, गरीबी निवारण, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, पिछड़े वर्गों की सामाजिक–आर्थिक द"ाा में सुधार, ि"ाक्षा के प्रसार, जन्म–मृत्यु दर के अनुमान तथा जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के समाधान के विभिन्न आयु वर्गों की सामाजिक आर्थिक द"ाा में सुधार, ि"ाक्षा के प्रसार, जन्म–मृत्यु दर के अनुमान तथा जनसंख्या के विभिन्न आयु वर्गों सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के समाधान हेतु किया जा सकता है तथा इस दि"ाा में महत्वपूर्ण कदम उठाये जा सकते है।

निद"र्न– समाज"ाास्त्रीय अनुसन्धानकर्ता सम्पूर्ण समाज, समुदाय या समग्र का अध्ययन नहीं कर सकता। अतः समग्र के कुछ भागों तथा इकाईयों का चुनाव करना अनिवार्य हो जाता है तथा वैज्ञानिक अनुसंधान में इस कार्य को सम्भव बनाने वाला चरण निद"र्न कहलाता है निद"र्न प्रविधियों के प्रयोग द्वारा अनुसन्धानकर्ता समग्र की कुछ इकाईयों अथवा ऐसे अं"ाों का चुनाव करके, जोकि समग्र का प्रतिनिधित्व करते है अपना समय, श्रम, एवं धन ही नहीं बचा लेते है

अपितु कम प्रयास में सम्पूर्ण अध्ययन भी हो जाता है। अतः स्पष्ट हो जाता है कि निद"ान किसी वि"ाल समूह, समग्र या योग का एक अं"ा है जो कि समग्र का प्रतिनिधि अर्थात् अं"ा की भी वहीं वि"ोे"ाताएं जो सम्पूर्ण समूह या समग्र की है।

- **साक्षात्कार**

साक्षात्कार अनुसंधान में आंकड़े संकलन करने की एक प्राचीन एवं बहुचर्चित प्रविधि है जिसका समाज"ाास्त्र में इतना अधिक प्रयोग किया गया है कि यह आज एक सर्वाधिक प्रचलित एवं सर्वोपरि प्रविधि मानी जाती है। अवलोकन द्वारा हम अनेक प्रकार के अध्ययन नहीं कर सकते परन्तु साक्षात्कार प्रविधि सूचनादाता के सामने बैठकर वार्तालाप का अवसर प्रदान करती है जिससे कि उसके मनोभावों, मनोवृत्तियों तथा दृष्टिकोणों के बारे में भी जानकारी प्राप्त हो सकती है। इसका प्रयोग केवल समाज"ाास्त्र में ही नहीं किया जाता अपितु अन्य सामाजिक विज्ञानों, मनोचिकित्सा मनोवि"ले"ाण एवं चिकित्सा जैसे विषयों में भी अत्यधिक प्रचलन देखा जा सकता है साक्षात्कार प्रविधि द्वारा अनुसंधानकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन का अध्ययन कर सकता है **ऑलपोर्ट** के अनुसार यह प्रविधि सूचनादाताओं की भावनाओं, अनुभवों संवेगों तथा मनोवृत्तियों के अध्ययन में वि"ोष रूप से उपयोगी है इस प्रकार से हम कह सकते है कि साक्षात्कार सामाजिक अनुसंधान में आंकड़े संकलन करने की एक प्रविधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता सूचनादाता के बाहरी एवं आन्तरिक जीवन से सम्बन्धित तथ्यों का परस्पर वार्तालाप औचारिक या अनौपचारिक वर्तालाप द्वारा पता लगाता है।

- **वैयक्तिक अध्ययन**

सामाजिक अनुसन्धान में वैयक्तिक अध्ययन (जिसे वैयक्तिक विषय अध्ययन अथवा एकल–विषय अध्ययन भी कहा जाता है) आंकड़े एकत्रित करने की सर्वाधिक प्राचीन प्रविधि है। यह किसी सामाजिक इकाई के गहन एवं विस्तृत अध्ययन करने तथा इस प्रकार उस इकाई के बारे में सम्पूर्ण गुणात्मक आंकड़े एकत्रित करने की महत्वपूर्ण प्रविधि मानी जाती है। सामाजिक अनुसंधान में सम्पूर्ण गुणात्मक आंकड़े एकत्रित करने की महत्वपूर्ण प्रविधि मानी जाती है। सामाजिक अनुसंधान में दो प्रकार की सामग्री एकत्रित की जाती है। (1) गुणात्मक सामग्री, आंकड़े, सूचनाएं अथवा तथ्य, तथा (2) परिमाणात्मक सामग्री, आंकड़े, सूचनाएं अथवा तथ्य परिमाणात्मक सूचनाओं का संकलन सांख्यिकीय अथवा आंकड़ों सम्बन्धी अध्ययन प्रविधियों तथ्य। परिमाणात्मक सूचनाओं का संकलन सांखियकीय अथवा आंकड़ों सम्बन्धी अध्ययन प्रविधियों द्वारा

किया जाता है, जबकि गुणात्मक सूचनाओं का संकलन वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि द्वारा किया जाता है। वैयक्तिक अध्ययन सामाजिक अनुसन्धानकर्ता को तीव्र एवं सूक्ष्म अन्तर्दुष्टि प्रदान करके इकाई का गहन अथवा विस्तृत करके उनके निदान एवं समाधान के उपायों का भी पता लगाया जा सकता है। इसलिए यह प्रविधि समाज"ाास्त्र के अतिरिक्त अन्य विज्ञानों में भी प्रयोग की जाती है।

सामाजिक अनुसंधान में आंकड़ों के संकलन के लिए प्रयोग की जाने वाली प्रविधियों में केवल वैयक्तिक अध्ययन ही ऐसी प्रविधि है जोकि सामाजिक इकाई के बारे में गहन, विस्तृत एवं सम्पूर्ण सूचना प्रदान करने में सहायता प्रदान करती है। इस प्रविधि का सबसे पहले प्रयोग इतिहासकारों द्वारा व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के विस्तृत विवरण प्रस्तुत करने के लिए किया जाता था परन्तु बाद में छोटी सामाजिक इकाईयों जेसे कि कोई समुदाय, समूह, समिति, संस्था, परिवार अथवा व्यक्ति आदि के विस्तृत अध्ययनों के लिए समाज"ाास्त्र तथा मनोविज्ञान में भी इसका प्रयोग किया जाने लगा। यद्यपि समाज"ाास्त्र में इस प्रविधि का सबसे पहले प्रयोग करने का श्रेय **हरबर्ट स्पेन्सर** को दिया जाता है फिर भी इसका क्रमबद्ध प्रयोग सबसे पहली बार **लीप्ले** द्वारा पारिवारिक बजटों के अध्ययन के लिए किया गया था।

- **प्र"नावली**

प्र"नावली का सामाजिक अनुसंधान में विस्तृत एवं व्यापक क्षेत्र में फैले हुए सूचनादाताओं से आंकड़े संकलन करने में महत्वपूर्ण स्थान है। यह आंकड़ों संकलन करने की एक ऐसी प्रविधि है जिसमें कम समय में अनेक सूचनादाताओं, जोकि विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए होते है, से सूचना एकत्रित की जा सकती है। प्र"नावली प्र"नों की एक सूची है। जिनका उत्तर स्वयं सूचनादाता भरता है अतः इसका प्रयोग उन्हीं परिस्थितियों में किया जा सकता है जिसमें सूचनादाता ि"ाक्षित है, साथ ही, इसका प्रयोग एक पूर्ण अनुसंधान उपकरण के रूप में भी किया जाता है तथा एक सहायक अथवा पूरक उपकरण के रूप में भी। अमेरिका तथा पि"चमी दे"ाों में प्र"नावली सामाजिक अनुसंधान का प्रमुख उपकरण है परन्तु भारत एवं अनेक अन्य विकास"ाील दे"ाों में इसका प्रयोग समाज के केवल कुछ वर्गों जैसे नौकरी करने वाले, छात्रों इत्यादि का अध्ययन करने के लिए ही किया जा सकता है।

- **अनुसूची**

अनुसूची सामाजिक अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करने का एक उपकरण है। यह सर्वाधिक प्रचलित प्रविधि है क्योंकि इसका यथार्थ एवं वास्तविक आंकड़ों को प्रत्यक्ष रूप में संकलन करने में महत्वपूर्ण स्थान है यह प्र"नों की एक सूची है जिसे अनुसंधानकर्ता सूचनादाता के पास लेकर जाता है तथा उससे प्र"नों के उत्तर पूछकर स्वंय उन्हें अनुसूची में अंकित करता है क्योंकि साक्षात्कार तथा अवलोकन पूरक (सहायक) प्रविधियों का कार्य करती है अतः यह अधिक वि"वसनीय आंकड़ों के संकलन में सहायक है भारतीय समाज में हो रहे सामाजिक अनुसंधानों में इस प्रविधि का सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है। क्योंकि इसके द्वारा ि"ाक्षित एवं अि"ाक्षित दोनों प्रकार के सूचनादाताओं से आंकड़े एकत्रित किया जा सकते है। इस प्रकार से अनुसूची एक ऐसा प्रपत्र या सूची है जिस पर अनुसंधान की समस्या से सम्बन्धित विभिन्न प्र"नों को नि"चित क्रम में लिखा हुआ होता है तथा जिसे लेकर अनुसन्धानकर्ता सूचनादाता के पास जाता है और औपचारिक साक्षात्कार के द्वारा प्र"नों इन प्र"नों के उत्तर प्राप्त करके इनके उत्तर स्वंय भरता है।

2.7 सारां"ा

इस इकाई में आपने ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विषय–वस्तुत को समझा तथा विभिन्न समाज"ाास्त्रियों द्वारा ग्रामीण अध्ययनों के आधार पर निर्मित अवधारणा को समझा, साथ ही अध्ययन पद्धति क्या होती है ग्रामीण समाज"ाास्त्र में अध्ययन के लिए कौन–कौन सी पद्धति का प्रयेाग किया जाता, को हमने जाना है इस के अलावा हमने जाना कि ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अध्ययन में कौन–कौन सी प्रविधि एवं उपकरण को विद्वानों द्वारा अध्ययन में अपनाया जाता है।

2.8 शब्दावली

पद्धतिः– एक वि"ाष्ट है जिसकी सहायता से अनुसन्धान या अध्ययन की समस्या के बारे में क्रमबद्ध ज्ञान किया जा सकता है क्योंकि पद्धति का अभिप्राय वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करने में सहायता प्रदान करना है।

प्रविधिः– प्रविधि का अभिप्राय आंकड़े, सूचना या सामग्री एकत्रित करने का एक उपकरण से है। सामाजिक अनुसंधान में अनेक प्रविधियां प्रचलित है तथा प्रत्येक प्रविधि तथ्यों के संकलन का एक स्वीकृत तथा मान्य तरीका है।

2.9 अभ्यास प्र"न

1. ऐतिहासिक–उद्विकासीय पद्धति के अन्तर्गत अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

   (अ) सामाजिक तथ्यों को संरचनात्मक आधार से

   (ब) सामाजिक तथ्यों को प्रकार्यात्मक आधार से

   (स) सामाजिक तथ्यों को ऐतिहासिक–उद्विकासीय आधार से

   (द) सामाजिक तथ्यों को तुलनात्मक आधार से

2. संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक पद्धति के जन्मदाता समाज"ाास्त्र एवं मानव"ाास्त्रियों में नाम आता है।

   (अ) रेडक्लिफ्फा–ब्राउन और मेलिनोव्सकी का

   (ब) मजूमदार और मदान का

   (स) ए0आ0 देसाई का

   (द) एम0एन0 श्रीनिवास का

3. तुलनात्मक पद्धति से भारत में सर्वप्रथम गांवों का अध्ययन किया था।

   (अ) एम0सी0 मेयर ने (ब) गिलबर्ट स्लेटर ने

   (स) मैकिम मैरियट ने (द) योगेन्द्र सिंह ने

4. अन्तः सांस्कृतिक या अन्तःराष्ट्रीय पद्धति के अन्तर्गत अध्ययन किया जाता है।

   (अ) दो या अधिक गांवों का जीवन का अध्ययन

   (ब) दो या अधिक नगरों का जीवन का अध्ययन

   (स) दो या अधिक राज्यों का अध्ययन

   (द) दो या अधिक राष्ट्रों या सांस्कृतिक क्षेत्रों का ग्रामीण जीवन का अध्ययन

5. अन्तः"ाास्त्रीय पद्धति से तात्पर्य है।

   (अ) समस्या का समाधान प्रस्तुत करते है

   (ब) समस्या का अध्ययन करते है

   (स) गांवों का तुलनात्मक अध्ययन करते है

(द) गांव तथा शहर का तुलनात्मक अध्ययन करते है

6. निमन लिखित के सही जोड़े बनाए।

(i) लघु–परम्परा	(अ) एम0एन0 श्रीनिवास
(ii) संस्कृतिकरण	(ब) रॉबर्ट रेडफील्ड
(iii) सार्वभौमिकरण	(स) योगेन्द्र सिंह
(iv) आधुनिकीकरण	(द) मैकिम मैरियट

(अ) (i) ब, (ii) म, (iii) द, (iv) अ (ब) (i) ब, (ii) अ (iii) द, (iv) स

(स) (i) अ, (ii) ब (iii) स, (iv) द (द) (i) स, (ii) द, (iii) अ, (iv) द

7. किसी एक समुदाय के सम्पूर्ण जीवन अथवा इसके किसी एक पक्ष के व्यवस्थित एवं पूर्ण तथ्य वि"लेषण को क्या जाता है।

(अ) सर्वेक्षण (ब) प्र"नावली

(स) अनुसूची (द) वैयक्तिक अध्ययन

8. सामाजिक सर्वेक्षण किस प्रकार के अध्ययनों में सहायक है।

(अ) वर्णनात्मक अध्ययन (ब) अन्वेषणात्मक अध्ययन

(स) कार्य–कारण सम्बन्धी अध्ययन (द) उपर्युक्त सभी

9. प्र"नों के उत्तर प्रापत करने के उस उपकरण को क्या कहा जाता है जिसे उत्तरदाता स्वयं भरता है।

(अ) साक्षात्कार (ब) प्र"नावली

(स) अनुसूची (द) वैयक्तिक अध्ययन

10. अनुसन्धानकर्ता द्वारा स्वयं संकलित सामग्री को क्या कहा जाता है।

(अ) प्राथमिक (ब) द्वितीयक

(स) तृतीयक (द) उपर्युक्त में से कोई नहीं

11. निम्नलिखित में से कौन–सा साक्षात्कार का उद्दे"य नहीं है

(अ) व्यक्तिगत सूचनाओं का संकलन (ब) अवलोकन का अवसर

(स) अप्रत्यक्ष सम्पर्क (द) अन्य प्रविधियों को प्रभावपूर्ण

12. निम्नलिखित में से कौन–सा अनुसूची का गुण है।

(अ) सीमित क्षेत्र का अध्ययन (ब) अधिक प्रत्युत्तर

(स) अधिक धन का व्यय (द) अधिक समय

अभ्यास प्र"नों के उत्तर–

1. (स), 2. (अ), 3. (ब), 4. (द), 5. (अ), 6. (ब), 7. (अ), 8. (द), 9. (ब), 10. (अ), 12. (ब)

2.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

8. एस0सी0दुबे, 'भारतीय गांव', 1955।
9. डी0एन0 मजूमदार (सम्पादित), 'ग्रामीण रूपरेखा', 1955।
10. मिकिम मैरियट (सम्पादित), 'ग्रामीण भारत'।
11. रामकृष्ण मुखर्जी, 'ग्रामीण समाज की गत्यात्मकता', 1957।
12. ए0आर0 देसाई, (सम्पादित), 'भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र'।
13. बी0आर0 चौहान, 'ए राजस्थान विलेज'।

2.11 सहायक/उपयोगी पाठसामग्री

1. Doshi and Jain, Rural Sociology (2014), Rawat Publication, Jaipur
2. तेजमल दक ''भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', किताब महल प्रा0लि0, इलाहाबाद
3. वी0 प्रका"ा, शर्मा, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र (1999)'', पंच"ाील प्रका"ान, जयपुर
4. डॉ0 एम0एम0 लवानिया, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', रिसर्च पब्लिके"ान्स, जयुपर
5. डॉ0 वीरेन्द्रनाथ सिंह, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', विवेक प्रका"ान, दिल्ली
6. रामबिहारी तोमर, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', श्री मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा
7. गुप्त एवं शर्मा– भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र, साहित्य अब पब्लिके"ान (1998), आगरा।

2.12 निबन्धात्मक प्र"न

1. ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय पद्धति कौन–कौन सी है? किन्हीं दो का सविस्तार विवेचना कीजिए।
2. भारत के ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय अध्ययनों की विवेचना कीजिए?
3. भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र में कौन–कौन सी महत्वपूर्ण अवधारणाओं का निर्माण हुआ है किन्हीं दो की विवेचना कीजिए?
4. ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विषय–वस्तु से आप क्या समझते है इसकी विवेचना कीजिए।
5. पद्धति से आप क्या समझते है ग्रामीण समाज"ाास्त्रीय अध्ययनों में इस विवेचना कीजिए?

6- ग्रामीण समाज"ाास्त्र में तथ्य संकल की प्रविधि कौन–सी है उनकी विवेचना कीजिए।

इकाई– 3 गामीण–नगरीय सातत्य– विभिन्नता एवं सम्बद्धता
(Rural-Urban Continuum-differences and Linkages)

इकाई की रूपरेखा

3.1 उद्दे"य

3.2 प्रस्तावना

3.3 ग्रामीण समुदाय की अवधारणा

3.4 ग्रामीण ग्रामीण समुदाय की वि"ोषताएं

3.5 नगरीय समुदाय की अवधारणा

3.6 नगरीय समुदाय की वि"ोषताएं

3.7 ग्रामीण नगरीय सातत्य

3.8 ग्रामीण–नगरीय सातत्य आधुनिक प्रक्रिया के रूप में

3.9 ग्रामीण–नगरीय सातत्य समाज में विभिन्नता के आधार

3.10 ग्रामीण नगरीय सातत्य में सम्बन्धता के आधार

3.11 सारां"ा

3.12 शब्दावली

3.13 अभ्यास प्र"नों के उत्तर

3.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

3.15 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.16 निबंधात्मक प्र"न

3.1 उद्दे"य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- ग्रामीण समुदाय की अवधारणा एवं उसकी वि"ोषताओं को जान सकेंगे।
- नगरीय समुदाय की अवधारणा एवं उसकी वि"ोषताओं को जान सकेंगे।
- ग्रामीण–नगरीय सातत्य की अवधारणा एवं आधुनिक प्रक्रिया के रूप में जान सकेंगे।
- ग्रामीण–नगरीय सातत्य में विभिन्नता के आधार को जान सकेंगे।

- ग्रामीण–नगरीय सातत्य में सम्बन्धता के आधार को जान सकेंगे।

3.2 प्रस्तावना

सामान्यतः समुदाय को दो भागों में बाँटा गया है– ग्रामीण तथा नगरीय समुदाय! प्रत्येक मनुष्य इन दोनों में से किसी एक प्रकार के समुदाय में निवास करता है ग्राम और नगर जीवन के दो पहलू है गाँवों का प्रकृति से प्रत्यक्ष और निकट का सम्पर्क पाया जाता है जबकि नगरों में कृत्रिमता की प्रधानता होती है। ग्राम और नगरों में पाई जाने वाली विभिन्नताओं के उपरान्त भी नहीं कहा जा सकता कि में दोनों बिल्कुल अलग–अलग है आधुनिकता के बढ़ते प्रभाव ने ग्रामों को नगरों से जोड़ दिया है जिम से ग्रामीण जीवन में नगरीय जीवन के, और नगरीय जीवन में ग्रामीण जीवन के अनेक तत्व मिलते है जिसमें ग्राम और नगर की निरन्तरता सातत्य बढ़ रहा है।

3.3 ग्रामीण समुदाय की अवधारणा

एन्साइक्लोपीडिया ऑफ सोि"यल साइन्सेज में लिखा है, ''एकांकी परिवार से बड़ा सम्बन्धित तथा असम्बन्धित लोगों का समूह, जो एक बड़े मकान या निवास के अनेक स्थानों पर रहता हो, घनिष्ठ सम्बन्धों से आबद्ध हो तथा कृषि पर मूल रूप में संयुक्त रूप में कृषि करता हो, ग्राम कहलाता है।;;

डी0 सेण्डरसन के अनुसार, ''एक ग्रामीण–समुदाय एक संघ का वह स्वरूप है, जो एक स्थानीय क्षेत्र में जनता एवं उसकी संस्थाओं के बीच पाया जाता है, जिसमें वे बिखरे हुए खेतों झौपडियों में रहते हैं, जो प्रायः उनकी सामान्य गतिविधियों का केन्द्र होता है।''

फेयर चाइल्ड ने लिखा, ''ग्रामीण समुदाय पड़ौस की अपेक्षा विस्तृत क्षेत्र है जिसमें आमने–सामने के सम्बन्ध पाए जाते हैं, जिसमें सामूहिक जीवन के लिए अधकां"ातः सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक, धार्मिक एवं अन्य सेवाओं की आव"यकता होती है और जिसमें मूल अभिवृत्तियों एवं व्यवहारों के प्रति सामान्य सहमति होती है।''

मैरिल और एलरिज के अनुसार, ''ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं एवं ऐसे व्यक्तियों का समावे"ा होता है, जो एक छोटे से केन्द्र के चारों ओर संगठित होते हैं, तथा सामान्य और प्राथमिक हितों द्वारा आपस में बंधे रहते हैं।''

बोगार्डस के मत में, ''ग्रामीण समुदाय प्राथमिक समूहों का ही एक विस्तृत रूप है।''

भारतवर्ष में पांच हजार से कम जनसंख्या वाले आबादी के क्षेत्र को ग्राम कहा गया है। जनसंख्या के घनत्व के आधार पर ग्रामीण क्षेत्र में 400 व्यक्ति प्रति किलोमीटर से कम निवास करते हैं। व्यवसाय के अनुसार ग्रामीण समुदाय में 75 प्रति"ात या इससे अधिक जनसंख्या कृषि कार्यों को करने वाली होती है। कुछ विद्वानों ने सामाजिक सम्बन्धों के आधार पर ग्रामीण समुदाय उस समाज को कहा है जिनमें व्यक्तियों में परस्पर आमने–सामने के घनिष्ठ तथा

प्राथमिक सम्बन्ध होते हैं। जहां तक प्राकृतिक पर्यावरण का सम्बन्ध है ग्रामीण समुदाय प्रकृति से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित होते है।

3.4 ग्रामीण समुदाय की वि"ोषताएँ

- ग्रामीण समुदाय को भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर देखे तो यह समुदाय आकार में छोटा होता है।
- ग्रामीण समुदाय की जनसंख्या बहुत कम होती है।
- ग्रामीण समुदाय का आकार छोटा व कम जनसंख्या वाला होने के कारण परस्पर पर प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता पायी जाती है।
- ग्रामवासियों का जीवन प्रकृति के निकट शुद्ध हवा, सादा भोजन, मोटे वस्त्र वाला सधारण जीवन होता है।
- ग्रामीण जन्म से लेकर मृत्यु तक प्रकृति के बीच रहता है।
- भारतीय ग्रामीण समुदाय की परिभाषा में कृषि के व्यवसाय को प्रधान माना है।
- ग्रामीण समुदाय में जनगत के द्वारा सामाजिक नियत्रतंय किया जाता है या मृत्यु संस्कार, अकाल, महामारी, बाढ़ आदि में सामूहिक रूप से एक दूसरे का साथ देते है।
- ग्रामीण समुदाय की अधिकां"ा जनसंख्या भाग्यवादिता, रूढ़िवादिता एवं अ"िाक्षा की समस्या से ग्रस्त है।
- ग्रामवासियों के जीवन स्तर, दैनिक जीवनचर्या, वे"ा–भूषा, खान–पान, रहन–सहन आदि में समानता पायी जाती है।
- ग्रामीण समाज का प्रमुख व्यवसाय कृषि होता है जिसमें अनेक श्रमिकों की आव"यकता पड़ती है इसी कारण से ग्रामों में संयुक्त परिवार अधिक होते है।

3.5 नगरीय समुदाय की अवधारणा

यूँ तो नगर प्राचीन काल से ही विद्यमान है लेकिन इनकी उत्पत्ति और विकास का सुनि"चत इतिहास उपलब्ध नहीं है। **गिस्ट** और **हेलवर्ट** ने कहा है, ''सभ्यता के जन्म के समान ही नगरों का जन्म भूत के अन्धकार में खो गया है।'' नगर की अवधारणा को ग्रामीण अवधारणा के सन्दर्भ में देखा जाता है।

(1) **लुइस वर्थ** के अनुसार, ''समाज"ाास्त्रीय दृष्टिकोण से एक नगर की परिभाषा सामाजिक भिन्नता वाले व्यक्तियों के बड़े, घने बसे हुए एवं स्थाई निवास के रूप में की जा सकती है।''

(2) **जनसंख्यानुसार** परिभाषा– नगर की परिभाषा जनसंख्या के आकार के आधार पर दी गई है और उनको मान्यता भी प्राप्त है। फ्रांस में 2,000 या अधिक, मिश्र में 11,000 और अमेरिका में 25,000 या अधिक जनसंख्या वाले स्थान को नगर के नाम से परिभाषित किया गया है। भारत में एक लाख या इससे अधिक जनसंख्या वाले स्थान को कहा गया है। पांच हजार या इससे अधिक जनसंख्या वाले स्थान को कस्बा के नाम से परिभाषित किया गया है। कस्बे के लिए निम्नलिखित तीन आधार भी आव"यक हैं– (1) पांच हजार से अधिक जनसंख्या, (2) जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर या अधिक होने पर, और (3) कम–से–कम 75 प्रति"ात व्यस्क पुरूष जनसंख्या और गैर–कृषि कार्यों में कार्यरत होनी चाहिए।

(3) **थियोडोरसन** तथा **थियोडोरसन** के अनुसार, ''नगरीय समुदाय एक समुदाय है जिसमें उच्च जनसंख्या घनत्व, गैर कृषि–व्यवसायों की प्रमुखता, जटिल श्रम–विभाजन से उत्पन्न उच्च श्रेणी का वि"ोषीकरण और स्थानीय सरकार की औचारिक व्यवस्था पाई जाती है। नगरीय समुदायों की वि"ोषता–जनसंख्या की विभिन्नता, अवैयक्तिक एवं द्वैतीयक सम्बन्धों का प्रचलन तथा औपचारिक सामाजिक नियंत्रण पर निर्भरता आदि है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि नगरीय समुदाय का अर्थ–जनसंख्या की अधिकता, श्रम–विभाजन और वि"ोषीकरण, औपचारिक एवं द्वैतीयक सम्बन्ध, नियन्त्रण के औपचारिक साधनों का प्राधान्य और लोगों का गेर कृषि कार्यों में लगे होना है। भारतीय जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार अतिरिक्त जिस समाज की जनसंख्या 5 हजार से अधिक हो तथा जनसंख्या का घनत्व 400 व्यक्तित्व से अधिक हो उसे नगरीय समाज कहा जाता है।

3.6 नगरीय समुदाय की वि"ोषताएं

- नगरों में जनसंख्या अधिक्य के साथ–साथ जनसंख्या–घनत्व भी अधिक पाया जाता है।
- नगरों में अनेक मतों व धर्मों के अनुयायी, विभिन्न सम्प्रदाय, वर्ग, जाति, प्रजाति, भाषा एवं प्रान्तों के लोग निवास करते है।
- नगरों में व्यक्ति को स्वास्थ्य से सम्बन्धित सभी सुविधाएं उपलब्ध होती है।

- नगरों में मनोरंजन के साधन व खेलकूद के साधन एवं सुविधाएं आसानी से उपलब्ध हो जाती है।
- नगरों में विभिन्न आर्थिक वर्गों के लोग, अनेक प्रकार के व्यवसाय, श्रम विभाजन एवं वि"ोषीकरण देखने को मिलता है।
- नगरों में जनसंख्या की अधिकता और विन्नता के कारण वहां औपचारिक सम्बन्ध अधिक होते है।
- नगरों में गति"ाीलता अधिक पाई जाती है।
- नगरों में स्तरीकरण अधिक होता है व्यक्ति अपनी योग्यता, कु"ालता एवं क्षमता के अनुसार अपनी सामाजिक स्थिति को सुदृढ़ करने का प्रयास करता है।
- नगरों का जीवन दिखावे का अधिक होता है लोग आडम्बरयुक्त व कृत्रिमतातय जीवन जीते है।
- आज नगर, भ्रष्टाचार, वर्ग–संघर्ष, बालपराध, अपराध, बेकारी, गरीबी, वे"यावृत्ति, मद्यपान, कुपोषण, प्रदूषण, युवा–तनाव, बीमारी आदि सामाजिक समस्याओं के केन्द्र बन गये है।
- नगरों में विभिन्न प्रकार के विद्यालय, महाविद्यालय, वि"वविद्यालय अभियान्त्रिकी, चिकित्सा, कला, संगीत, प्रौद्योगिकी, व्यावसायिक प्र"िाक्षण आदि के विद्यालय व महाविद्यालय होते है जिनमें छात्रों की रूचि के अनुसार प्रवे"ा दिया जाता है।
- नगरीय जीवन में व्यक्तिवादित एवं प्रतिस्पर्धा व राजनैतिक गतिविधियों के केन्द्र होते है।
- नगर परिवहन एवं संचार–सुविधाएं का केन्द्र होते है।
- नगरों में ि"ाक्षा के बढ़ते प्रभाव के कारण उनकी अभिवृत्ति तर्क प्रधान हो गई है।
- नगरों में पुलिस पुलिस, न्यायाल आदि होते है जिससे व्यक्ति को लूटपाट, चोरी, हत्या जैसे खतरों से सुरक्षा मिलती है।

3.7 ग्रामीण–नगरीय सातत्य

ग्रामीण–नगरीय सातव्य की अवधारणा का अभिप्राय ग्रामीण–नगरीय अखण्डता से है। इसे इस प्रकार भी व्यक्त कर सकते हैं कि मानवीय जीवन पद्धति में ग्रामीण–नगरीय जीवन की निरन्तरता की अभिव्यक्ति है। कुछ विद्वानों का यह स्पष्ट मत है कि ग्रामीण कि ग्रामीण और नगरीय जीवन पद्धति दो भिन्न व्यवस्थाएँ हैं। इसलिए इनका अध्ययन भी भिन्न–भिन्न रूप से किया जाना चाहिए। इस दृष्टि से ग्रामीण समाजशास्त्र और नगरीय समाजशास्त्र दो पृथक विषयों का कालान्तर में विकास हुआ। ग्रामीण समाजशास्त्र के विद्वानों ने ग्रामीण समाज के अध्ययन की स्वतंत्र पद्धति का विकास किया और नगरीय समाजशास्त्र विचारकों ने नगरीय समाजशास्त्र के अध्ययन को एक नया स्वरूप प्रदान किया। अध्ययन की दृष्टि से दोनों शास्त्रों

के क्षेत्रों को पृथक करने के लिए ग्रामीण नगरीय समाज के परस्पर भेदों को उजागर किया है जिससे दोनों क्षेत्रों का अध्ययन पृथक–पृथक रूप से किया जा सके। सामान्यतः यह धारणा है कि ग्रामीण–नगरीय सातत्य की अवधारणाा ग्रामीण नगरीय भिन्नताओं का अध्ययन है जबकि ग्रामीण–नगरीय सातत्य की अवधारणा ग्रामीण और नगरीय वि"ोषताओं की निरन्तरता पर आधारित है। वैसे भी व्यावहारिक रूप से यह स्पष्ट करना गांव कहाँ से आरम्भ होते हैं और कहाँ समाप्त होते हैं। इसी तरह नगर की सीमा कहां से आरंभ होती है। और कहां पर समाप्त होती है, इन दोनों के मध्य कोई रेखा कम से कम समाजशास्त्रीय दृष्टि से खींचना सरल कार्य नहीं है। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर समाजशास्त्रीयों ने ग्रामीण–नगरीय निरन्तरता की अवधारणा का विकास किया है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण तथा नगरीय धारणायें–सापेक्षिक है। इन दोनों को पृथक–पृथक करके हम किसी भी समाज का अध्ययन नहीं कर सकते हैं। उदाहरण के लिए किसी भी कस्बे को हम सापेक्षिक दृष्टि से गति अथवा नगर की संज्ञा देते है। प्रायः इस आधार पर किसी क्षेत्र को गाँव अथवा नगर कहते हैं कि अमुक क्षेत्र में गाँव और नगर के कितने अधिक अथवा कम लक्षण विद्यमान है यदि उस क्षेत्र में गाँव के लक्षण अधिक है तो उस क्षेत्र को हम गाँव की संज्ञा देते हैं और यदि उसमें नगर के लक्षण अधिक विद्यमान है तो हम उसे नगर की संज्ञा देते है।

जी0वी फायटर का विचार है कि ''यदि ग्रामीण और नगरीय समाजशास्त्र को अपने संरक्षक अनुशासन के विशिष्ट उपक्षेत्र को निरन्तर रखना है और अर्थपूर्ण अवधारणात्मक आधार पर अन्य उपक्षेत्रों से इन्हें भिन्न रखना है तो एक नवीन दिशामान की आव"यकता स्वयं–सिद्ध है।''

बरट्रेण्ड का मत है कि ''सातत्य के सिद्धान्त के प्रवर्तक यह अनुभव करते हैं कि ग्रामीण नगरीय विभेद तुलनात्मक अंशों में है और दो ध्रुवीय अतिरेकों–ग्रामीण और नगरीय के मध्य एक श्रृंखला में विकसित होते हैं।''

वास्तव में ग्रामीण नगरीय सातत्य ग्रामीण और नगरीय समाजशास्त्र की भिन्न–भिन्न वि"ोष्टताओं की निरन्तरता पर बल देते हैं न कि ग्रामीण नगरीय विभिन्नताओं को उजागर करते हैं। अस्तु ग्रामीण नगरीय सातव्य की अवधारणा ग्रामीण नगरीय तत्वों की अखण्डता से जुड़ी है। **बरट्रेण्ड** ने अन्ततः यह स्वीकार किया कि वास्तव में ग्रामीण तथा नगरीय अन्तर स्पष्ट करने वाली विशेषतायें एक दूसरे से काफी गहराई से जुड़ी है परन्तु इतना होते हुए भी उनमें पाए जाने वाले अन्तरों को पूरी तरह त्यागा नहीं जा सकता है क्योंकि उसमें यथार्थता और निश्चितता भी है। इसी संदर्भ में उन्होंने लिखा है यह सातत्य स्पष्ट करता है कि वातावरण संबंधी प्रभाव इन दोनों समूहों के मध्य पाए जाने वाले अन्तरों से घनिष्ट तथा सह–संबंधित है। जो वातावरण जितना ही अधिक लगभग ग्रामीण या नगरीय होगा, उतना ही अधिक अंतर उस समूह में सम्मिलित व्यक्तियों को लक्षित करता हुआ पाया जाएगा। ग्रामीण नगरीय सातत्य की अवधारणाा के विकास में **प्रो0 विर्थ** का वि"ोष योदान है। **प्रो0 विर्थ** से ग्रामीण नगरीय जीवन को ही पृथक–पृथक प्रकार की जीवन–पद्धति माना है। इसी प्रकार **रेडफील्ड, द सीरोकिन, मिरमैन, पीकर तथा बेबर** ने भी ग्रामीण नगरीय विभेदों का श्रेणीकरण किया है। इसके विपरीत कुछ समाजशास्त्रियों ने ग्रामीण नगरीय विभेदों की कटु आलोचना की है। **आर0ई0**

पहल विचार है कि नगरों में भी गाँव होते हैं। ये नगरीय गाँव नगरों के मध्य में स्थित होते हैं जहाँ रक्त–संबंध पर आधारित–प्राथमिक संबंध होते हैं। इनमें ग्रामीण सांस्कृतिक मूल्य उपस्थित होते हैं। मेयर का मत है कि ग्रामीण जनता जो नगरों में निवास करती है, वह नगरीकृत नहीं होती।

ग्रामीण नगरीय सातव्य की अवधारणा की अनेक विद्वानों ने कटु आलोचना की है। इस सिद्धांत को काल्पनिक बताया है। **रोसमेन** ने इसकी आलोचना करते हुए लिखा है कि ''ग्रामीण–नगरीय विभेद के कहे जाने वाले सिद्धांत, विद्यार्थियों की पाठ्य–पुस्तकों में सुरक्षित है और परीक्षा के समय दिखावटी संस्कार पाते हैं। इसलिए **लेविस** के शब्दों में उनका अन्वेषण सबंधी मूल्य शोधक सयंत्र के रूप में कमी भी प्रमाणित नहीं हुआ।

3.8 ग्रामीण–नगरीय सातत्य आधुनिक प्रक्रिया के रूप में

ग्रामीण–नगरीय सातत्य एक आधुनिक प्रक्रिया है जो किसी भी ग्रामीण अथवा नगरीय क्षेत्र में प्रवेश कर अपने प्रभाव को डालना आरंभ करती है। यह एक ऐसी घटना है जो अंशों में परिलक्षित होती है। वास्तव में आधुनिक समाज में किसी भी सामाजिक घटना को पूर्ण रूप से न ग्रामीण कह सकते हैं और न पूर्ण रूप से नगरीय। समस्त ग्रामीण घटनाएं एक प्रक्रिया के रूप में कालान्तर नगरीय रूप धारण करती है। ग्रामीण–नगरीय सातत्य के सिद्धांत के पक्षधरों का यह विचार है कि ग्रामीण–नगरीय अन्तर मुख्यतः भौगोलिक, जनसंख्यात्मक और आर्थिक दृष्टि से इतने स्पष्ट नहीं है जितने कि सामाजिक संबंधों की दृष्टि से। जहाँ तक गाँव और नगर के समुदायों के सामाजिक संबंधों का प्रश्न है दोनों स्थानों की सामाजिक क्रिया में विभिन्नतायें होती हैं। परस्पर अन्तर संबंधों की सामाजिक क्रिया और अंतरक्रिया के परिणाम स्वरूप ही गाँवों में नगरीकरण की और नगरों के ग्राम्यीकरण की प्रक्रियाएं विकसित होती है। इन्हीं दोनों प्रक्रियाओं को मिलाकर एक समन्वित रूप पनपता है जिसे **गाल्पिन और उनके साथी 'ग्राम्यी नगरीकरण'** (Rurbanization) की संज्ञा देते हैं। इस प्रकार की अंतर–क्रियाओं से गाँव और नगर में अंतर संबंधों का जो स्वरूप विकसित होता है उसमें समन्वयवादी और संस्कृतिकरणक की प्रक्रिया समाहित होती है। इनमें जो कार्यरत घटक हैं वे ग्रामीण समाजिक ढाँचे में परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है।

ग्रामीण समाज छोटा पर संघटित होता है। यहाँ सामाजिक संपर्क का क्षेत्र अत्यंत सीमित होता है। पर जो भी संपर्क के माध्यम से सामाजिक संबंध बनते हैं उनमें घनिष्टता और स्थायित्व की प्रकृति अधिक होती है। ग्रामीण समाज अपने छोटे से क्षेत्र से बंधा होता है। उसके सामाजिक संबंधों का दायरा भी इसलिए सीमित होता है। यही कारण है कि उनके परस्पर संबंधों में एकरूपता अधिक और विविधता कम होती है। इन्हीं सब कारणों से उसके विचार, सोच, दृष्टिकोण, मनोवृत्ति आदि संकुचित होते हैं। इसके विपरीत नगरीय समाज में सामाजिक संबंधों में सरलता नहीं होती है। नगरीय सामाजिक संबंधों का जाल जटिल होता है। नगर में प्रत्येक क्षण व्यक्ति नये संपर्कों में आता है। इसीलिए नगरीय सामाजिक संबंधों में औपचारिकता, व्यक्तिवाद, कृत्रिमता आदि के सहज ही दर्शन होते है। ये वि"ोषतायें नगर की सीमा तक ही

सीमित नहीं रहती बल्कि उन क्षेत्रों में भी प्रवेश करती है जो नगर के निकट गाँव है और नगर का स्वरूप धारण कर रहे हैं जिन्हें हम नगर तुल्य गाँव (Suburbs) कहते हैं। बड़े नगरों के आस–पास गाँव ही होते है जिनमें नगर और गाँव की वि"ोषतायें एक साथ देखी जा सकती है। बम्बई और कलकत्ता में तो व्यक्ति स्पष्ट रूप से यह कहता है कि हम सबअर्बन में रहते है अर्थात हमारा घर महानगर में नहीं है। इन नगर तुल्य गाँवों में नगरों की विशेषताओं को देखा जा सकता है। किसी महानगर के बाहरी छोरों पर जो कस्बे बस जाते हैं उन्हें भी उप–नगररीय (Sub-ruban) ही कहेंगे जैसे बंबई में गोरे और देहली के निकट साहिबाबाद आदि। ये उदाहरण स्पष्ट करते हैं कि ग्रामीण–नगरीय सातत्य की प्रक्रिया में उस समय गति अधिक उत्पन्न होती है जब सामाजिक संपर्क के क्षेत्र में विस्तार होता है और सामाजिक संबंधों में विविधता उत्पन्न होती है। वास्तव में गाँव और नगर जब एक दूसरे के निकट आते हैं तो दोनों समाज की विशेषतायें एक दूसरे के समाज में प्रविष्ट होती हैं। यही कारण है कि हम किसी भी नगर में ग्रामीण–समाज की अनेक वि"ोषताओं को सहज ही देख सकते हैं।

कालान्तर में नगर का निकटवर्ती ग्रामीण–जीवन नगरीकृत हो जाता है। **पाहल** ने भी कहा है कि महानगरों के निकट जो गाँव है उनका जीवन नगरीकृत हो जाता है। ये क्षेत्र नगरीकृत ग्रामीण–क्षेत्र के रूप में जाने जाते हैं। पाहल का अध्ययन क्षेत्र लन्दन के गाँव थे जो 40–50 मील की दूरी पर बस गए थे। क्योंकि लन्दन में आवास–समस्या अत्यन्त गंभीर होती जा रही थी अस्तु लन्दन के निवासी निकटवर्ती गाँवों में मकान बनाकर निवास करने लगे। यातायात और सन्देशवाहन के साधनों में प्रगति होने से इन महानगरीय गाँवों में नगरीकरण की प्रक्रिया को गति प्राप्त हुई। भारत में भी इस उदाहरण को देखा जा सकता है जैसे बम्बई के उच्च मध्यम वर्ग और उच्च–वर्ग के व्यक्ति ने बम्बई जैसे महानगर में मकान न बनाकर बम्बई से दूर अपना निवास स्थान बना रहे हैं। दिल्ली के व्यक्ति भी आज ऐसा ही कर रहे हैं। इस तरह एक महानगर अनेक उप महानगरीय क्षेत्र में विकसित होता जा रहा है। इन क्षेत्रों में नगरीय और ग्रामीणीय वि"ोषतायें एक साथ देखने को मिलती है किन्तु कालान्तर में ये उप महानगरीय क्षेत्रों में महानगरीय सभ्यता और संस्कृति अपना सर्चस्व स्थापित कर लेते हैं और महा–नगरीय–गाँव महानगरीय गाँव न रहकर, महानगर की संस्कृति का एक अंश बन जाते हैं।

गतिशीलता की दृष्टि से यदि विचार करें तो गाँव, कस्बे, नगर, महानगर और महानगरीय गाँवों में गतिशीलता के विविध स्वरूप देखने को मिलते हैं। गाँव की अपेक्षा कस्बे के व्यक्तियों में गतिशीलता और सामाजिक जागरुकता अधिक होगी। इस तरह नगर की अपेक्षा महानगर में गतिशीलता और सामाजिक जागरुकता कहीं अधिक और एक साधारण गाँव की अपेक्षा महानगरीय गाँव या उप–महानगरीय गाँव में गतिशीलता और सामाजिक चेतना कहीं अधिक होगी। इसका मुख्य कारण यह है कि व्यक्ति जब भी प्रगतिशील और आधुनिक समाज के संपर्क में आता है उसे उसी के अनुरूप अपने को डालना पड़ता है। ग्रामीण जीवन पद्धति नगरीय जीवन पद्धति से पूर्णतयां भिन्न है। ग्रामीण मनोवृत्ति, मूल्य, विचार और मानसिकता को लेकर नगर में निवास करना और कार्य करना दोनों ही कठिन है। अस्तु उसे चाहे, अनचाहे नगरीय पद्धति को अपनाना होता है। नगरीय मूल्यों को ग्रहण करना होता है। नगरीय जीवन पद्धति नगरीकरण का पर्याप्त है। इसीलिए ग्रामीण व्यक्ति पर नगरीकरण का प्रभाव प्रत्यक्ष और

अप्रत्यक्ष दोनों रूप से पड़ता है और वह यहाँ के मध्य और उच्च वर्ग के व्यक्तियों को जीवन–पद्धति का अनुकरण करता है। इसका यह अर्थ नहीं है कि ग्रामीण व्यक्ति अपने ग्रामीण अंचल के समस्त मूल्यों, परम्पराओं, रूढ़ियों और रीति–रिवाजों का त्याग देता है। वह इन्हें त्यागता तो नहीं है, पर कालान्तर में इनका महत्व उसके जीवन में कम होता जाता है।

उदाहरण के लिए ग्रामीण व्यक्ति जब नगर में मिल, फैक्ट्री में काम करने आता है तो उसी के अनुरूप वस्त्रों को पहनता है। पर वह जब गाँव जाता है तब वह ग्रामीण वेश–भूषा को धारण करता है। नगर में रहकर वह नगरीय भाषा बोलता है पर गाँव पहुँचकर वही व्यक्ति अपने गाँव की भाषा बोलता है। नगर में उसका व्यवहार दूसरे प्रकार का होता है और गाँव में उसका व्यवहार अपने क्षेत्र के व्यक्तियों की तरह होता है। इस तरह यदि कहीं सातत्य है तो हमें यह सामाजिक प्रक्रिया के रूप में ही दिखायी देता है। ग्रामीण नगरीय जीवन पद्धति में जो परिवर्तन आज दिखायी पढ़ रहे हैं वे एक लम्बी सामाजिक प्रक्रिया के फलस्वरूप ही उत्पन्न हुए हैं और यह प्रक्रिया आज भी इस यंत्रीकरण और नगरीकरण की प्रक्रिया के साथ गति"ाील है। इसके बावजूद भी हम कोई सीमा निर्धारित नहीं कर सकते हैं कि इस सीमा बिन्दु से ग्रामीण विचार देखने को मिलते हैं और उस सीमा बिन्दु से नगरी जीवन, पद्धति का आरम्भ होता है। ठीक वैसे ही जैसे हम गाँव और नगर की सार्वभौमिक परिभाषा देने में असमर्थ रहे हैं। फिर यह कैसे ज्ञात किया जा सकता है कि ग्रामीण नगरीय सातत्य की सामाजिक प्रक्रिया किस बिन्दु से प्रारम्भ होती है और किस बिन्दु पर समाप्त होती है। ग्रामीण नगरीय सातत्य की प्रक्रिया वस्तुतः अनेक घटकों पर निर्भर करती है और जिसका स्वरूप और प्रकृति समय के अनुसार निरन्तर परिवर्तित होता रहता है।

ये प्रक्रिया सभी समाजों में समान रूप से कार्य नहीं करती है। ग्रामीण–नगरीय सातत्य की प्रक्रिया की तीव्रता इस बात पर निर्भर करती है कि अमुक देश आर्थिक–सामाजिक रूप से कितना प्रगतिशील और सम्पन्न है। उदाहरण के लिए हजारों वर्षों तक भारतीय गाँव पिछड़ेपन के शिकार रहे। औद्योगीकरण, नगरीकरण, यंत्रीकरण और वैज्ञानिक उपलब्धियों का प्रभाव यहाँ के ग्रामीण जीवन पद्धति पर न के समान पड़ा किन्तु स्ततंत्रता के पाश्चात इन्हीं चीजों का प्रभाव ग्रामीण जीवन व्यवस्था पर तीव्रता से पड़ रहा है। विकास के क्रम में गाँव कस्बे में परिणत हो रहे हैं और कस्बे नगरों में तथा नगर महानगरों में परिवर्तित हो रहे हैं। इस बदलाव की प्रक्रिया में स्थानीय क्षेत्रीय, गामीणीय, नगरीय जीवन दर्शन में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर ही रहे हैं। यह सत्य है कि प्रत्येक नगर में ग्रामीण तत्तव और विशेषतायें उपस्थित रहती है जिनका कालान्तर में ही नगरीकरण होता है। नगर क्योंकि गाँवों की अपेक्षा अधिक गतिशील, प्रगतिशील और परिवर्तनशील है अस्तु नगरों का प्रभाव सहज ही गाँवों पर पड़ता है। फिर भी यह कहा जा सकता है कि कोई भी सामाजिक घटना न पूर्णतया ग्रामीण होती है और न नगरीय ही।

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय समाज में औद्योगीकरण, यंत्रीकरण की प्रक्रिया की गति में तीव्रता आयी है। सरकार ने विभिन्न ग्रामीण–योजनाओं के माध्यम से संपूर्ण आर्थिक–सामाजिक एवं सांस्कृति ढाँचे में परिवर्तन लाने का प्रयास किया है। आवागमन और संदेशवाहन के साधनों की प्रगति ने नगर और गाँव को परस्पर जोड़ा है। वैज्ञानिक कृषि के साधनों ने कृषि–व्यवसाय को आधुनिक बनाया है। कृषि–व्यवसाय का आधुनिकीकरण होने से ग्रामीण समाज की जीवन–पद्धति

में आमूल–चूल परिवर्तन आया है। ग्रामीण–आर्थिक ढाँचे में परिवर्तन हो रहे हैं। ये परिवर्तन प्रगति और आधुनिक समाज के द्योतक है। इसलिए नगर गाँव में पहुँच रहे है और ग्रामीण समाज दिन–प्रतिदिन नगरीय समाज की विशेषताओं के प्रतिबिम्ब बनते जा रहे हैं। नगरीय तत्वों का विकास ग्रामीण समाज में तीव्रता से हो रहा है। ऐसी परिस्थितियाँ निरन्तर बनती जा रही है कि एक दिन ग्रामीण विशेषतायें, जिससे इनकी पहचान बनी है, जिससे इनकी पहचान बनी है, वे सब तत्व नगरीय विशेषताओं में परिणत हो जायेगें। गाँव भी नगर की तरह मशीनों के केन्द्र स्थल होगें। सभी कार्य यंत्र और कल–पुर्जों के द्वारा किए जायेंगे जिसकी शुरूआत ग्रामीण समाज में हो गयी है। हल और बैल के स्थान पर ट्रेक्टर से खेतों की जुताई और फसल की कटाई होने लगी है। फसल को काटने और साफ करने के लिए मशीनों का प्रयोग होता है। सिंचाई के लिए ट्यूब–बेल का प्रयोग होता है। वैज्ञानिक खाद का चलन दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसके अतिरिक्त अनेक लघु–उद्योग–धन्धे ग्रामीण समाज में मशीनों के द्वारा निर्मित हो रहे हैं। आवागमन के साधनों ने अब ग्रामीण व्यक्ति को सीधे नगर से जोड़ दिया है। यह सभी तथ्य इस बात के प्रतीक व्यक्ति को सीधे नगर से जोड़ दिया है।

यह सभी तथ्य इस बात के प्रतीक हैं कि औद्योगीकरण और यंत्रीकरण ग्रामीण वि"ोषताओं को समाप्त करते जा रहे हैं और उनका स्थान नगरीय विशेषतायें ले रही है। कदाचित ऐसा न हो कि भविष्य में जिन तत्वों के आधार पर हम गाँव और नगर को पहचानते हैं, वे समाप्त हो जाएँ और गाँव नगर का रूप ले लें जैसा कि पाश्चात्य देशों में घटित हो रहा है। ऐसी स्थिति में ग्रामीण–नगरीय सातत्य, जिसका कि अध्ययन आज ग्रामीण और नगरीय समाज के संदर्भ में कर रहे हैं, वह सम्भवतः हम न कर पायेगे क्योंकि गाँव जब नगर में परिणत हो जायेगें फिर ग्रामीण नगरीय सातत्य का अस्तित्व स्वतः समाप्त हो जायेगा। लेकिन हमें विश्वास है कि औद्योगीकरण यंत्रीकरण और नगरीकरण का प्रभाव कितना भी गहरा ग्रामीण–समाज और ग्रामीण–जीवन पद्धति पर क्यों न पड़े, ग्रामीण समाज अपनी मौलिक वि"ोषताओं, मूल्यों, परम्पराओं आदर्शों और विश्वासों को तिलांजलि वहीं देगा क्योंकि धरती और कृषि व्यवसाय नहीं है। इससे जुड़ी हुई शताब्दियों की भावना वहीं है यदि कुछ परिवर्तित हुआ है तो वन कृषि करने के साधनों में बदलाव आया है और यह देश की प्रगति के लिए आवश्यक भी है। अस्तु ग्रामीण नगरीय सातत्य का अध्ययन उस समय तक भारतीय, समाज में जीवित रहेगा जब तक इस भूमि पर किसान और खेत है।

3.9 ग्रामीण–नगरीय सातत्य समाज में विभिन्नता के आधार

ग्रामीण–नगरीय समाज में अन्तर विभिन्न वैज्ञानिकों–बोगार्डस, सोरोकिन, जिमरमैन, सिम्स, रॉस, नेल्स एण्डरसन आदि ने बताए है ।जिसे हम निम्न प्रकार से तालिका के रूप में प्रस्तुत कर सकते है–

क्र0 सं0	अन्तर के आधार	ग्रामीण समुदाय	नगरीय समुदाय
1	जनसंख्या	5,000 से कम जनसंख्या	5,000 या इससे अधिक जनसंख्या
2	जनसंख्या का घनत्व	400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से कम	400 व्यक्ति प्रति वर्ग किलोमीटर से अधिक

3	आकार	छोटा आकार, न्यूज जनसंख्या, पारस्परिक सम्बन्धों की घनिष्ठता	विस्तृत आकार, जनसंख्या की अधिकता, औपचारिक सम्बन्धें की प्रधानता
4	प्रकृति सम्बन्ध	प्रत्यक्ष और घनिष्ठ सम्बन्ध	अप्रत्यक्ष और सामान्य सम्बन्ध
5	सामाजिक सम्बन्ध	प्रत्यक्ष एवं घनिष्ठता के सम्बन्ध, अनौपचारिक वैयक्तिक एवं प्राथमिक सम्बन्ध	अप्रत्यक्ष, औपचारिक, द्वैतीयक एवं अवैयक्तिक सम्बन्ध।
6	स्थाथित्व	'घड़े में शान्त जल के समान' स्थायित्व की प्रधानता	'केतली में उबलते जल के समान' गति"ाीलता की प्रधानता।
7	परिवार	कृषि व्यवसाय पर आधारित, पितृवं"ाीय, पितृस्थानीय परम्परागत संयुक्त परिवार, सामान्य निवास, सामूहिक सम्पत्ति एवं समूहवाद की प्रधानता	एकांकी परिवार, पति–पत्नी की समान स्थिति, स्त्रियों और बच्चों का महत्व, प्रेम एवं वात्सल्य पर आधारित व्यक्तिवाद एवं व्यक्तिगत हितों की प्रधानता।
8	विवाह	परिवारजनों द्वारा विवाह का निर्धारण, अन्तः जातीय–विवाह व बाल–विवाह की अधिकता विवाह एक धार्मिक संस्कार। तलाक एवं विधवा–विवाह की न्यूनता।	प्रेम–विवाह, लड़के–लड़की की इच्छा की प्रधानता। तलाक, विधवा–विवाह की प्रधान्ता। तलाक, विधवा–विवाह एवं अर्न्तजातीय–विवाहों का अधिक प्रति"ात, न्यून बाल–विवाह।
9	स्त्रियों की स्थिति	पर्दा–प्रथा, जीवन घर की चार–दीवारी में सीमित, ि"ाक्षा का अभाव, पुरूषों पर आश्रित, अन्ध–वि"वासी, भाग्यवादिता, निम्न–सामाजिक स्थिति	ि"ाक्षा प्राप्ति की स्वतंत्रता, पर्दा–प्रथा में कमी, आर्थिक क्षेत्र में स्वावलम्बी, न्यून–अन्धवि"वास, स्वच्छन्द जीवन, पुरूषों के समान स्थिति।
10	सामाजिक गति"ाीलता	जाति–प्रथा पर आधारित, प्रदत्त, स्थाई एवं अपरिवर्तन"ाील प्रस्थिति, न्यून विषमताएं।	वर्ग पर आधारित, अर्जित, गति"ाील, परिवर्तन"ाील प्रस्थिति, अत्यधिक विषमताएं, ि"ाक्षा, व्यवसाय एवं आय पर आधारित।
11	सामाजिक नियंत्रण	अचेतन, प्रत्यक्ष, अनौपचारिक आमने–सामने के सम्बन्धों पर आधारित।	चेतन, अप्रत्यक्ष, औपचारिक, लिखित एवं द्वैतीयक।
12	सामाजिक समस्याएं	न्यून विघटन, मानसिक संघर्ष तनाव तथा निरा"ाा की न्यूनता, न्यून अपराध।	व्यक्तिगत विघट की अधिकता मानसिक संघर्ष, तनाव तथा निरा"ाा की अधिकता।

13	धर्म	ई"वर एवं प्रकृति में अनन्त वि"वास, निष्ठा पर आधारित धर्म एवं अ तिभाग्यवादी।	विवेक पर आधारित धर्म, भाग्वादिता का अभाव।
14	सांस्कृतिक जीवन	परम्पराओं का अत्यधिक महत्त्व, रूढ़िवादिता की प्रधानता, मूल्यों की प्रधानता, कृत्रिमता का अभाव।	गत्यात्मक एवं परिवर्तन"ाीलता, नवीनतम फै"ान एवं कृत्रिमता की प्रधानता एवं भौतिकवादी।
15	आर्थिक व्यवस्था	न्यून श्रम–विभाजन एवं वि"ोषीकरण, कृषि–प्रधान व्यवसाय, मितव्यता, उत्पादन व उपभोग की आर्थिकी	अधिक श्रम–विभाजन एवं वि"ोषीकरण, गैर कृषि व्यवसायों की प्रधानता, उद्योग, व्यापार आदि की बाहुल्यता।
16	व्यवसाय	70 से 75 प्रति"ात लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कृषि कार्य में संलग्न	75 प्रति"ात वयस्क पुरूष जनसंख्या गैर–कृषि कार्यों में संलग्न
17	राजनैतिक व्यवस्था	जनमत का अधिक महत्व, पंच का निर्णय सर्वोपरि, जाति एवं ग्राम पंचायत का प्रभाव, परम्परा द्वारा मुखिया का निर्धारण	जनमत का अभाव, कानून का महत्व, पंचों का अभाव, मतदान द्वारा नेतृत्व का चुनाव, राजनैतिक विचार व्यक्तिगत।

3.10 ग्रामीण नगरीय सातत्य में सम्बद्धता के आधार

गांव एवं नगर में परस्पर आदान–प्रदान और अन्तःक्रिया होती रहती है जिसके परिणामस्वरूप दोनों का ही जीवन परिवर्तित होता रहता है। ग्राम एवं नगर के पारस्परिक प्रभाव ने ग्रामीणीकरण, नगरीकरण, ग्राम्य–नगरीकरण, ग्राम–नगरीय नैरन्तर्य आदि प्रक्रियाओं को जन्म दिया है। इन प्रक्रियाओं के परिणामास्वरूप ग्राम एवं नगर की वि"ोषताओं का मिलाजुला रूप प्रकट हुआ है। औद्योगीकरण एवं आर्थिक–सामाजिक विकास ने ग्रामों की आत्म–निर्भरता को समापत किया है। अब नगरों की कच्चे माल के लिए ग्रामों में निर्भरता बढ़ी है। नगरों की प्रबलता और वहां उपलब्ध साधनों की विपुलता ने ग्रामवासियों को नगरों की ओर आकर्षित किया। हैं ग्रामवासियों का नगरीकरण हो रहा है। ग्राम एवं नगर के सम्पर्क और अन्तःक्रिया के वि"ोषताओं की सह–उपस्थिति देखी जा सकती है। बड़े–बड़े नगरों के चारों आस–पास बसे उपनगरों में दोनों का मिश्रित जीवन देखने को मिलेगा। नगर के लोग नगर से दूर खुली हवा में अपने बंगले बनाते हैं। वे बंगलों में बगीचा लगाकर प्राकृतिक वातावरण प्रस्तुत करने का प्रयास करते हैं। इन बंगलों में आधुनिक नगरों की सारी सुविधाएं उपलब्ध होती हैं। बिजली, नल, फ्रिज, गैस का चूल्हा, सोफा, आधुनिक फर्नीचर, कार सभी इनमें उपलब्ध होते हें। इसमें निवास करने वाले लोग नगरीय व्यवसाय पर निर्भर रहते हैं। इस प्रकार हम ग्राम्य–नगरीकरण और

ग्राम–नगर नैरन्तर्य की प्रक्रियाओं को ग्राम एवं नगर के पारस्परिक सम्बन्धों के परिणामस्वरूप घटित होते हुए देखते हैं।

आज नगरीकृत जीवन पूर्णनगरीय नहीं होकर नगरीय जीवन से प्रभावित ग्रामीण जीवन है। नगरीकृत जीवन गाँवों में भी देखा जा सकता है। नगरों की समृद्धि एवं आधिकाधिक नगरीकरण होने पर ही ग्राम्य–नगरीकरण की प्रक्रिया निर्भर है। यदि नगर विकसित नहीं होते हैं और नगरीकरण तेजी से नहीं बढ़ता है तो ऐसे क्षेत्रों के निर्माण की आव"यकता ही समाप्त हो जाती है। नगरों में स्थापित उद्योगों में काम करने वाले लोगों को 'ग्राम्य–नगरों' के विस्तृत क्षेत्रों में बसाने पर इनका विस्तार एवं निवास का क्षेत्र वि"ाल हो जायेगा तथा कार्य करने के स्थान एवं निवास के स्थान में दूरी हो जायेगी। ऐसी स्थिति में नगर की सुविधाएं उन्हें प्रापत नहीं हो पायेगी। नल, बिजली, सड़क, प्र"ाासन, ि"ाक्षा, यातायात एवं संचार की सुविधाएं उन्हें जुटा पाना कठिन हो जायेगा इससे नगरीय लोगों का जीवन स्तर गिर कर ग्रामीण स्तर के बराबर आ जायेगा। इस प्रकार से ग्राम्य नगरीकरण का अधिक विस्तार समस्याओं को सुलझाने के स्थान पर उनमें वृद्धि के देगा और इसके विस्तार की भावी सम्भावनाएं समाप्त भी हो सकती हैं।

ग्राम्य–नगरीकरण के कारण नगरीय संस्कृति का विस्तार होता है, महानगरीय सभ्यता और संस्कृति अपना वर्चस्व स्थापित कर लेते हैं और महानगरीय गांव महानगरीय संस्कृति के अं"ा बन जाते हैं। इसी प्रकार से हमें गांव की अपेक्षा नगरों में गति"ाीलता अधिक दिखायी देती है। नगरीय प्रभाव के कारण ग्रामीण लोग नगर की भाषा, मूल्य और जीवन विधि को अपना लेते हैं तथा ग्रामीण मूल्यों, परम्पराओं, रीति–रिवाजों एवं जीवन विधि को त्याद देते हैं।

ग्राम्य–नगरीकरण सातत्य की प्रक्रिया सभी समाजों में समान रूप से कार्य नहीं करती है वरन् यह उस दे"ा की आर्थिक व सामाजिक प्रगति, औद्योगीकरण, यातायात एवं संचार के साधनों की उपलब्धता, कृषि का आधुनिकीकरण आदि तथ्यों पर निर्भर है।

3.11 सारां"ा

इस इकाई में आपने ग्रामीण एवं नगरीय समुदाय की अवधारणा तथा इसकी वि"ोषताओं को जाना, इस के अलावा ग्रामीण–नगरीय सातत्य की अवधारणा, ग्रामीण–नगरीय सातत्य पर विभिन्न ग्रामीण समाज"ाास्त्र, समाज"ाास्त्री के विचार तथा ग्रामीण–नगरीय आधुनिक प्रक्रिया के रूप में यह किस प्रकार सम्पूर्ण वि"व तथा भारत को प्रभावित कर रही है। इसके द्वारा भारतीय समाज में क्या परिवर्तन आ रहा है जाना है, ग्रामीण–नगरीय समाज में विभिन्नता के क्या–क्या आधार रहे है हमने जाना है अन्तः में हमने इस इकाई में ग्रामीण–नगरीय सातत्य में सम्बन्धत (पारस्परिक अन्तःक्रिया) को हमने समझा हे।

3.12 शब्दावली

(1) **ग्रामीण समुदाय**: वह क्षेत्र है जहां कृषि की प्रधानता, प्रकृति से निकटता, प्राथमिक सम्बन्धों की बहुलता, कम जनसंख्या, सामाजिक एकरूपता, गति"ाीलता का अभाव, दृष्टिकोणों एवं व्यवहारों में सामान्य सहमति आदि वि"ोषताएं पायी जाती है।

(2) **नगरीय समुदाय**: वह क्षेत्र जहां जनसंख्या की बहुलता एवं विविधता पायी जाती है। गैर–कृषि व्यवसाय, श्रम–विभाजन एवं वि"ोषीकरण, द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता, औपचारिका आदि वि"ोषताएं पायी जाती है।

3.13 अभ्यास प्र"न

1. पांच हजार या इससे अधिक जनसंख्या वाले स्थान को कहते है–
   (अ) ग्राम (ब) नगर (स) शहर (द) महानगर
2. निम्न में से कौन–सी ग्रामीण समुदाय की वि"ोषता नहीं है–
   (अ) प्राथमिक सम्बन्धों की बहुलता (ब) सामाजिक एकरूपता
   (स) गति"ाीलता का अभाव (द) जनसंख्या की बहुलता
3. निम्न में से कौन–सी नगरीय समुदाय की वि"ोषता नहीं है–
   (अ) गैर–कृषि व्यवसाय (ब) गति"ाीलता का अभाव
   (स) द्वितीयक सम्बन्धों की प्रधानता (ब) श्रम–विभाजन एवं वि"ोषीकरण
4. ''ग्रामीण समुदाय प्राथमिक समूहों का ही एवं विस्तृत रूप है'' यह कथन है–
   (अ) सौरोकिन (ब) जिमरमैन (स) बौगार्डस (ब) ए0आर0 देसाई
5. निम्न के सही जोड़े बनाए–

1. भारत में कस्बा	(अ) 25,000 या अधिक जनसंख्या
2. फ्रांस में नगर	(ब) 11,000 या अधिक जनसंख्या
3. मिश्र में नगर	(स) 2,000 या अधिक जनसंख्या
4. अमेरिका में नगर	(द) 5,000 से अधिक या अधिक जनसंख्या

(अ) 1. द, 2. स, 3. ब, 4. अ (ब) 1. अ, 2. ब, 3. स, 4. द
(स) 1. स, 2. द, 3. अ, 4. ब (द) 1. ब, 2. स, 3. द, 4. अ

अभ्यास प्र"नों के उत्तर–

1. ब, 2. द, 3. ब, 4. स, 5. अ,

3.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

14. एस0सी0दुबे, 'भारतीय गांव', 1955।

15. डी0एन0 मजूमदार (सम्पादित), 'ग्रामीण रूपरेखा', 1955।

16. मिकिम मैरियट (सम्पादित), 'ग्रामीण भारत'।

17. रामकृष्ण मुखर्जी, 'ग्रामीण समाज की गत्यात्मकता', 1957।

18. ए0आर0 देसाई, (सम्पादित), 'भारत में ग्रामीण समाज"ाास्त्र'।

19. बी0आर0 चौहान, 'ए राजस्थान विलेज'।

8. Bengal: Urban Sociology, McGraw Hill.

9. Chauhan, B.R.: A. Rajasthan Village, 1967.

10. P.A. Sorkin and C.C. Zimmerman: Principles of Rural-Urban Sociology.

11. L. Riesman, The Urban Processes.

3.15 सहायक/उपयोगी पाठसामग्री

1. तेजमल दक ''भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', किताब महल प्रा0लि0, इलाहाबाद
3. वी0 प्रका"ा, शर्मा, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र (1999)'', पंच"ाील प्रका"ान, जयपुर
4. डॉ0 एम0एम0 लवानिया, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', रिसर्च पब्लिके"ान्स, जयुपर
5. डॉ0 वीरेन्द्रनाथ सिंह, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', विवेक प्रका"ान, दिल्ली
6. रामबिहारी तोमर, ''ग्रामीण समाज"ाास्त्र'', श्री मेहरा एण्ड कम्पनी, आगरा
7. गुप्त एवं शर्मा– भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र, साहित्य अब पब्लिके"ान (1998), आगरा।
8. डॉ0 ओम प्रका"ा जो"ाी– ग्रामीण एवं नगरीय समाज"ाास्त्र, रिसर्च पब्लिके"ान्स इन सो"ाल साइसेज, जयपुर।
9. S.L. Doshi and P.G. Jain- Rural Sociology, Rawat Publication, Jaipur.

3.16 निबंधात्मक प्र"न

1. ग्रामीण एवं नगरीय जीवन के भेद कीजिए।
2. ग्रामीण समुदाय एवं नगरीय समुदाय से आप क्या समझते है स्पष्ट कीजिए।
3. ग्रामीण जीवन की नगरीय जीवन से तुलना कीजिए।
4. ग्रामीण–नगरीय सातत्य अथवा ग्राम्य–नगरीयकरण की अवधारणा को समझाइए।
5. ग्रामीण नगरीय सातत्य को आधुनिक प्रक्रिया के रूप में समझाइए।
6. ग्रामीण नगरीय सातत्वय के विभिन्नता के आधारों को स्पष्ट कीजिए।
7. ग्रामीण–नगरीय सातत्य में सम्बन्धता के आधारों को स्पष्ट कीजिए।
7. ग्रामीण–नगरीय सातत्य में पारस्परिक अन्तःक्रिया की स्पष्ट कीजिए।

इकाई–4 : भारतीय ग्रामीण समुदाय (Indian Rural Community)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य
4.2 प्रस्तावना
4.3 समुदाय का अर्थ एवं विशेषताएं।
4.4 ग्रामीण अर्थ एवं परिभाषा।
4.5 ग्रामीण समुदाय का अर्थ एवं परिभाषा।
4.6 भारतीय ग्रामीण समुदाय की विशेषताएं।
4.7 ग्रामीण समुदाय की उत्पति।
4.8 क्या भारतीय ग्राम समुदाय है।
4.9 परम्परागत भारतीय ग्रामीण समुदाय का पतन और नवीन परिवर्तन।
4.10 भारतीय गांव एक इकाई के रूप में।
4.11 गाँव : एक जीवन–विधि : एक अवधारणा
4.12 गाँवों का वर्गीकरण
4.13 भारत में ग्रामों के व्यवस्थित वर्गीकरण की आवश्यकता।
4.14 ग्रामों का महत्व
4.15 ग्रामीण समुदायों के विघटन के कारण।
4.16 अभ्यास प्रश्न
4.17 साराँश
4.18 शब्दावली
4.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
4.20 सन्दर्भ ग्रहण सूची
4.21 सहायक उपयोगी पाठ्यक्रम
4.22 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप

- समझ पायेगे कि भारतीय ग्रामीण समुदाय क्या है।
- भारतीय ग्रामीण समुदाय की विशेषताए तथा ग्रामीण समुदाय की उत्पत्ति कैसे हुई।
- भारतीय ग्राम एवं समुदाय
- क्या भारतीय ग्राम एक समुदाय है क्या भारतीय ग्राम परिवर्तित/विघटित हो रहे हे।
- भारतीय ग्रामीण समुदाय में विघटन के कारणं

4.2 प्रस्तावना

मानव जीवन अनेकों प्रकार के समूहों एवं संगठनों में व्यतीत होता है। कुछ समूह स्वतः विकसित होते है जबकि कुछ मनुष्य कृत होते है। समुदाय एक स्वतः उत्पन्न मानव समूह है जिसमें मनुष्य मृत्यु पर्यन्त एक ऐसे पर्यावरण में रहता है जहॉ पर सामाजिक जीवन की कुछ सामान्य

विशेषताऐं पायी जाती है, जैसे सामान्य खान पान, सामान्य भाषा एवं संस्कृति, समान धर्म, समान विचारधारा, समान उद्देश्य, समान व्यवहार प्रतिभाग, जो अन्य से भिन्न करती है। प्रत्येक ग्राम, नगर, पडौस, प्रजाति, राष्ट्र सभी समुदाय है। एक समुदाय कहलाता है और अन्य समुदायों से पृथक उसका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। ग्रामीण समुदाय दो शब्दों 'ग्रामीण और समुदाय' से मिलकर बना है। पहले हम 'समुदाय' को समझने का प्रयास करेंगे, उसके बाद 'ग्रामीण' शब्द का स्पष्ट करेंगे।

4.3 समुदाय का अर्थ एवं विशेषताएं

'समुदाय' शब्द का प्रयोग हम किसी बस्ती, एक गांव, एक नगर अथवा एक राष्ट्र आदि के लिए करते है। समुदाय मनुष्यों का ऐसा समूह है जो एक भौगोलिक क्षेत्र में निवास करता है। जिसमें 'हम' की भावना होती है तथा जिनका एक सामान्य जीवन होता है। मानव की अधिकांश आवश्यकताएं समुदायों में ही पूरी होती है। एक समुदाय में निवास करने वाले लोगों में एकता और सामूहिकता की भावना होती है। वे घनिष्ठता के सूत्र में बंधे होते है। समुदाय की परिभाषा करते हुए मैकाइवर एवं पेज लिखते है, ''किसी छोटे या बड़े समूह के सदस्य जब साथ–साथ इस प्रकार रहते है कि वे किसी विशेष प्रकार के हित में ही भागीदार न होकर सामान्य जीवन की आधारभूत स्थितियों में भाग लेतें है तो ऐसे समूह को समुदाय कहा जाता है''। अतः समुदाय की आधारभूत कसौटी यह है कि मनुष्य के समस्त सामाजिक सम्बन्ध उसके भीतर ही मिल जायें। समुदाय के दो आधार हैः स्थानीय क्षेत्र और सामुदायिक भावना। किंग्सले डेविस के अनुसार, ''समुदाय वह छोटा स्थानीय समूह है जिसमें सामाजिक जीवन के सभी पहलू सम्मिलित होते है''। बोगार्डस लिखते है, ''एक समुदाय एक सामाजिक समूह है जो एक निश्चित क्षेत्र में निवास करता है और जिसमें 'हम' की भावना होती है।

उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि समुदाय एक निश्चित क्षेत्र में निवास करने वाले मानव समूह को कहते है। जिससे सदस्यों में 'हम' की भावना होती है और जिनका एक सामान्य जीवन होता है।

- **निश्चित भू–भाग –**

मनुष्य के समूह में हम की भावना का विकास निश्चित भू–भाग की स्थिति में ही हो सकता है हम की भावना के विकास के अभाव में समुदाय की कोई स्थिति नही है। समुदाय को भू–भाग अंग की पूर्ति के लिए किसी विशेष मानव–रूचि का निहित स्थान निश्चित भू–भाग होना बहुत अधिक आवश्यक है। यदि मनुष्यों को एक स्थान पर रहने का अवसर प्राप्त न हो तो उनके सामाजिक सम्बन्ध भी नही बन सकेगे, इस भू–भाग के कारण उस मानव समूह के परस्पर, शारीरिक, मानसिक एवं सामाजिक सम्बन्ध बन जाते है। व्यक्तियों के रहने–सहने में एवं जीवन की व्यवस्था में एकरूपता एवं निहितता निश्चित भू–भाग के स्थायित्व के द्वारा ही हो सकती है।

- **व्यक्तियों का समूह –**

समुदाय का निर्माण व्यक्तियों के गुट से ही होता है। व्यक्तियों के गुट के अभाव में समुदाय की कल्पना भी नही करी जा सकती। समुदाय शब्द का संकेत सदैव व्यक्तियों के समूह

की ओर ही रहता है। व्यक्तियों के समूह का अमूर्त के स्थान पर मूर्त के रूप के आधार पर ही समुदाय बतलाया गया है।

- **सामान्य जीवन –**

एक समुदाय में रहने वाले व्यक्तियों का सामन्य हित होता है तथा उसी की पूर्ति के लिए वह सामान्य जीवन व्यतीत करता है। उनके नियम, व्यवस्था तथा व्यवहार एक ही प्रकार के होते है। व्यक्तिगत विशिष्टता के स्थान में मिलकर वहाँ दृष्टिगत विशेषताओं का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। समुदाय का सम्पूर्ण जीवन सदैव गतिशील होता है तथा समुदाय की यह गति एवं रहने वाले मानव सम्बन्ध की एकरूपता का होना अधिक आवश्यक है। समाज के सामाजिक सम्बन्धों में समरूपता तथा विषमरूपता दोनों ही पाई जाती है। समुदाय में समरूपता का होना अनिवार्य है।

- **एक उद्देश्य –**

समाज के अनेक उद्देश्य हो सकते है परन्तु समुदाय का एक ही उद्देश्य होना अनिवार्य है।

- **समानतायें –**

ग्रीन ने लिखा है, ''समुदाय संकीर्ण भौगोलिक दायरे में रहने वाले लोगों का संग्रह है जोकि जीवन के एक सामान्य ढ़ंग को अपनाते है।'' किसी भी एक निश्चित समुदाय में अनेक प्रकार की समानतायें पाई जाती है। उदाहरण के लिये वहाँ नियमों, प्रथायें, जन्म रीतियाँ आदि।

- **सामुदायिक भावना –**

समुदाय के व्यक्तियों में किसी एक भावना का विकास हो जाता है। यह 'हम' की भावना समाजशास्त्र में सामुदायिक भावना कहलाती है। दूसरे समुदाय के विद्रोहों का सामना कोई भी समुदाय आवश्यकता में बंध कर करता है। किसी भी समूह का समुदाय में परिवर्तन सामुदायिक भावना के आधार पर होता है।

- **स्वतः जन्म –**

समुदाय का जन्म समिति के समान इच्छा के अनुसार नही किया जा सकता है। अतः आवश्यक तत्वों के एकत्रित होते ही समुदाय स्वतः ही जन्म ले लेता है। मनुष्य जन्म से ही किसी न किसी समुदाय का सदस्य होता है। समुदाय स्वतः होते है उन्हे बनाया नही जाता।

- **विशिष्ट नाम –**

समुदाय का नाम समुदाय की एक प्रमुख विशेषता होती है। वह समुदाय की आर्थिक स्थिति एवं प्रकृति को स्पष्ट करता है। लम्ले ने लिखा है, यह सारूप्यता को इंगित, वास्तविकता को प्रदर्शित, व्यक्तित्व को साबित करता है। यह प्रायः व्यक्तित्व को वर्णित करता है और समुदाय किसी न किसी अंश में एक व्यक्तित्व है।''

- **स्थायित्व –**

समुदाय की प्रकृति अस्थायी नही होती वरन् यह बहुत ही स्थायी संगठन होता है।

- **आत्म निर्भरता –**

प्राचीनकाल में समुदाय प्राकृतिक क्षेत्र में निभगर हुआ करते थे। समुदाय के सदस्यों की आवश्यकतायें उस समुदाय के अन्तर्गत ही पूर्ण हो जाती है, परन्तु आज के समाज में यह सम्भव नही है तथा एक समुदाय दूसरे समुदाय से सहायता लेता रहता है।

4.4 ग्रामीण का अर्थ एवं परिभाषा

विभिन्न विद्वानों ने 'ग्रामीण' शब्द की अनेक व्याख्याएं प्रस्तुत की हैं। कुछ व्यक्तियों का मत है कि जहॉ आर्थिक एवं सामाजिक दृष्टि से पिछडे हुए लोग रहते हो, उस क्षेत्र को ग्रामीण कहा जाये। दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने 'ग्रामीण' शब्द उनके लिए उपयुक्त माना है, जहॉ कृषि को मुख्य व्यवसाय के रूप में अपनाया गया हो। इसी आधार परकृषि और ग्रामीण को पर्याय के रूप में प्रयोग किया जाता है। 'ग्रामीण' की व्याख्या 'नगरीय' शब्द के विपरीत की गयी है, अर्थात् नगरीय विशेषताओं के विपरीत विशेषताओं वाला क्षेत्र ग्रामीण है। 'ग्रामीण' को जनसंख्या के आधार पर भी परिभाषित किया जाता है। प्रत्येक देश में एक निश्चित जनसंख्या वाले क्षेत्र को ग्राम कहा जाता है और उससे अधिक जनसंख्या होने पर वह नगर की श्रेणी में आ जाता है, किन्तु इन सभी व्याख्याओं में किसी न किसी प्रकार की कमी है। आर्थिक व सामाजिक दृष्टि से पिछड़े व्यक्ति ग्रामों में निवास करते है। कृषि ग्रामीण लोगों का मुख्य व्यवसाय है, इस बात से इन्कार नही किया जा सकता, किन्तु कई ग्रामीण लोग ऐसे भी है जो शिकार करके, कन्द–मूल, फल एकत्रित कर तथा मछली मारकर अपना जीवन यापन करते है। कई लोग कुटीर व्यवसायों द्वारा जीवनयापन करते है। अतः कृषि को ही ग्रामीण के निर्धारण का एकमात्र आधार नही माना जा सकता। के.एन. श्रीवास्तव ने 'ग्रामीण' एवं 'नगरीय' की व्याख्या मनुष्य और उसके प्राकृतिक पर्यावरण के बीच अन्तःक्रिया के आधार पर की है। मानव समुदाय और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष, घनिष्ठ और शिथिल सम्बन्ध हो सकते है। ग्रामीण अवस्था में मानव के प्रकृति के साथ निकट और प्रत्यक्ष सम्बन्ध होते है। श्रीवास्त लिखते है, ''एक ग्रामीण क्षेत्र वह क्षेत्र है जहां लोग किसी प्राथमिक उद्योग में लगे हो, अर्थात् प्रकृति के सहयोग से वे वस्तुओं का प्रथम बार उत्पादन करते हो।''

अतः स्पष्ट है कि 'ग्रामीण' शब्द का प्रकृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। मानव अपने जीवन यापन के लिए ग्रामीण क्षेत्र में प्रकृति पर प्रत्यक्ष रूप से निर्भर होता है। वह प्रकृति से वस्तुओं का उत्पादन सीधे रूप में पहली बार करता है, उनके रूपान्तरण के बाद नही। उदाहरण के लिए, गेहू, कपास, तिलहन, जूट का उत्पादन ग्रामीण अवस्था से है। नगरों में इन्हे विभिन्न प्रक्रियाओं से गुजारकर अनेक प्रकार की वस्तुएं निर्मित की जाती है। प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता समुदाय के छोटे आकार को जन्म देती है। छोटा आकार होने पर अन्य विशेषताएं– जैसे प्राथमिक सम्बन्ध और घनिष्ठता पनपती है। पॉल एच. लैण्डिस ने 'ग्रामीण' शब्द की व्याख्या के लिए तीनों बातों को विशेष महत्व दिया है। (क) प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता, (ख) सीमित आकार, (3) घनिष्ठ और प्राथमिक सम्बन्ध। इस प्रकार लैण्डिस के अनुसार– ग्रामीण वह क्षेत्र है जिसके निवासी प्रत्यक्ष रूप से प्रकृति पर निर्भर हो, जिसका आकार सीमित हो और उसमें घनिष्ठ एवं प्राथमिक सम्बन्ध पाये जाते हों।

बरट्राण्ड ने 'ग्रामीणता' के निर्धारण में दो आधारों (क) कृषि द्वारा आय अथव जीवनयापन और (ख) कम घनत्व वाला जनसंख्या क्षेत्र, को प्रमुख माना है।''

संक्षेप में 'ग्रामीण' शब्द के प्रयोग में जो बाते मुख्य है, वे हैः (1) प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता, (2) सीमित आकार, (3) घनिष्ठ और प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानता, (4) कृषि द्वारा जीवन यापन, तथा (5) जनसंख्या का कम घनत्व।

4.5 ग्रामीण समुदाय अर्थ एवं परिभाषा

ग्रामीण समुदाय ग्रामीण पर्यावरण में स्थित व्यक्तियों का कोई भी छोटा अथवा बडा समूह है, जो प्रत्यक्षतः प्रकृति पर निर्भर होता है, प्रकृति की सहायता से आजीविका उपर्जित करता है, प्राथमिक सम्बन्धों को अपने लिये आवश्यक मानता है एवं साधारणतया एक दृढ़ सामुदायिक भवनों के द्वारा बांधा रहता है।

ग्रामीण समुदाय की अवधारणा को समझने के लिए हम यहॉ विभिन्न विद्धानों द्वारा प्रस्तुत कुछ परिभाषाओं का उल्लेख करेगें।

1. हेराल्ड पीक के अनुसर ''ग्रामीण समुदाय परस्पर सम्बन्धित तथा असम्बन्धित उन व्यक्तियों के समूह है जो अकेले परिवार से अधिक विस्तृत एक बहुत बडे घर का परस्पर निकट स्थित घरों में कभी अनियमित रूप में तथा कभी एक गली में रहता है तथा मूलतः अनेक कृषि योग्य खेतों में सामान्य रूप से कृषि करता है। मैदानी भूमि को आपस में बॉट लेता है और आस–पास की बेकार भूमि में पशु चराता है जिस पर निकटवर्ती समुदायों की सीमाओं तक वह समुदाय अपने अधिकार का दावा करता है।
2. सेम्डरसन के अनुसार– "एक ग्रामीण वह स्थानीय क्षेत्र है जिसमें वहॉ निवास करने वाले लोगो को सामाजिक अन्तक्रिया और उनकी संस्थाएं सम्मिलित है, जिनमें वह खेतों के चारों ओर बिखरी झोपडियों या ग्रामों मे रहता है और जो उनकी सामान्य गतिविधियों का केन्द्र है।
3. मैरिल एवं एल्ड्रिज के अनुसार– ''ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत संस्थाओं एवं व्यक्तियों का समावेश होता है जो एक छोटे से केन्द्र के चारों और संगठित होते है तथा सामान्य प्राथमिक हितो द्वारा आपस में बंधे रहते है।
4. सिम्स के अनुसार– '' जिन बृहत् क्षेत्रो में एक समूह के लगभग सभी महत्वपूर्ण हितों की सन्तुष्टि हो जाती है उनकों ग्रामीण समुदाय मान लेने के लिए समाज शास्त्रियों की प्रतिबद्धता बढ़ती जा रही है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि '' ग्रामीण समुदाय का तात्पर्य एक निश्चित भू–भाग पर रहने वाले किसी भी ऐसे छोटे या बडे समूह से है, जिनमें जनसंख्या की समरूपता, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समानता प्रकृति से सम्बद्धता, सरलता एवं सामुदायिक भावना की प्रधानता होती है।

4.6 भारतीय ग्रामीण समुदाय की विशेषताएं–

1. **स्वतः उत्पन्नः**– ग्रामीण समुदाय निर्मित नही होते है बल्कि स्वतः उत्पन्न माने जाते है। विद्धानों का कथन है कि भारतीय ग्राम प्रकृति की ओर से अपने आप विकसित हुए है। यही कारण है कि ग्रामीण लोग अधिक भाग्यवादी होते है।
2. **कृषि प्रमुख व्यवसाय** :– कृषि व्यवसाय ग्रामीण समुदाय की प्रमुख विशेषता है क्योंकि ग्रामीण समुदाय की अधिकांश जनसंख्या इसी व्यवसय पर निर्भर है इसका यह अभिप्राय नही है कि गांव में रहने वाले सभी व्यक्ति कृषि पर ही आश्रित है अपितु अन्य व्यवसाय करने वाले लोग (बढई, जुलाहे, लोहार आदि) भी गांव में रहते हैं परन्तु वे सब कृषि से सम्बन्धित कार्यो को ही अधिकतर करते है। इस समय भारत की कुल जनसंख्या का 68. 8 प्रतिशत भाग गांवों में रहता है जो कि अधिकांशतः खेती करता है।
3. **प्रकृति से प्रत्यक्ष सम्बन्धः**– ग्रामीण समुदाय में सदस्यों का प्रकृति से सीधा सम्पर्क रहता हैं गांव में कृषि व्यवसाय होने के कारण ग्रामीण व्यक्तियों का जीवन भी प्राकृतिक हो जाता है, क्योकि खुले खेतों मे तथा प्राकृतिक दशाओं में उन्हें कार्य करना पडता है। इसलिए ग्रामीण लोग स्वच्छ वातावरण में रहते हुए खुले खेतों से सम्बन्धित सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करते है।
4. **समिति आकारः**– ग्रामीण समुदाय का आकार समिति होता है जिसके कारण सदस्यों में प्रत्यक्ष अनापचारिक व सहज सम्बन्ध पाये जाते है। प्राथमिक सम्बन्ध ग्रामीण समुदायों के व्यक्तियों की प्रमुख विशेषता हैं सम्बन्ध प्रत्यक्ष तथा व्यक्तिगत होते है तथा व्यवसाय कृषि होने के कारण, जिसमें अधिकाधिक व्यक्तियों की आवश्यकता रहती है। सदस्यों में परस्पर सहयोग पाया जाता है, सम्बन्धों में सम्पूर्णता पायी जाती है तथा सम्बन्ध स्वयं साध्य होते है।
5. **जनसंख्या का कम घनत्वः**– ग्रामीण समुदाय का क्षेत्र तो खेतो के कारण विस्तृत होता है परन्तु सदस्यों की जनसंख्या समिति होने के कारण जनसंख्या का घनत्व बहुत कम होता है। सदस्य अपने खेतों के पास ही रहते है। इस प्रकार ग्रामीण जीवन नगरों के भीड–भाड वाले व्यस्त जीवन से पूर्णतः अलग है।
6. **सजातीयताः**– ग्रामीण समुदाय के व्यक्तियों में सजातीयता पायी जाती है। सदस्यों की जीवन–पद्धति, रहन–सहन, खान–पान, रीति रिवाज, धार्मिक विचार तथा सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवहार लगभग एक जैसे ही है। इस कारण सदस्यों में एक व्यवसाय तथा अन्य पहलुओं मे एकरूपता होन से भिन्नता का ग्रामीण समुदाय में कोई स्थान नही है। परन्तु बढते हुए नगरीकरण तथा औद्योगिकीकरण से आज ग्रामीण समुदायों में भी विजातीयता आती जा रही है।
7. **सामाजिक गतिशीलता का अभावः**– ग्रामीण समुदायों में सामाजिक गतिशीलता न के बराबर है। बच्चे माता–पिता का परम्परागत व्यवसाय अपना लेते है तथा रहन–सहन एवं विचार एक जैस होने के कारण सामाजिक गतिशीलता की सम्भावना भी अधिक नही है। ग्रामीण समुदायों में विभिन्न वर्गो एवं व्यवसायों में भिन्नता बहुत कम पायी जाती है। शिक्षा कम होने के कारण भी गतिशीलता अधिक नही पायी जाती है।

8. **धार्मिक विचारों की प्रधानताः**– ग्रामीण समुदाय के व्यक्ति धर्म में अधिक विश्वास करते है तथा उनके अधिकतर कार्य विश्वासों के अनुसार ही होतें है। परम्पराओं तथा प्रथाओं की प्रधानता होती है तथा रूढिवादिता अधिक पायी जाती है। गावं में विभिन्न पारिवारिक जातीय तथा अन्य सामूहिक देवी–देवताओं की पूजा की जाती है।
9. **प्राथमिक सम्बन्धों की प्रधानताः**– सीमित आकार तथा प्रत्यक्ष सम्बन्ध होने के कारण ग्रामवासियों में अनौपचारिक सम्बन्ध पाए जाते हैं। प्राथमिक समूहों जैसे परिवार, पडौस, क्रीड़ा, समूह इत्यादि की प्रधानता पाई जाती है तथा सम्बन्धों में किसी भी तरह की औपचारिकता अथवा कृत्रिमता नहीं पाई जाती है।
10. **सामाजिक एकताः**– व्यवसाय रीति रिवाज रहन साहन खान पान तथा साामाजिक जीवन एक जैसा होने के कारण ग्रामीण समुदाय में एकता पायी जाती है।

सामाजिक विभिन्नीकरण तथा सामाजिक स्तरीकरण (Social differentiation and social stratification)– यद्यपि ग्रामीण समुदायों में आयु तथा लिंग के आधा पर इतना महत्वपूर्ण विभिन्नकीरण नहीं पाया जाता फिर भी प्रस्तुतिकरण प्रमुख रूप से जातिगत ही है। जाति व्यवस्था ग्रामीण समाज में अभी भी सुदृढ़ है तथा उच्च जातियों द्वारा अनेक निषेधों का पालन किया जाता है। पहले परम्परागत रूप में गाँव में रहने वाली विभिन्न जातियों में सेवाओं के विनिमय की व्यवस्था पायी जाती थी जिसे जजमानी व्यवस्था कहा जाता है। परन्तु आधुनिक युग में जजमानी प्रथा प्रायः समाप्त सी हो गई है।

4.7 ग्रामीण समुदाय की उत्पत्ति–

सृष्टि के प्रारम्भ से ही हमें ग्राम समुदाय एवं सामूहिक जीवन का कुछ–न–कुछ रूप अवश्य दिखाई देता है। मानव की प्रकृति समूह में रहने की है और वह एक सामाजिक प्राणी बन गया है। सदा से ही वह अपनी समस्याओं को सामूहिक रूप से सुलझाता आया है। हमारें देश के प्रमुख वेद ऋग्वेद में सामूहिक प्रयत्न का विवेचन मिलता है। इस वेद में इस बात का वर्णन है कि ऋषि लोग सम्मिलित रूप से प्रार्थना करते थे जिसको समाजमना कहकर पुकारा जाता था। इस प्रकार के सामूहिक समूहों को प्रारम्भ में समिति कहकर पुकारा जाता था।

प्रीथवी शुक्ला ने भी इस प्रकार के संगठनों के उदाहरण मिलते है। इससम्बन्ध में डॉ0 राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है है ''यह समस्त सदस्यों की सामान्य सभाएं समाज के अपने सदस्यों के समान अधिकार एवं स्वतंत्रताओं के लिए कार्य करती थी, जिससे कि सबके मस्तिष्क में स्वतंत्रता, समता तथा मातृत्व का ज्ञान रहे।'' इन्होनें पुरातन समुदायों को कुल जाति, पुग, वार्ता, संघ, समुदाय, समूह, परिषद, चर्च आदि नामों से पुकारा है।

इसके अतिरिक्त वाल्मीकी रामायण में भी पुरातन संगठनों का उल्लेख मिला है। इसमें दो प्रकार के ग्राम बतलाए हैं–घोष और ग्राम। इन ग्रामों के अधिष्ठाता ग्रामणी थे। इसी प्रकार का उल्लेख महाभारत में मिलता है। इसके अनुसार ग्राम अधिकारी को ग्रामिक कहकर पुकारा जाता था। मनु के अनुसार यह अधिकारी समस्त ग्रामीण जनता का प्रतिनिधि माना जाता था। यह एक सहस्त्र गांवों का अधिकारी होता था। इसकी मनु ने शतग्रामाधिपति कहकर पुकारा है। इसी प्रकार हजारों गांवों का अधिकारी सहस्त्रग्रामाधिपति होता था।

प्रारम्भ से ही ग्राम एक समुदाय में संगठित रहा है। इस प्रकार ग्रामीण संरचना प्रारम्भ से सामुदायिक आधार पर खडी रही है। जहाँ साधारणतयाः सामान्य रूप से कृषि की जाती रही है। मालवीय ने बताया है कि पुरातन काल में सामान्य व राष्ट्रीय विचारों से परिपूर्ण संगठन विद्यमान थे। कार्ल मार्क्स ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि– ''ये विशेष रूप से प्राचीन तथा लघु ग्रामीण समुदाय, जिनमें से कुछ आज भी निरन्तर बने हुए है, भूमि के सामूहिक स्वामित्व पर आधारित है।'' अतः स्पष्ट है कि ग्रामीण संरचना प्रारम्भ से सहयोग एवं जनतंत्र पर आधारित थी। भूमि एवं अन्य सम्पत्ति का सामान्य स्वामित्व था। सामूहिक खेती और सामूहिक चरागाह, जन साधारण के उपयोग की सामूहिक भूमि आदि के उदाहरण आज भी हमें देखने को मिलते है। बेडन पावेल ने कहा है कि ग्राम समुदाय महत्व की दृष्टि से साधारण समुदाय नही है बल्कि ग्राम जनता के सामूहिक अधिकारों पर संगठित है। ऑगबर्न और निमकॉफ ने भी कहा है कि ग्राम मनुष्य का सबसे प्राचीन समुदाय है। समुदाय ग्राम से पूर्व भी स्थापित हो चुके थ, किन्तु वे अस्थायी थे। अतः स्पष्ट है कि स्थायित्व के आधार पर समुदाय के विचारों का प्रथम उद्रेक ग्रामों मे ही हुआ है। यहीं से सामुदायिक भावना का रूप अन्य विचारों से परिणत होकर नगरों एवं कस्बों में आज भी देखने को मिलता है।

4.8 क्या भारतीय ग्राम समुदाय है–

समुदाय का अर्थ समझने के पश्चात् हमें यह देखना है कि क्या ग्राम अथवा भारतीय ग्राम समुदाय है? हमने यह देखा है कि किसी भी समूह को समुदाय उसी समय कहा जा सकता है जबकि उपुर्यक्त वर्णित आवश्यक तत्व मौजूद हो। अब हम सिद्ध करेंगे कि भारतीय ग्राम में ये सभी तत्व मौजूद है–

1. **भारतीय ग्राम एक निश्चित एवं स्थायी भू–भाग है**– प्रत्येक भारतीय ग्राम एक भौगोलिक सीमा है इस निश्चित क्षेत्र में वह दो प्रकार की सीमायें रखता है–प्रथम जिस स्थान पर ग्राम के निवासी अपने घर स्थायी रूप से निवास करते है और द्वितीय वह भौगोलिक सीमा जिसके अन्दर कृषि योग्य, पशु चराने योग्य या बेकार भूमि आती है। जिस पर एक ग्राम का पूर्ण अधिकार होता है तथा जो दूसरे ग्राम के साथ सीमा रेखायें निश्चित करती है। यह भौगोलिक क्षेत्र ग्रामीण स्वामित्व और एकता को निश्चित करता है।
2. **भारतीय एक मानव समूह**– प्रत्येक ग्राम स्त्री पुरूष और बाल–बच्चों का समूह होता है। इस मानव समूह की सदस्य संख्या निश्चित होती है। जिसमें ग्राम के सभी मूल निवासी आते है।
3. **ग्राम के प्रति हम भावना** – ग्राम के प्रत्येक सदस्य में सामुदायिक भावना पाई जाती है। वह अपने ग्राम को मेरा या हमारा ग्राम कहकर पुकारता है और अन्य ग्रामों या समुदायों की तुलना में अपने ग्राम को केवल प्राथमिकता ही नही देता बल्कि वह प्रत्येक बाह्य कठिनाई या हानि का भी जी जान से सामना करता है। सब ग्रामीणों को अपने ग्राम, घर और भूमि से प्यार होता है। उसकी इज्जत, प्रतिष्ठा और सम्मान को देखकर वह गर्व अनुभव करता है। डॉ. श्रीनिवास ने उचित ही लिखा है कि ''ग्राम के प्रति गर्व

या अभिमान एक सामान्य बात है यद्यपि यह उद्देश्य पूर्ण होकर कभी व्यक्त नही होता है।''

4. **सामान्य जीवन**– किसी भी समुदाय की प्रमुख विशेषता यह होती है कि उसके निवासियों का जीवन सामान्य होता है। भारतीय ग्रामीण समाज इसका अच्छा उदाहरण है। विभिन्नता, विभेदीकरण और विशेषीकरण से दूर सभी ग्रामवासी समान जीवन व्यतीत करते है, उनके व्यवसाय, रीति–रिवाज, प्रथायें, रूढ़ियां, भाषायें, विचारधारा, जीवनधारा, जीवनस्तर सब सामान्य होता है। यद्यपि ग्रामों में जाति–भेद अत्याधिक मात्रा में पाया जाता है, फिर भी समस्त जातियों के जीवन के ढ़ंग और रहन–सहन के स्तर से उनमें विभेद नही किया जा सकता है। वस्तुतः भारतीय ग्राम एक पूर्ण सामुदायिक इकाई है जिसमें जीवन की पूर्णता के दर्शन होते है।
5. **भारतीय ग्राम–समानता का क्षेत्र**– भारतीय ग्रामीण सामाजिक जीवन में समानता का अनुभव होता है क्योंकि एक साथ रहने के कारण उनके जीवन का तरीका सामान्य होता है। साथ–साथ रहने और समान वस्तुओं का उपभोग करने के कारण प्रत्येक ग्रामवासी अपने में और अन्य लोगों में कोई अन्तर नही समझता है। प्रत्येक गांव के अपने विशिष्ट उत्सव होते है जिनमें सभी लोग भाग लेते है और अन्य समुदायों से अपना पृथक अस्तित्व समझते है।
6. **ग्राम एक स्वतः विकसित इकाई**– समुदाय एक स्वतः विकसित इकाई है। भारतीय ग्राम भी किसी उद्देश्य हेतु निर्मित नही है। मनुष्य ने इनकी सृष्टि नही की है और न ही ग्रामीण लोग जानते है कि ग्रामों की उत्पत्ति कैसे हुई और होती है, इसके विपरीत यह मनुष्यों की सृष्टि एवं निर्माण करता है। जहां उसके जीवन की सम्पूर्ण आवश्यकताएं पूर्ण होती है। इसलिए भारतीय ग्रामों को ईश्वर कृत माना जाता है।
7. **प्रत्येक ग्राम का विशिष्ट नाम**– प्रत्येक समुदाय का एक विशिष्ट नाम होता है जिससे वह सम्बोधित होता है। यह नाम स्थायी होता है और अन्य समुदायों से भिन्नता का सूचक होता है। यदि भारतीय ग्रामों के ऊपर दृष्टिपात करें तो प्रत्येक ग्राम के पीछे एक छिपा हुआ इतिहास मिलता है, जिसमें उसकी परम्पराओं और प्रथाओं का बोध होता है।

8. एक समुदाय के अन्तर्गत सम्पूर्ण जीवन व्यतीत होता है। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य की सभी मौलिक एवं मौखिक आवश्यकताएं समुदाय के अन्दर ही पूर्ण हो जाती है। भारतीय ग्राम सदैव ही आत्मनिर्भर इकाई रहे है। हम जानते है कि हमारें ग्राम सदैव खाने, पीने, पहनने, मकान, मनोरंजन इत्यादि की सम्पूर्ण आवश्यकतायें स्वयं ही पूर्ण करते रहते है, उन्हे अन्य समुदायों पर निर्भर रहने की कभी आवश्यकता नही रही है। यद्यपि आज यह गुण समुदाय के लिए आवश्यक अंग नही माना जाता है और अनेकों वस्तुएं ग्रामों में शहरों तथा विदेशों से आती है। जैसे अच्छी फसल के लिए बीज, खाद, रासायनिक पदार्थ, ट्रैक्टर इत्यादि। लेकिन फिर भी हम यह कहे कि भारतीय ग्राम अन्य देशों के ग्रामों तथा समुदायों की अपेक्षा आज भी अधिक स्वावलम्बी है, तो अनुचित न होगा।

इस प्रकार हम देखते है कि भारतीय ग्रामों में एक समुदाय के सभी गुण पाये जाते है। मानवशास्त्रियों का तो यहाँ तक कहना है कि ग्राम सबसे प्राचीनतम समुदाय है। हम किसी भी ग्राम समुदाय को निम्न प्रकार व्यक्त कर सकते हैः–

ग्रामीण समुदाय = ग्रामीण जनता + ग्रामीण भूमि + सामुदायिक भावना

4.9 परम्परागत भारतीय ग्रामीण समुदाय का पतन और नवीन परिवर्तन–

भारतीय ग्रामीण समुदाय की जिन विशेषताओं का हमने ऊपर वर्णन किया उनका 18वीं सदी के मध्य से ही ह्रास होने लगा। ब्रिटिश राज्य की स्थापना से ही उनमें अनेक नवीन परिवर्तन आने लगे। ग्रामीण आत्मनिर्भर अर्थव्यवस्था जर्जर होने लगी। अंग्रेजों के शासनकाल में छोटे–छोटे सामन्त परस्पर लड़ा करते थे और उनके युद्ध का भार भी गांवों को उठाना पड़ता था। धीरे–धीरे जनसंख्या बढ़ रही थी जिससे भूमि पर भार बढ़ा और गृह उद्योग नष्ट होने लगे। ब्रिटिश शासन की स्थापना से ग्रामीण समुदायों की आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक व प्रशासन व्यवस्था में परिवर्तना आया। अंग्रेजों से पूर्व भूमि बिक्री की वस्तु नही थी। भूमि पर सारे गांव का सामूहिक स्वामित्व होता था। ग्राम पंचायत उसकी देख–रेख करती थी तथा राजा को भूमि का राजस्व दे दिया जाता था। अब भूमि एक बिक्री की वस्तु हो गई और वे व्यक्ति भी जो स्वयं कृषि नही करते थे, भूमि खरीदकर मजदूरों से कृषि कराने लगे। परिणामस्वरूप जमींदारी प्रथा का उदय हुआ। भूस्वामी और भूमिहीन मजदूर दो नये वर्ग पनपे।

परम्परागत समुदाय में उत्पादन का मुख्य उद्देश्य उपभोग था न कि बाजार। अंग्रेजो के शासनकाल में ग्रामीण अर्थव्यवस्था सम्पूर्ण देश में ही नही विश्व में जुड़ गयी। विश्वव्यापी आर्थिक गतिविधियों का प्रभाव गांवों पर भी पड़ने लगा। औद्योगीकरण एवं फैक्ट्री प्रणाली के कारण ग्रामीण कुटीर व्यवसाय चौपट होने लगे। कृषि और उद्योगों का सन्तुलन बिगड गया। लोग गांव छोड़कर व्यवसाय की तलाश में नगरों में आने लगे। इस निष्क्रमण से ग्रामीण समुदायों की परम्परात्मक विशेषतायें शिथिल हुई। अंग्रेजो की प्रशासकीय एवं न्याय सम्बन्धी नीतियों ने भी ग्रामीण समुदायों को कमजोर बनाया । अब न्याय कार्य नगरों में न्यायालयों में पढ़े लिखे न्यायाधीशे, वकीलों, आदि के द्वारा होने लगा। परम्परागत ग्राम पंचायतों के अधिकार छीन गये और वे निष्क्रिय हो गयी।

आजादी के बाद हमारी सरकार ने गांवों का महत्व समझा और केन्द्रीय व राज्य सरकारों ने ग्रामीण उत्थान और विकास की अनेक योजनाएं बनायी। पंचवर्षीय योजनाओं, सामुदायिक विकास योजनाओं तथा समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के द्वारा ग्राम विकास पर कार्यक्रम के द्वारा ग्राम विकास पर जो दिया गया। पंचायत राज के अन्तर्गत ग्राम पंचायतों को नये अधिकारों एवं कर्तव्यों से सुसज्जित किया गया। इनसे गांवों में अनेक परिवर्तन आये है, किन्तु नवीन समस्याओं ने भी जन्म लिया है। गांवों में गुटबन्दी और दलगत राजनीति ने भाई–चारें की भावना समाप्त कर दी है। नया नेतृत्व उभरा है जो अभी संक्रमण काल में है। विकास योजनाओं का लाभ अधिकांशतः उन्ही लोगों को मिला है जो जमींदार या बड़े भूस्वामी हैं। भूमिहीन मजदूरों के लिए जो कुछ भी किया गया है, वह काफी कम है यद्यपि केन्द्र सरकार इस दिशा में विशेष रूप से प्रयत्नशील है।

नयी न्याय–व्यवस्था एवं प्रशासन, सामुदायिक विकास योजना एवं समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम, यातायात एवं संचार के नवीन साधन, नयी शिक्षा प्रणाली, औद्योगिकरण एवं नगरीय, कृषि में हरित क्रान्ति, आदि कारकों के प्रभाव के कारण परम्परागत भारतीय ग्रामीण समुदाय में अनेक परिवर्तन हुए हैं, वे है (1) संयुक्त परिवारों का विघटन, (2) जजमानी प्रथा की समाप्ति, (3) जाति प्रथा से सम्बन्धित दोषों में कमी, (4) नयी अर्थव्यवस्था का उदय, (5) नवीन प्रजातंत्रीय नेतृत्व का विकास, (6) गांवों में गुटो एवं दलगत राजनीति का उदय, (7) द्वैतीयक सम्बन्धों में वृद्धि, (8) परम्परागत भारतीय मूल्यों के स्थान पर नवीन मूल्यों ग्रहण करना आदि।

4.10 भारतीय गाँव एक इकाई के रूप में–

समाजशास्त्रियों ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया है कि भारतीय गाँव एक इकाई है। प्रत्येक गाँव लोगों को समूह है जो एक निश्चित भू–क्षेत्र में बसा होता है और कुछ दूरी पर बसे ऐसे ही समूह से भिन्न होता है। गाँवो की पृथक्कता, उनके बीच यातायात एवं सड़को की कमी अधिकतर लोगों की कृषि पर निर्भरता, समुदाय के लोगों की आर्थिक दृष्टि से पारस्परिक निर्भरता, समुदाय के सामान्य अनुभव एवं परम्पराएं, सामुदायिक उत्सवों एवं त्यौहारों का महत्व आदि कारकों की उपस्थिति गाँव की एकता को सम्भव एवं स्वाभाविक बनाती है। पोस्ट ऑफिस की दृष्टि से भी प्रत्येक गांव को एक–तिहाई माना गया है। राजस्व एकत्रित करने की दृष्टि से भी सरकारी खातों में एक गांव की भौगोलिक सीमा मानी गयी है और उस गांव की भूमि का ब्यौरा पाया जाता है। उसी के आधार पर लगान वसूल किया जाता है। धार्मिक दृष्टि से भी प्रत्येक गांव का एक ग्राम देवता होता हे जिसे सभी ग्रामवासी मानते है और लोगों का विश्वास है कि वह संकट के समय सम्पूर्ण गांव की रक्षा करता है। प्रत्येक गांव की कुछ ऐसी विशेषताएं होती है, जिनके आधार पर दूसरे गांव वाले उसे पहचानते है जैसे अमुक गांव लडाकू है अथवा शांत, शिक्षित है अथवा अशिक्षित। राजनीति दृष्टि से भी गांव एक इकाई है। वह प्रशासन की सबसे छोटी कड़ी है। ग्राम पंचायत वही प्रशासन एवं विकास के कार्य करती है। इस प्रकार गांवो को भौगोलिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से एक इकाई माना गया है।

इस ग्रामीण एकता के दर्शन उस समय होते है जब गांव में आकस्मिक संकट, महामारी, बाढ़ आदि आ गये हो, करो का या किन्ही वैधानिक नियमों का सामूहिक विरोध करना हो, धार्मिक उत्सव और सामुदायिक त्यौहार मनाना हो, गांव में डकैती हो रही हो अथवा दो गांवों के बीच संघर्ष हो रहा हो। डॉ0 श्रीनिवास ने मैसूर के एक गांव रामपुरा की सामुदायिक एकता का उल्लेख किया है। वे लिखते है– अगर किसी वर्ष मानसून नही आता है, इसका अर्थ है सभी के लिये अनावृष्टि। जब कभी हैजा, मलेरिया, प्लेग, चेचक आदि रोग फैलते है तो सारा गांव एकता में बंध जाता है। पूरा गांव स्थान छोड़कर दूसरी जगह रहने को चला जाता है। वर्तमान रामपुरा गाँव को बसे हुए, जब श्रीनिवास अध्ययन कर रहे थे तो 70 वर्ष ही हुए थे, पुराना गांव दूसरे स्थान पर था। मलेरिया के प्रकोप से बचने के लिए भागकर ही लोग इस नये स्थान पर आ बसे थे। देवता को प्रसन्न करने के लिए गांव के लोग मिलकर पूजा या आराधना करते है। बीमारी को सांस्कारिक रूप से गांव के बाहर फेंक आते है। गांव की सीमा का भौगोलिक ही नही सांस्कारिक महत्व भी है। रामपुरा की भांति ही डॉ. चौहान ने राजस्थान के गांव 'राणावतो की

सादड़ी' में अकाल एवं प्लेग के समय ग्रामवासियो द्वारा प्रकट की गई एकता का उल्लेख किया है।

गांव की सांस्कृति एकता भी महत्वपूर्ण है। 1948 में रामुपरा में सूखा पड़ा जिससे गर्मी की फसल पर विपरीत प्रभाव पड़ा। गांव वालों की मान्यता थी कि उन्हे ईश्वर ने यह दण्ड दिया है। एक अन्य मान्यता यह भी थी कि कोढ़ी व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर उसे जलाने या नदी में फेंकने के स्थान पर गाढ़ने से धरती माता अपवित्र हो जाती है और रूष्ट होकर प्राकृतिक विपदाएं भेजती है।

रामुपरा में उसी समय एक घटना घटी। सरकार ने रामपुरा गांव के तालाब की मछलियों को नीलाम करने की बात कही। जब गावं वालों को इस बात का पता चला तो उन्होनें प्रतिक्रिया व्यक्त की कि सरकार को ऐसा करने का क्या हक है? यह तो गांव वालों के अधिकारों का अतिक्रमण है। अतः नीलामी के समय कोई भी गांव वाला नही पहुंचा।

रामपुरा गांव की एकता उस समय भी देखी जा सकती है जब अपने से दूसरे गांव वालों से भिन्न समझते है। रामपुरा के लोग अपने को पास के गांव बिहाली से परिष्कृत मानते है। वे यह भी मानते है कि 'केरे' गांव के लोग रामपुरा को पिछड़ा हुआ और अपने को विकसित मानते है। एक गांव का सदस्य होना उस व्यक्ति के लिए गर्व की बात है।

दो गांवों के बीच संघर्ष होने की स्थिति में भी ग्राम एकता देखी जा सकती है। जब दो गांवों के बीच झगड़ा होता है तो गांव के सभी जातियों के लोग एक होकर मुकाबला करते है, किन्तु ब्राह्मणों की पिटाई तब तक नही होती जब तक वे स्वयं ही उससे सम्बन्धित न हो। इसी प्रकार से मुस्लमानों को हिन्दू व्यवस्था से बाहा होने और शुद्रो को निम्न सामाजिक स्थिति होने के कारण पीटा नही जाता है। डॉ0 मिलर ने बताया कि उत्तरी केरल के गांव में नम्बूद्री ब्राहमण एक भू–क्षेत्र मं उच्च माने जाते है। दो गांवों के बीच झगड़ा होने पर उनकी पिटाई नही की जाती, किन्तु वे सम्मान का दुरूपयोग नही कर सकते। अछूतों को गांव का आंशिक सदस्य माना जाता है जो मुस्लमानों को बाहय शक्ति।

गांव की एकता बनाए रखने में प्रभु जाति की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। प्रभु जाति वह जाति है जो जनसंख्या, सामाजिक स्थिति, आर्थिक तथा राजनीतिक दृष्टि से सत्तासम्पन्न होती है। वह समुदाय की व्यवस्था को बनाए रखने का प्रयत्न करती है तथा दूसरी जातियों की परम्पराओं का सम्मान करती है। समुदाय की अन्य जातियों प्रभु जाति के पास अपने विवादों को निपटाने के लिए ले जाती है। विभिन्न जातियां जजमानी प्रथा द्वारा एक दूसरे की सेवा प्राप्त करती है और गांव का आत्मनिर्भर बनाती है। इस दृष्टि से ही गांव को उदग्र एकता के रूप में माना जाता है।

कतिपय समाजशास्त्रियों ने ग्राम समुदाय की एकता को स्वीकार नही किया है और उन्होंने ग्रामीण सामुदायिक एकता को नष्ट करने वाले तत्वों का उल्लेख किया है। वे ग्रामीण एकता के विपरीत निम्नांकित तर्क देते है–

1. एक गांव में अनेक जातियाँ निवास करती है। एक गाँव में रहने वाली जाति दूसरे गांव में रहने वाली अपनी ही जाति से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। खान–पान तथा विवाह द्वारा वे परस्पर जुड़ी हुई है। अतः विभिन्न गांवों में बसने वाली एक ही जाति गांव की एकता को नष्ट कर देती है तथा गांव की एकता को नष्ट कर देती है तथा गांव की

एकता के स्थान पर जातीय एकता को अधिक महत्व देती है। वह जातीय झगड़े दूसरे गांव में बसे अपनी ही जाति के वयोवृद्ध लोगों के पास निपटाने के लिए ली जाती है।

2. गांवों के बीच प्राचीन समय में यातायात और संचार के साधनों का अभाव था, फिर भी इन पड़ौसी गांवों के बीच घनिष्ठ आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक सम्बन्ध पाये जाते थे। इससे ग्राम एकता के स्थान पर अनेक ग्रामों की एकता पाई जाती है। सभी पडौसी गांव परस्पर अन्योन्याश्रित थे।
3. एक केन्द्रित गांव में भी ग्राम एकता की भावना जाति और गांवों की पारस्परिक निर्भरता के कारण यदि नष्ट नही होती तो कमजोर अवश्य हो जाती है। छितरे हुए गांवों में तो यह बहुत कमजोर हो जाती है। अतः ग्राम एकता को सिद्धान्ततः स्वीकार नही किया जा सकता। यद्यपि अनेक अवसर ऐसे आते है जब इसका अस्तित्व दिखाई देता है।

अतएव इस बात से तो इन्कार नही किया जा सकता कि जाति एक शक्तिशाली संगठन है और इसके बाद महत्वपूर्ण विषयों पर पास के गांव में अपनी जाति के सदस्यों से सलाह लेते है फिर भी हम जाति को गांव की तरह आत्मनिर्भर नही कर सकते। एक गांव में रहने वाली सभी जातियों का अपना–अपना व्यवसाय होता है, आर्थिक और अन्य रूप से वे परस्पर निर्भर होती है। व्यवसायों की भिन्नता उन्हे एकता में बाँधती है, वं निकट आती है। आसामी और साहूकार, भू–स्वामी और किसान, मालिक और नौकर, ऋणी और ऋणदाता आदि के सम्बन्ध ग्राम की सीमा में ही पाये जाते है और ग्राम एकता के स्वरूप को पुष्ट करते है।

4.11 गांव : एक जीवन विधि : एक अवधारणा

डॉ0 मजूमदार ने गांव की एकता एक–दूसरे दृष्टिकोण से देखी है। वे गांव को एक जीवन–विधि, एक अवधारणा के रूप में परिभाषित करते है। गांव की एक इकाई, एक सम्पूर्णता भी है। इस नाते गांव के सभी लोगों की एक संगठित जीवन विधि, विचार, अनुभव और संस्कृति होती है। प्रत्येक गांव का एक भूतकाल होता है, एक मूल्य व्यवस्था, एक भावात्मक व्यवस्था होती है। सभी लोगों का सम्बन्ध भूतकाल के गहरे अनुभवों से होता है। इस नाते गांव का एक पृथक इकाई है। किन्तु इसका दूसरा पक्ष यह है कि ये सभी विशेषताएं केवल गांव की सीमा तक ही सीमित नहीं होती। गांव वालों के नातेदारी सम्बन्ध गांव में ही नही, वरन् आसपास के गांवों में भी होते है। सामाजिक, राजनैतिक एवं प्राकृतिक संकटों के समय गांवों के लोग परस्पर सहायता करते है। अतः इस रूप में गांव को एक पृथक इकाई मानना उचित नही। प्रत्येक गांव देश की सम्पूर्ण समाज व्यवस्था विभिन्न स्तरों पर जुड़ा हुआ है। गांव वालों के सम्बन्ध बाहर की दुनिया से भी है। गांव की बेटियां विवाह करके गांव से बाहर जाती है तो बहुएँ गांव में बाहर से आती है। परिवार की परम्पराएँ और मूल्य उनके साथ जुड़े होते है तो ग्रामीण जीवन में अचानक होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करने में बाधक होते है। यदि हम गांवो की उपर्युक्त संचार व संरचनात्मक व्यवस्था पर ध्यान दे तो गांव एक सम्पूर्णता के रूप में दिखाई देगा।

गांव में अनेक विभिन्नताएं और सामानताएं विद्यमान है। वहां जातियों के आधार पर मौहल्ले बने होते है। उच्च और निम्न जातियों के बीच विचारों, विश्वास, व्यवहारों, शिक्षा, आय, जीवन–आदतों और अन्तर्जातीय सम्बन्धें में अनेक विभेद पाये जाते है। उच्च एवं निम्न जातियां परिवर्तन के दौर में है, अन्तर्जातीय सम्बन्धों में भी परिवर्तन हो रहे है। इन सभी घटनाओं के

बावजूद भी वर्षो से साथ–साथ रहने एवं सहयोग करने, धार्मिक एवं आर्थिक जीवन में आदान–प्रदान करने, समान हितों और समस्याओं में भागीदार होने के कारण गांव एक संगठित इकाई दिखाई देता है।

गांव एवं जीवन विधि और अवधारणा दोनो ही है। बाहरी सम्पर्क के बावजूद भी गांव वाले अपना जीवन उसी तरह व्यतीत कर रहे है जैसा वे भूतकाल में व्यतीत करते थे। गांव की जीवन–विधि नगर से पृथक है। जब तक गांव अपना व्यक्तित्व बनाये रखेंगे जैसे कि अब बनाये रखा है अथवा जब तक ग्रामीण मूल्य समूह में परिवर्तन नही आता है तब तक गांव एक अवधारणा के रूप में भी मौजूद रहेंगे। डॉ0 मजूमदार का मत है कि गांव और नगर के बीच आदान–प्रदान की जो प्रक्रिया है, वह भारत में दिखाई नही देती। भारत में ग्रामीण एवं नगरीय मूल्य एवं जीवन–विधि भिन्न–भिन्न है। जो गांव नगरों में परिवर्तित नही हुए। यहां तक कि वे गांव जिनकी जनसंख्या 5,000 है और जनगणना विभाग की परिभाषा के अनुसार नगर माने जाते है, ग्रामीण मूल्य व्यवस्था बनाये हुए है। एक नगर का व्यक्ति जब गांव में जाता है तो वह ग्रामीण एवं नगरीय मूल्यों में स्पष्ट अन्तर देख सकता है। मोहाना गांव के लोग जो शहरों से भी सम्पर्क बनाये हुए है, गांव में भी अपनी विशिष्ट प्रतिष्ठा रखते है। लोग उनको सुनते है, प्रशंसा करते है और समय आने पर उनकी सलाह और सहायता लेते है। ग्राम व शहर में मध्य कड़ी बनाये रखने वाले ये लोग भी मानते है कि शहर और गाव भिन्न–भिन्न है।

गांव वालों की धारणाा है कि शहर के लोगों का व्यवहार असामान्य होता है उनका जीवन आराम का है, उनके व्यवहार में नैतिकता का अभाव होता है, वे नास्तिक और स्वार्थी होते है। जब कोई पिता अपने बच्चे को शहरी स्कूल में भेजने से मना करता है तो इसका उद्देश्य है कि वह अपने बच्चें को 'शहरिया' नही बनाना चाहता। 'शहरिया' शब्द मूल्यों के एक समूह को प्रकट करता है तो जो उन मूल्यों से भिन्न है। जिनसे गांव वाले परिचित है और जिन्हे वे पीढ़ियों से अपनाये हुए है। ग्रामीण नगरीय भेद ने ही भारत की परम्परात्मक संस्कृति को जीवित रखा है अन्यथा हमारे यहां कोई चर्च जैसी व्यवस्था नही रही है जो प्राचीन धर्म, कला, सांस्कारिक व्यवहारों, संस्कृति, लोकगीत, हिन्दू धर्म आदि की रक्षा करती। गांव और नगर का भेद ही गांवों को शहरों के समान नहीं होने देता। गांवों की भावात्मक व्यवस्था व मूल्य व्यवस्था की गांवों को परिवर्तित होने से रोकती है। अतः स्पष्ट है कि गांव की एक संस्कृति, एक मूल्य–व्यवस्था और भावात्मक व्यवस्था होती है। जो गांव की एक विशिष्ट जीवन–विधि निर्मित करती है और उसे एक अवधारणा के रूप में प्रस्तुत करते है।

4.12 गांवों का वर्गीकरण

ग्राम विविध प्रकार के पाये जाते हैं यद्यपि ग्रामों में बहुत सी बातों में समानता पाई जाती है फिर भी उनमें अनेक अन्तर पाये जाते हैं। उनमें जनसंख्या आकार, भूमि का स्वामित्व, परम्परायें एवं अन्य आधारों को लेकर वर्गीकरण एवं अन्य आधारों पर लेकर वर्गीकरण किया जा सकता है। अब हम कुछ वर्गीकरणों पर दृष्टिपात करेंगे।

धर्मग्रन्थों के आधार पर वर्गीकरण

महाभारत के अनुसार सर्व–प्रथम वर्गीकरण में दो भाग बतलाये गये हैं। प्रथम घोष और द्वितीय ब्रज है। ये सबसे छोटे प्रकार के ग्राम कहे जा सकते हैं। इनमें अधिकांश रूप से चरवाहे रहा करते हैं। मालूम होता है शायद घोषी शब्द की व्युत्पति इसी घोष शब्द से हुई हो। घोषी

पशु–पालक और दूध घी का व्यापार करने वालों को कहा जाता है। दूसरे प्रकार के ग्राम पल्ली होते थे। ये छोटे–छोटे पूरबों के समान होते थे। एक दूसरे प्रकार के ग्राम होते थे जिन्हें दुर्ग कहते थे। दूसरे प्रकार के गांव ग्राम कहे जाते थे।

डॉ0 श्यामाचरण दूबे का वर्गीकरण

डॉ0 श्यामाचरण दूबे ने ग्रामों के वर्गीकरण के लिये कुछ कसौटियां प्रस्तुत की हैं जो निम्न प्रकार से हैंः–

(अ) आकार, जनसंख्या और भूमि का क्षेत्रफल।

(ब) प्रजाति तत्व और जातियां।

(स) भूमि के स्वामित्व का प्रतिमान।

(द) अधिकार और सत्ता का ढांचा।

(य) पृथकता का अंश।

(र) स्थानीय परम्परायें।

सामाजशास्त्रियों तथा मानव–शास्त्रियों ने उत्तरी एवं मध्यभारत में ग्रामों को आकार एवं जनसंख्या के आधार पर विविध भागों में वर्गीकृत किया है। सबसे छोटी आबादी को खेड़ा और हेमलेट कहते हैं। कुछ भागों में इसे पूरवा भी कहा जाता है। छोटे–छोटे ग्रामों को गांव कहते हैं। दक्षिण भारत में इन्हें गुम्पू, माजरा और ग्राम कहते हैं।

- **हैरोल्ड पीक का वर्गीकरण**

पीक ने ग्रामों का वर्गीकरण उनके स्थायीत्व के आधार पर किया है। सैन्डरसन का यह मौलिक वर्गीकरण है। पीक ने इसी का विवरण दिया है। उसने पहले प्रकार के ग्रामों को प्रवासी कृषक ग्राम कहा है। ये लोग अर्थ खानाबदोश होते हैं। कुछ महीनों के लिये एक स्थान पर रहते हैं फिर दूसरे स्थान के लिये प्रस्थान कर देते हैं दूसरे प्रकार के ग्रामों को उसने अर्ध–स्थायी कृषक ग्राम कहा है। इन ग्रामों पर लोग 10,15 साल रहते हैं और फिर नये स्थानों पर चले जाते हैं। तीसरे प्रकार के ग्राम स्थायी कृषक आबादी कहा है। वास्तव में देखा जाये तो तीसरे प्रकार का ग्राम ही वास्तविक ग्राम समुदाय होते हैं।

- **मैटजन का वर्गीकरण**

मैटजन ने ग्रामों को दो वर्गों में वर्गीकृत किया है। पहले प्रकार के ग्राम वे हैं जो केन्द्रित ग्राम है। ये ग्राम घने बसे हुए हैं और किसान प्रायः एक स्थान पर ही रहते हैं। दूसरे प्रकार के कुछ ऐसे ग्राम भी हैं और किसान प्रायः एक स्थान पर ही रहते हैं। दूसरे प्रकार के कुछ ऐसे ग्राम भी हैं जिनमें कृषक दूर–दूर रहते हैं। इन्हें बिखरी हुई आबादी कहा है। इन्हें "Dispersed Villages" भी कहते हैं।

- **सारोकिन, जिमरमैन तथा गाल्पिन का वर्गीकरण**

सारोकिन तथा सहयोगियों ने ग्राम की भूमि के स्वामित्व के आधार पर वर्गीकृत किया है। उनके अनुसार ग्रामों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता हैः–

(अ) वह ग्राम जो किसानों के संयुक्त स्वामित्व का हो।

(ब) वह ग्राम जो संयुक्त आसामी या पट्टेदार किसानों का हो।

(स) वह ग्राम जो व्यक्तिगत स्वामित्व वाले किसानों का हो परन्तु कुछ पट्टेदार एवं मजदूर भी रहते हैं।

(द) वह ग्राम जो व्यक्तिगत प्रकार के पट्टेदार किसानों का ग्राम हो।

(य) यह ग्राम जो एक बड़े गैर सरकारी जमीदार के कर्मचारियों से बसा हो।

(र) वह ग्राम जो एक राज्य, धार्मिक संस्था नगर या सार्वजनिक जमींदारी के कर्मचारियों एवं मजदूरों के द्वारा बसा हो।

भिन्न–भिन्न देशों में ग्रामीण समुदायों का वर्गीकरण उनकी जनसंख्या, बनावट तथा भूमि के आधार पर भिन्न–भिन्न प्रकार से किया गया है। भारत में आज भी उपरोक्त वर्गीकरणों के अलावा भी कुछ लेखकों ने और भी वर्गीकरण बतलायें हैं और जिनकी यहां चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है।

4.13 भारत में ग्रामों के व्यवस्थित वर्गीकरण की आवश्यकता

इस प्रकार हम देखते हैं कि विभिन्न मानकों के आधार पर गांवों के प्रकारों का उल्लेख किया गया है। भारतीय गांवों का व्यवस्थित वर्गीकरण तथा उनके इतिहास का अध्ययन करके हम ग्राम समुदायों के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। इससे यह भी स्पष्ट होगा कि भारतीय गांवों में प्रचलित विभन्न प्रकार की संस्थाओं का उदय कब और कैसे हुआ। भारतीय ग्रामों के व्यवस्थित अध्ययन से **देसाई** के अनुसार तीन तथ्यों की जानकारी प्राप्त होगीः–

(अ) उन नियमों का पता चलेगा जिनके आधार पर भारतीय ग्राम समुदायों का उदय और विकास हुआ है। इससे इतिहासकारों व समाजशास्त्रियों को भारतीय समाज के विशिष्ट विकास के नियमों का पता लगाने में सहायता मिलेगी।

(ब) भारतीय सभ्यता के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का पता चलेगा।

(स) ग्रामों में कार्य करने वालों को ग्रामीण पुनर्निर्माण के वैज्ञानिक कार्यक्रम के आयोजन में सहायता मिल सकेगी।

4.14 ग्रामों का महत्व

कोई भी देश ऐसा नहीं हैं जहां ग्रामीण समुदाय नहीं हो। प्रत्येक देश में कृषि कार्य ग्रामीणों द्वारा ही किया जाता है। ग्राम ही वहां की संस्कृति का आधार है। सांस्कृतिक परिवर्तनों एवं विकास की जानकारी करने के लिये ग्रामीण समुदायों का अध्ययन करना आवश्यक होता है। वे ही उद्योगों के लिये कच्चे माल का उत्पादन करते हैं। भारत जैसे देश में, जहां अधिकांश जनसंख्या ग्रामीण हैं, गांवों का महत्व और भी अधिक है। ग्रामीण समुदायों के महत्व को हम अग्रांकित शीर्षकों में प्रकट कर सकते हैंः–

1. अधिकांश जनसंख्या का निवास– भारत की लगभग 69 प्रतिशत जनसंख्या ग्रामों में निवास करती है और इन गांवों की संख्या काफी है। इसकी तुलना में नगरों की जनसंख्या केवल 31 प्रतिशत ही है। अतः ग्राम ही वास्तविक भारत का प्रतिनिधित्व करते हैं। वे ही भारतीय सभ्यता और संस्कृति की आत्मा है।

2. संस्कृति का आधार स्थल– यदि हमें भारतीय संस्कृति का अवलोकन करना है तो ग्रामों की ओर जाना होगा। ग्रामों में ही हमें वैदिक संस्कृति से लेकर मध्यकालीन संस्कृति के दर्शन होंगे। नगरीय संस्कृति तो विभिन्न संस्कृतियों का मिश्रण मात्र हैं, किन्तु ग्रामीण संस्कृति भारतीय संस्कृति का शुद्ध रूप है। यदि हम प्राचीन कला, धर्म, प्रथाओं, रीति–रिवाजों, रूढ़ियों, विश्वासों का अध्ययन करना चाहें तो हमें गांवों का अध्ययन करना होगा।

3. आर्थिक महत्व– गांवों का प्रत्येक देश के लिये आर्थिक महत्व है। वे उत्पादन के प्रमुख स्त्रोत हैं। ग्राम ही सारे देश के लिये अन्न पैदा करते हैं। हमारी अन्न समस्या का प्रमुख कारण गांवों का पिछड़ापन और कृषि के उत्पादन के परम्परागत तरीकों का अपनाया जाना है। अन्न समस्या के समाधान के लिये ग्रामीण कृषि–व्यवस्था की उन्नति करनी होगी और इसके लिये आधुनिक वैज्ञानिक साधनों, बीज एवं खाद का उन्हें ज्ञान करना होगा। गांव की हमारे कच्चे माल के स्त्रोत हैं। उद्योगों के लिये कपास, जूट, तिलहन, गन्ना आदि गांवों में ही पैदा होता है। पशुपालन का कार्य भी गांवों में ही अधिक होता है। वे ही शहरों को दूध एवं घी प्रदान करते हैं। कृषि से ही विदेशों में जाने वाला आधार माल प्राप्त होता है। देश की आय का लगभग आधा भाग कृषि और उससे सम्बन्धित व्यवसायों से ही प्राप्त होता है।

4. श्रम का स्त्रोत– ग्राम श्रम–शक्ति का मूल स्त्रोत है। विभिन्न उद्योगों में काम करने को लिये नगरों में ग्रामीण लोग ही लगे हुए हैं। अनेक निर्माणकारी योजनाओं का क्रियान्वन ग्रामीण मजदूरों के सहयोग से ही हुआ है और हो रहा है। बड़े–बड़े कारखाने और बांध, भवन–निर्माण आदि में ग्रामीणों का श्रमिकों के रूप में महत्वपूर्ण योगदान है। रेलवे, बन्दरगाह, चाय के बागान, खानों और कारखानों में ग्रामीण लोग ही श्रमिाकों के रूप में कार्य करते हैं। ग्रामीण श्रमिक ही हमारी अर्थव्यवस्था की रीढ़ हैं।

5. मानवीय शक्ति का स्त्रोत– ग्राम ही मानवीय शक्ति के स्रोत है। हमारी सेना में काम करने वाले सिपाहियों में अधिकांश लोग गांवों के ही निवासी हैं। जहां शहरी लोग बौद्धिक कार्यों में संलग्न हैं वहीं ग्रामीण लोग शारीरिक शक्ति के कार्यों में संलग्न हैं। ग्रामीण लोग ही राष्ट्र की मानवीय शक्ति में वृद्धि करते हैं। प्राकृतिक और स्वच्छ वातावरण में रहने के कारण वे निरोग, शक्तिशाली और हष्टपुष्ट होते हैं।

इस प्रकार ग्रामीण समुदाय का किसी भी देश के जीवन और अस्तित्व के लिये महत्वपूर्ण योगदान है।

4.15 ग्रामीण समुदायों के विघटन के कारण

पहले से ही भारत को एक विशाल शक्तिशाली गणराज्य कहा जाता रहा है। भारतीय ग्रामीण समाज सुसंगठित समुदाय था परन्तु आज जब संसार प्रगति की ओर बढ़ रहा है। भारतीय ग्रामीण समाज विघटित होता प्रतीत होता है।

भारत में ग्रामों की अधिकता है इस कारण वश ग्रामीण समुदाय को संगठित रखना अत्यधिक आवश्यक है। कुछ आधुनिक प्रभावों के कारण ग्रामीण समुदाय विघटन की ओर जा रहे हैं। उन्हीं कारणों को समझना एक ग्रामीण शास्त्री के लिये अत्याधिक आवश्यक है। अब हम उनका निम्न पंक्तियों में वर्णन करेंगे।

- **औद्योगीकरण.**

भारतीय ग्रामीण समुदाय को विघटित करने में औद्योगिकरण का विशेष महत्व रहा है। आज उद्योग का समय है संस्कार इसी के आधार पर प्रगति की ओर बढ़ रहा है। किन्तु भारतीय ग्रामीण समाज पर इसका अत्यधिक प्रभाव पड़ा है उनकी आर्थिक व्यवस्था को इससे गहरी चोट पहुंची है आर्थिक व्यवस्था का ढांचा बिल्कुल परिवर्तित हो चुका है जबकि उसी को आधार बनाये हुए समाज टिका रह सकता है। भारतीय ग्राम आत्मनिर्भर थे, यहां पर गृह उद्योग बहुतायत से पाये जाते थे जो अनगिन गृह उद्योगों के केन्द्र थे और पर्याप्त मात्रा में उत्पादन भी करते थे। परन्तु पाश्चात्य प्रभाव आने के कारण उद्योग नगरों में स्थापित होने लगे ग्रामीण सामाजिक ढांचा तितर बितर होने लगा। ग्रामों की आत्मनिर्भरता न रह सकी उदाहणार्थ – ग्रामों की जजमानी व्यवस्था पर इसका प्रभाव पड़ा और वह व्यवस्था लगभग समाप्त सी ही हो गयी है।

औद्योगीकरण ने गांवों की आत्म निर्भरता को समाप्त कर दिया एवं ग्रामीण जनसंख्या नगर की ओर बढ़ने लगी। लोग नौकरी की खोज में वहां जाने लगे, इससे ग्रामीण समुदाय निर्बल होने लगा।

- **नगरीकरण**– भारतीय समाज पर नगरीकरण का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा है नागरिक रीति रिवाज और रहन सहन विचारधारा ने नये ग्रामीण समाज को निर्धारित किया है। गफ ने बड़े ही सुन्दर शब्दों में कहा है ''कुम्बपिथई में एक शिक्षित कुलीनतन्त्र का नगरों की ओर उत्तरोत्तर रूझाान' नगर के मध्य वर्गीय व्यापारी परिवारों को भूमि हस्तान्तरण एक छोटा स्वासत श्रमिक वर्ग समूह जोकि श्रम के नागरिक स्वरूपों से संरक्षित होता है इस प्रक्रिया को प्रारम्भ कर चुके हैं और इसके निरन्तर रहने की आशा की जा सकती है जब तक कि ग्राम अपना परम्परागत एकीकरण न गवां दे और पड़ौसी भाव भी एक इकाई से थोड़ा अधिक न बन जाये।''

- **अन्य कारण**

बहुत से अन्य कारण भी ग्रामीण समुदाय को विघटित कर रहे हैं। आधुनिक शिक्षा एवं पाश्चात्य सभ्यता भी उन्हीं में से है।

''परिवर्तन ग्राम के बाह्य वातावरण में परिवर्तन उत्पादन कारकों की परस्पर क्रिया द्वारा नेमहली से प्रताड़ित होता है।''

परिवर्तन अत्यधिक शीघ्र हो रहा है। दिन प्रतिदिन ग्रामीण समाज नगरों पर आर्थिक राजनैतिक सांस्कृतिक एवं अन्य घरेलू पहलुओं पर आश्रित होता जा रहा है नगरों से लोगों को सम्पर्क रखना पड़ता है क्योंकि कुछ को वहां से नौकरी आदि मिलती है। नागरिक जीवन से लोग प्रभावित हो रहे हैं। उनके व्यवहार पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

बिल्स ने उचित ही लिखा हैः–

''ग्राम अधिकांशतः नगर का ही एक भाग बन चुके हैं।''

- **पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव**

पाश्चात्य सभ्यता का ग्रामीण समाज पर जो प्रभाव पड़ा है उससे संयुक्त परिवार विघटन की ओर बढ़ता जा रहा है। सहयोग की भावना दिन प्रतिदिन समाप्त होती जा रही है। जाति

पंचायतों ने सभी ग्रामीण समाज को अब तक संगठित कर रखा था किन्तु जाति के विलीनीकरण से सभी भावनायें समाप्त होती जा रही हैं। जितने भी जातिगत कार्य थे वह सभी प्रायः समाप्त हो गये हैं। इस प्रकार की जाति पंचायतों को गैर कानूनी घोषित कर सामाजिक संगठन को समाप्त कर दिया है। फिर भी इनकी महत्ता अभी कम नहीं हुई है।

डॉ0 श्रीनिवास ने लिखा है–

''वे आज भी शक्तिशाली संगठन है यद्यपि अंग्रेजों द्वारा पारित अधिनियम उनको लगभग तोड़ चुके हैं। उदाहरण के लिये एक व्यक्ति जो कि जाति पंचायत से बहिस्कृत हो चुका है, मानहानि के लिये कानून की अदालत में इसपर अभियोग चलाया जा सकता है।''

पाश्चात्य सभ्यता ने पुरानी समाजिक संस्थाओं को भी विघटित कर दिया।

नई अर्थव्यवस्था

पुराने समय में मुद्रा का अधिक महत्व नहीं था और लोगों को एक दूसरे पर ही आश्रय लेना पड़ता था परन्तु नई आर्थिक व्यवस्था ने मुद्रा के महत्व को बढ़ा दिया तब से मिल मालिक और मजदूर के बीच समझौते सम्बन्ध स्थापित कर दिये जिसके कारण समाज निरन्तर विघटित हो रहा है। इसी कारण ग्रामीण का नगर से अधिक सम्बन्ध रहने लगा और जीवन ही परिवर्तित हो गया।

नये कानून

देश में नये कानूनों के पास होने के कारण ग्रामीण समाज पर सबसे अधिक प्रभाव पड़ा। भूमि का वितरण हो रहा है और एक निश्चित सीमा से अधिक भूमि ग्रामीण नहीं रख सकते। जमींदारी समाप्त होने का भी विशेष प्रभाव हुआ है।

राजनैतिक पर्यावरण

ग्रामों में भी आजकल राजनैतिक दल पाये जाने लगे हैं और इसके कारण ग्रामीण एकता लगभग छिन्न भिन्न हो गयी है।

''प्रत्येक राजनैतिक नेता और प्रत्येक पदाधिकारी जो कि ग्रामीण लोगों के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आता है ग्राम में आता है। ग्राम में दलगत राजनीतिक के बारे में शिकायत करता है। प्रत्येक ग्राम गुटों में बटा है और प्रत्येक गुट की प्रधानता एक नेता द्वारा होती है ये गुट ही ग्राम की एक इकाई के रूप में काम करने से रोक रहे हैं।''

ग्राम पंचायतों के चुनाव के कारण और भी अनेक मतभेद ग्रामों में हो गये हैं।

इन अनेक कारणों के फलस्वरूप ग्रामीण समाज विघटित हो रहा है।

4.16 अभ्यास प्रश्न

1. 'एक समुदाय एक सामाजिक समूह है जो एक निश्चित क्षेत्र में निवास करता है और जिसमें हम की भावना होती है'' यह कथन किसका है–

अ) बोगार्डस ब) किंग्सले डेविस

स) मैकाईवर एवं पेज द) उपरोक्त में से कोई नहीं

2. निश्चित भू–भाग आवश्यक तत्व है–

अ) समिति का ब) संस्था का

स) समुदाय का द) उपरोक्त सभी।

3. डॉ0 एस0सी0 दूबे ने गांवों के वर्गीकरण के कितने प्रकार बताए है–

अ) 4 ब) 6 स) 5 द) 8

4. डॉ0 एच0जे0 पीक ने गांवों को कितने भांगों में बांटा है–

अ) 2 ब) 3 स) 4 द) 6

5. 'ग्रामीण' शब्द की व्याख्या करने के लिये पॉल एच0 लैण्डिस ने किन बातों को विशेष महत्व दियाः

अ) प्रकृति पर प्रत्यक्ष निर्भरता ब) सीमित आकार

स) घनिष्ठ और प्राथमिक सम्बन्ध द) उपरोक्त सभी

6. ग्रामीण समुदाय की विशेषता है–

अ) जीवन यापन प्रकृति पर निर्भर ब) कम जनसंख्या

स) समरूपता द) उपरोक्त सभी

7. जजमानी प्रथा विशेषता है–

अ) नगरीय समुदाय की ब) ग्रामीण समुदाय की

स) उपरोक्त दोनों द) उपरोक्त में से कोई नहीं।

8. 'द सोशल स्ट्रक्चर ऑफ ए मैसूर विलेज' किसकी पुस्तक है–

अ) एम0एन0 श्रीनिवास ब) बी0आर0 चौहान

स) मजूमदार द) ऑस्कर लेविस

9. किस दृष्टिकोण से गांव को एक इकाई माना गया है–

अ) सामाजिक दृष्टिकोण से ब) भौगोलिक दृष्टिकोण है

स) आर्थिक एवं राजनैतिक दृष्टकोण से द) उपरोक्त सभी।

10. 'गांव को एक जीवन विधि, एक अवधारणा के रूप में किस विद्वान ने परिभाषित किया है–

अ) एम0 एन0 श्रीनिवास ब) मजूमदार

स) ऑस्कर लेविस द) बी0आर0 चौहान

11. 'रूरल सोश्योलोजी इन इण्डिया' किसकी कृति है–

अ) ए0आर0 देसाई ब) मजूमदार

स) एम0एन0 श्रीनिवास द) एस0सी0 दूबे

12. भारतीय ग्रामीण समुदाय के विघटन के कारण है–
अ) औद्योगीकरण ब) नगरीकरण
स) राजनैतिक पर्यावरण द) उपरोक्त सभी
13. 'ग्राम' तथा 'घोष' का उल्लेख मिलता है–
अ) धर्म ग्रन्थों के आधार पर ब) स्थानीय परम्परा के आधार पर
स) प्रजातीय तत्व और जातियों के आधार पर द) उपरोक्त सभी।
14. रैयतवाड़ी ग्राम एवं संयुक्त ग्राम का वर्गीकरण किया है–
अ) इरावती कर्वे ने ब) एस0के0 पीक ने
स) एस0 दूबे ने द) बेडन पावेल ने।
15. एम0एन0 श्रीनिवास ने 'सामुदायिक एकता' के अध्ययन के लिये किस गांव को अध्ययन क्षेत्र बनाया–
अ) राणावती की सादड़ी ब) रामपुरा
स) किशनगढ़ी द) श्रीपुरम
16. ''ग्रामीण समुदायों के अन्तर्गत संस्थाओं और ऐसे व्यक्तियों का संकलन होता है जो छोटे से केन्द्र के चारों और संगठित होते हैं तथा सामान्य प्राकृतिक हितों में भाग लेते हैं।'' यह कथन किसका है–
अ) सेण्डरसन ब) सिम्स स) मैरिल और एलरिज द) लैण्डिस
17. ग्रामों में नियन्त्रण के साधन होते हैं–
अ) औपचारिक ब) अनौपचारिक स) दोनों द) दोनों में से कोई नहीं।
18. ग्रामीण समुदाय में होने वाले परिवर्तन है–
अ) संयुक्त परिवारों का विघटन ब) नयी अर्थव्यवस्था का उदय
स) द्वैतीयक सम्बन्धों में वृद्धि द) उपरोक्त सभी
19. ग्रामीण उत्थान एंव विकास हुआ है–
अ) पंचवर्षीय योजनाओं से ब) सामुदायिक विकास योजनाओं से
स) समन्वित विकास कार्यक्रम से द) उपरोक्त सभी।
20. भारतीय ग्रामीण समुदायों को छोटे गणराज्य किसने कहा है–
अ) चार्ल्स मैटकाफ ब) राधाकमल मुखर्जी
स) ऑस्कर लेविस द) मजमूदार

4.17 सारांश

ग्रामीण समुदाय एक विशिष्ट एवं लघु स्वतन्त्र इकाई है। भारतीय ग्रामीण पर्यावरण इस बात की साक्षी देता है कि ग्राम सदैव आत्मनिर्भर, सीमित एवं स्थायी समुदाय रहे हैं जहां पर सामान्य सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक प्रतिमान व्यक्ति में सामुदायिक भावना और सहयोगी प्रकृति को जन्म देते हैं। शिक्षा और नवीनता के प्रभाव की न्यूनता ग्रामीण समुदायों की रूढ़िवादिता को प्रदर्शित करती है देवी देवताओं और प्राकृतिक शक्तियों में विश्वास अन्धविश्वास के द्योतक हैं। यही भारतीय ग्रामीण समुदाय की विशेषता है यद्यपि वास्तव में भारतीय ग्रामीण समुदाय संक्रमण के काल से निकल रहा है। इस प्रकार की स्थिति में अनेक प्रकार के अच्छे और खराब परिवर्तन गांवों में देखे जा सकते हैं। किन्तु विज्ञान और शिक्षा के विकास से ग्रामीण समुदाय में रचनात्मक परिवर्तन अधिक आयेंगे जो अन्नतः मानव समाज का निर्माण करेंगे।

4.18 शब्दावली

ग्रामीणता– किसी समुदाय अथवा क्षेत्र में ग्रामीण होने के लक्षणों की मात्रा का विद्यमानता उसकी ग्रामीणता की द्योतक है।

ग्राम्यीकरण– ग्रामीण मनोभावों, दृष्टिकोणों एवं चलनों को नगरीय व्यवहार के अंग बनाने की प्रक्रिया ग्राम्यीकरण कहलाती हे।

सामुदायिक विकास– इस अवधारणा की रचना दो शब्दों यथा समुदाय तथा विकास से मिलकर हुई है। साधारणतः 'समुदाय' शब्द का प्रयोग किसी भी ऐसे मानव–समूह के लिये किया जाता है जो किसी एक भौगोलिक क्षेत्र में रहता हो और जिसमें ''हम की भावना'' पाई जाती है। ''विकास'' शब्द का प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया अथवा स्थिति के लिये किया जाता है जिसमें व्यक्ति अथवा समूह अपनी अर्न्तनिहित क्षमता, शक्ति तथा उपलब्ध साधनों द्वारा जो सामूहिक प्रयास किये जाते हैं, उन्हें ''सामुदायिक विकास'' कहा जाता है।

4.19 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. A, 2. C, 3. B, 4. B, 5. D, 6. D, 7. B, 8. A, 9. D, 10. B, 11. A, 12. D, 13. A, 14. D, 15. B, 16. C, 17. B, 18. D, 19. D, 20. A.

4.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

विश्वमित्र (1988) ग्रामीण समाजशास्त्र, केदारनाथ रामनाथ प्रकाशक पेज नं0– 124–217

गुप्ता एवं शर्मा भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स, पेज नं0 35–53

डॉ0 एम0 एम0 लावनिया, शशी के0 जैन, ग्रामीण समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, पेज नं0 27–36

4.21 सहायक उपयोगी पाठ्यक्रम

ए0आर0 देसाई – भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र

ब्रजराज चौहान 1989 – ग्रामीण भारत

एम0 एन0 श्रीनिवास – इण्डियाज विलेज

4.22 निबन्धात्मक प्रश्न

1. ग्रामीण समुदाय से क्या तात्पर्य है। ग्रामीण समुदाय की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. क्या भारतीय गांव एक इकाई है। सतर्क उत्तर दीजिए।
3. गांवों का वर्गीकरण कीजिए एवं भारत में गांवों के व्यवस्थित वर्गीकरण की आवश्यकता बताइये।
4. भारत में गांवों के महत्व का उल्लेख कीजिए।
5. ''गांव एक जीवन विधि है।'' स्पष्ट कीजिए।

इकाई–5 : लघु समुदाय, कृषक समाज और लोक संस्कृति
Little Community,Peasant Society & Folk Culture

इकाई की रूपरेखा

5.1 उद्देश्य
5.2 प्रस्तावना
5.3 लघु समुदाय
- अवधारणा
- अर्थ एवं परिभाषा
- लघु समुदाय की विशेषताएं
- लघु समुदायों की अध्ययन विधि
- लघु समुदाय की अवधारणा भारतीय सन्दर्भ में
- लघु समुदाय के अध्ययन का महत्व

5.4 कृषक समाज (अवधारणा)
- कृषक समाज का अर्थ एवं परिभाषा
- कृषक समाज की विशेषताएं
- भारत में कृषक समाज की अवधारणा
- कृषक समाज तथा लघु समुदाय में अन्तर

5.5 लोक संस्कृति (अवधारणा)
- लोक संस्कृति का अर्थ
- लोक संस्कृति की विशेषताएं
- लोक संस्कृति : एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण
- लोक संस्कृति में परिवर्तन

5.6 अभ्यास प्रश्न
5.7 सारांश
5.8 शब्दावली
5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
5.11 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे कि:–

- लघु समुदाय, कृषक समाज और लोक संस्कृति क्या है।
- भारतीय ग्रामीण समाज में लघु समुदाय, कृषक समाज तथा लोक संस्कृति का कितना महत्व है।

- लघु समुदाय और कृषक समाज में क्या अन्तर है।
- गांवों में होने वाले परिवर्तनों से लोक संस्कृति कितनी प्रभावित हुई है।

5.2 प्रस्तावना

मनुष्य इतिहास के प्रारम्भ से ही विभिन्न समुदायों में रहता आया है। अनेक समाजशास्त्रियों एवं नेतृत्व शास्त्रियों ने 'ग्रामीण समुदाय' के अनेक व्यापक एवं विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। इन अध्ययनों से आज हमें अनेक ऐसी प्राथमिक अवधारणायें प्राप्त हुई हैं, जो ग्रामीण समुदाय की प्रकृति एवं स्वरूप को समझने में अत्यन्त सहायक एवं महत्वपूर्ण हैं। लघु समुदाय कृषक समाज एवं लोक संस्कृति ऐसी ही प्राथमिक अवधारणाएं हैं।

5.3 लघु समुदाय (अवधारणा)

मनुष्य जाति के सम्पूर्ण इतिहास में 'लघु समुदायों' (Little Communities) का विशेष महत्व रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि मानव प्रारम्भ से ही अधिकांशतः इन्हीं समुदायों में निवास करते रहे हैं, ये मानव के निवास के प्रमुख स्वरूप रहे हैं। नगरों की उत्पत्ति तो पिछले कुछ हजार वर्षों में हुई है जबकि गांव तो काफी पुराने समय से चले आ रहे हैं। जहां कहीं मनुष्य इकट्ठे रहने लगे, वहां गांव बस गये। मानव जाति का करीब दो–तिहाई भाग आज भी गांवों में रहता है। इससे स्पष्ट है कि विश्व के अधिकांश मुनष्यों के जीवन में लघु समुदायों का अब भी कितना महत्व है। मानवशास्त्रियों ने अपना अधिकतर क्षेत्रीय–कार्य (Field-work) लघु समुदायों में ही किया है। आज भी आनुभाविक समाजशास्त्र अपनी अध्ययन–सामग्री प्रमुखतः ग्रामों, छोटे कस्बों तथा नगरीय पड़ोस के सर्वेक्षणों के माध्यम से ही प्राप्त करता है। मैक्सिकों, चीन, जापान, भारत तथा विश्व के अनेक अन्य भागों में लघु समुदायों के कई अध्ययन समय–समय पर हुए हैं।

अर्थ एवं परिभाषा

लघु समुदाय की अवधारणा राबर्ट रेडफील्ड की देन है। आपकी पुस्तक का नाम (The Little Community) है जिसमें उन्होंने उल्लेख किया है **''लघु समुदाय मानवता के समस्त इतिहास में मानव जीवन का सबसे प्रबल स्वरूप है।''** लघु समुदाय, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, एक छोटा समुदाय है जिससे सामुदायिक जीवन की लगभग समस्त विशेषताएं पाई जाती हैं। भारतीय गांव लघु समुदाय के उदाहरण हैं। लघु समुदाय के ठीक विपरीत महानगरों के समुदाय हैं जिन्हें बड़े अथवा दीर्घ समुदाय की संज्ञा दी जाती है। इनमें लघु समुदाय की भांति न तो सामुदायिक संगठन होता है और न समुदाय की समस्त विशेषताएं पायी जाती है क्योंकि महानगर वे दीर्घ समुदाय है जिसमें संस्कृतियां के पुंज विद्यमान है। ये विविधताओं के केन्द्र जिसमें समानतायें कम और असमानतायें अधिक हैं। भारत जैसे कृषि–प्रधान देश में लघु समुदाय का अपना महत्व है। ग्रामीण समाज जो लघु समुदायों में विभाजित हैं जिसकी अपनी पहचान समान धर्म, प्रथाओं और परम्पराओं से आंकी जाती है। ये ग्रामीण समाज में अपना विशिष्ट स्थान और महत्व रखते हैं। **राबर्ट रेडफील्ड** ने लघु समुदाय के लिये लिखा है **''लघु समुदाय इन प्रचलित और स्पष्ट स्वरूपों का दूसरा रूप है जिसमें मानवता सरलता से**

हमारे सम्मुख प्रकट हाती है। विश्व के समस्त भागों में और समस्त मानव इतिहास में सदैव लघु समुदाय विद्यमान रहे हैं।''

लघु समुदाय की विशेषताएं

1. विशिष्टता –

लघु समुदाय की अपनी एक विशिष्टता होती है। इसका आशय है कि इस लघु समुदाय के सदस्य यह जानते हैं कि उनका समुदाय कहां प्रारम्भ होता है और कहां समाप्त होता है। इस समुदाय के सदस्य में 'हम की भावना' (We Feeling) और 'सामूहिक चेतना' (Collective Consciousness) पाई जाती है। लघु समुदाय के सदस्य जानते हैं कि अपने गांव की सीमा कहां तक है एवं निकट के गांव की सीमा कहां मिलती है। लघु समुदाय इस दृष्टि से भी विशिष्टता लिये हुए होता है। गांव में यह निश्चित होता है कि विभिन्न जातियों के आवास–स्थान, खेत–खलिहान, जानवरों के रहने के स्थान, चरागाह आदि का स्थान सभी पूर्णतः सुनिश्चित होता है। ऐसे समुदाय में इनके सदस्य इन विशिष्टताओं को अपने जीवन के लिये अनिवार्य ही नहीं समझते, बल्कि इन्हें अपनी परम्परा का अनिवार्य अंग मानते हैं। इसके परिणामस्वरूप लघु समुदायों के सदस्यों में एक ऐसा व्यक्तित्व विकसित हो जाता है, जो उन्हें अन्य समुदायों के सदस्यों से पृथक् कर देता है। प्रत्येक लघु समुदाय में उससे सम्बन्धित देवी–देवताओं एवं धार्मिक अनुष्ठान भी गांव को विशिष्टता प्रदान करने में योग देते हैं। इस प्रकार विशिष्टता प्रत्येक प्रकार के लघु समुदायों की पहली महत्वपूर्ण विशेषता है।

2- लघुता –

लघु समुदाय का आकार इतना छोटा होता है कि वह व्यक्तिगत रूप से अवलोकन (Observation) की इकाई हो सकता है। आकार की सीमितता के कारण इसके सदस्य एक दूसरे को साथ प्रत्यक्ष (Direct) एवं प्राथमिकता सम्बन्ध बनाए रख सकते हैं। लघु समुदाय में इसी लघुता के कारण प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे को व्यक्तिगत रूप से जानता है तथा अपने लिये घनिष्ठ सम्बन्धों को अनिवार्य मानता है। जब समुदाय का आकार इतना बड़ा हो जाये कि वह सदस्यों के लिये व्यक्तिगत एवं प्राथमिक सम्बन्ध अधिक समय तक बनाये रखना सम्भव नहीं हो, तब वह समुदाय 'लघु समुदाय' नहीं रह जाता। आकार की दृष्टि से ही अनेक भारतीय ग्रामों को 'लघु समुदाय' माना जा सकता है।

3- समरूपता –

इन समुदायों की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता समरूपता (Homogeneity) या सामंजस्य है। उनके अनुसार, ''इसमें समान लिंग तथा आयु के समस्त मुनष्यों के क्रियाकलाप तथा मनःस्थितियां एक–सी होती हैं तथा एक सन्तति की जीवन–वृत्ति पूर्व की सन्तति की आवृत्ति मात्र है। इस दृष्टि से समरूपता 'मन्द परिवर्तनशील' का पर्याय हो जाता है।'' इस प्रकार लघु समुदाय के सदस्यों में रहन–सहन, खान–पान, भाषा, वेशभूषा, तिथि–त्यौहार, प्रथा–परम्परा, आचार–विचार, विश्वास, धर्म, संस्कृति आदि में मोटे तौर पर समानता या समरूपता पाई जाती है। इसका आशय यह नहीं है कि लघु समुदाय के सदस्यों में किसी प्रकार के कोई अन्तर नहीं

पाये जाते, उनमें अन्तर अवश्य पाये जाते हैं, फिर भी जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित समरूपता उनमें दिखाई देती है। यह समरूपता सदस्यों में 'सामूहिक चेतना' को प्रबल बनाने और उन्हें दृढ़ पारस्परिक सम्बन्धों में बंधने के लिये प्रोत्साहित करती है। व्यवहारों की यह समरूपता एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है।

4. आत्म–निर्भरता–

लघु समुदाय प्रायः आत्म–निर्भर होते हैं। इन लघु समुदायों में मनुष्य अपने जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। सदस्यों के क्रिया–कलापों और आवश्यकताओं की पूर्ति इसी समुदाय में होती है। लघु समुदायों में एक व्यक्ति अपने जन्म से लेकर मृत्यु तक का सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। इस प्रकार ''लघु समुदाय जन्म से मृत्यु तक का प्रबन्ध है।''

गांव के लोग अपनी आवश्कताओं की पूर्ति गांव में ही कर लेते हैं। इस दृष्टि से अधिकांश भारतीय ग्रामों को 'लघु समुदाय' कहा जाना चाहिए, लेकिन वर्तमान में अनेक परिवर्तन हो जाने के कारण भारत के अधिकांश गांव अब आत्म–निर्भर नहीं रहे हैं। अतः अब उन्हें 'लघु समुदाय' कहना न्यायोचित नही होगा। इसके विपरीत डॉ0 एम0एन0 श्रीनिवास का मानना है कि ''आज भी अधिकांश ग्राम आत्मनिर्भर हैं और इस प्रकार उन्हें लघु समुदाय ही माना जाना चाहिये।''

इस प्रकार लघु समुदाय के लिये समुदाय ही सब कुछ होता है। वह व्यक्ति अपने समुदाय को पूर्ण रूप से समझता है। रॉबर्ट रेडफील्ड कहते हैं कि ''इससे भी अधिक पृथक् समूह अथवा ग्राम के सदस्यों के लिये समुदाय जीवन का एक क्षेत्र है, एक दुनिया है, जहां पर क्रियाएं तथा संस्थाएं पथ–प्रदर्शन करती हैं ताकि वह ग्राम निवासी के लिये समुदाय, यन्त्रों और प्रथाओं की सूचीमात्र न हो, वह एकीकृत पूर्णता होती है।''

रॉबर्ट रेडफील्ड ने 37 गांवों का अध्ययन कर स्पष्ट किया है कि लघु समुदाय की चारों विशेषताएं सभी गांवों में समान रूप से दृष्टिगोचर नहीं होती है, परन्तु प्रत्येक गांव में ये विशेषताएं भिन्न–भिन्न मात्रा में अवश्य पाई जाती हैं।

लघु समुदाय की इन चारों विशेषताओं का प्रत्येक समुदाय में पाया जाना और वह भी समान मात्रा में पाया जाना अनिवार्य नहीं है। लघु समुदाय एक छोटा समूह होने के कारण अध्ययन के दृष्टिकोण से भी काफी महत्वपूर्ण है।

- **लघु समुदाय की अध्ययन विधियां**

रॉबर्ट रेडफील्ड ने लघु समुदायों के अध्ययन के विभिन्न मार्ग प्रस्तुत किये हैं। उनके अनुसार इस प्रकार के समुदायों का अध्ययन लगभग निम्नांकित दस मार्गों द्वारा किया जा सकता हैः–

1. एक पूर्णता के रूप में।
2. एक भौगोलिक व्यवस्था के रूप में।
3. एक सामाजिक संरचना के रूप में।
4. एक विशिष्ट जीवनी के रूप में।
5. एक प्रकार के व्यक्ति के रूप में।
6. जीवन पर एक विचार के रूप में।
7. एक इतिहास के रूप में।
8. समुदायों के भीतर एक समुदाय के रूप में।

9. विरोधाभासों के जोड़ के रूप में।
10. एवं पूर्णता और उसके भाग के रूप में।

- **लघु समुदाय की अवधारणा भारतीय सन्दर्भ में**

प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय गांव लघु समुदाय हैं? जब हम लघु समुदाय की अवधारणा का अध्ययन और जांच भारतीय सन्दर्भ में करते हैं तो अनेक महत्वपूर्ण बिन्दु उभर कर सामने आते हैं। भारतीय ग्रामों का 'लघु समुदाय' के रूप में अध्ययन करने वालों में मैकिम मेरियट (Mackim Marriot) डी0एन0 मजमूदार, एम0एन0 श्रीनिवास, एस0सी0 दूबे एवं बी0आर0 चौहान के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। भारतीय सन्दर्भ में लघु समुदाय की अवधारणा का अध्ययन करने पर एक सामान्य निष्कर्ष यह प्राप्त होता है कि आकार की दृष्टि से भारतीय गांव अपेक्षाकृत काफी छोटे हैं। इसके सदस्यों के मध्य घनिष्ठ, प्रत्यक्ष एवं प्राथमिक सम्बन्ध पाये जाते हैं। वस्तुतः लघु समुदायों की उपयोगिता हम भारतीय सन्दर्भ में तब तक पूर्ण रूप से नहीं समझ सकते, जब तक कि हम लघु समुदाय की चारों विशेषताओं के सन्दर्भ में भारतीय समाज को न देखें।

1. **विशिष्टता** :–

सबसे पहले हम लघु समुदाय की प्रथम महत्वपूर्ण विशेषता 'विशिष्टता' को देख सकते हैं। भारतीय गांवों में विशिष्टता के आधार पर गांव का प्रत्येक व्यक्ति अपने गांव की संरचना से अवगत होता है। वह जानता है कि गांव की सीमा कहां से प्रारम्भ होती है एवं कहां समाप्त होती है। वे जानते हैं कि जातीय पद–सोपान के अनुसार विभिन्न जातियों के आवास कहां–कहां होंगे। देवी–देवताओं के स्थान, खेत–खलिहान एवं पशुओं के रहने के स्थान से पूरी तरह जागरूक होते हैं। इस प्रकार विशिष्टता के आधार पर अधिकांश भारतीय गांवों को 'लघु समुदाय' माना जा सकता है।

2. **लघुता** –

लघु समुदाय की दूसरी विशेषता 'लघुता' को यदि हम देखें तो यह विशेषता अधिकांश भारतीय गांवों में विद्यमान है।

3. **समरूपता** –

लघु समुदाय की तृतीय विशेषता 'समरूपता' (Homogeneity) का जहां तक प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि कुछ समय पहले तक यह विशेषता भारतीय ग्रामों में अवश्य पाई जाती थी। समान मनोवृत्तियां, धार्मिक कर्मकाण्डों की समानता, व्यवहारों की समरूपता, विभिन्नता में बदलती गयी। आज अनेक प्रकार की असमानता भारतीय ग्रामों में देखी जा सकती है, लेकिन एक तथ्य स्पष्ट है कि इस विशेषता का मूल्यांकन नगरीय समुदाय की तुलना में करेंगे तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि आज भी लघु समुदाय के अनुरूप एक स्पष्ट समरूपता भारतीय ग्रामों में दिखाई देती है।

4. **आत्मनिर्भरता**–

लघु समुदाय की अन्तिम महत्वपूर्ण विशेषता 'आत्म–निर्भरता' है। भारतीय गांवों में इस विशेषता का निरन्तर अभाव होता जा रहा है। जनसंख्या के दृष्टिकोण से आज अधिकांश गांव आत्म–निर्भरता की श्रेणी में नहीं रखे जा सके। अनेक ऋणग्रस्त कृषक एवं भूमिहीन किसान

अपने गांवों को छोड़कर अन्यत्र बस जाते हैं। मजदूरी के लिये अनेक स्थानीय कृषक दूसरी जगह कार्य करने लगे हैं। यही नहीं विवाह, सामाजिक सम्पर्क एवं व्यवसायिक स्वरूप के कारण गांव की सामाजिक संरचना में भी आत्म–निर्भरता नहीं दिखाई देती है। अनेक ग्रामीण अपने धार्मिक विश्वासों को पूरा करने के लिये तीर्थ–यात्राओं पर जाने लगे हैं, अतः धार्मिक एवं संस्कारात्मक दृष्टिकोण से भी भारतीय ग्राम को 'आत्म–निर्भर' नहीं माना जा सकता। अनेक जातियां जो पहले जजमानी प्रथा के अन्तर्गत अपने गांव के सदस्यों को ही सेवायें प्रदान करती थीं, वे अब विवाह, मृत्यु आदि अन्य संस्कारों के अवसर पर दूसरे गांव के लोगों को भी सेवायें प्रदान करने लगी हैं और शेष समय रोजगार के लिये वे किसी कस्बे (Town) या नगर (City) में चली जाती हैं। शिक्षा, चिकित्सा, उपज एवं बिक्री के लिये भी गांव अब शहरों पर आश्रित होने लगे हैं और अपनी आत्म–निर्भरता को छोड़ते जा रहे हैं।

डॉ0 बी0आर0 चौहान ने अपनी कृति 'ए राजस्थान विलेज' में लघु समुदाय के रूप में भारतीय ग्रामों का अध्ययन करते समय इस अवधारणा की सीमाओं पर भी प्रकाश डाला है। आपने बताया है कि अपने परम्परागत पृष्ठभूमि में भी गांव के अन्य गांवों एवं कस्बों के साथ सम्बन्ध पाये जाते रहे हैं। इन सम्बन्धों के अन्तर्गत धार्मिक, आर्थिक, प्रशासकीय, जाति संगठनों एवं नातेदारी के सम्बन्ध आते हैं। वर्तमान में तो विभिन्न ग्रामों के पारस्परिक और ग्रामीण–नगरीय सम्बन्धों की मात्रा काफी बढ़ चुकी है।

डॉ0 चौहान के द्वारा अध्ययन किये गये गांव के उदाहरण से यह स्पष्ट है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में एक लघु समुदाय में रेडफील्ड द्वारा वर्णित ऐसे समुदाय की प्रथम दो विशेषताएं 'लघुता' एवं 'विशिष्टता' तो पाई जाती हैं। तीसरी विशेषता –समरूपता' के सम्बन्ध में अधिक निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह विशेषता भारतीय गांवों में आंशिक रूप से ही पाई जाती है। जहां तक इसकी अन्तिम विशेषता 'आत्म–निर्भरता' का प्रश्न है, यह कहा जा सकता है कि इसका भारतीय गांवों में नितान्त अभाव पाया जाता है।

- **लघु समुदाय के अध्ययन का महत्व**

लघु समुदाय की अवधारणा का महत्व बताते हुए रेडफील्ड कहते हैं कि लघु समुदाय मानव निर्माण की महत्वपूर्ण व्यवस्था रही है। नगरों का उदय तो कुछ हजार वर्ष पूर्व ही हुआ है और आज भी विश्व की तीन–चौथाई जनसंख्या ऐसे लघु समुदायों में ही निवास करती है।

लघु समुदायों की अपनी विशिष्ट विशेषताएं हैं अतः अध्ययन की दृष्टि से इनका महत्व विभिन्न दृष्टिकाणों से इस प्रकार दर्शाया जा सकता हैः–

1. लघु समुदायों में सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन सम्भव है। अतः जहां हमें शत–प्रतिशत सही तथ्यों की आवश्यकता होती है, वहां लघु समुदायों को ही अध्ययन के लिये चुना जाता है।
2. लघु समुदायों के अध्ययन में समय, धन और श्रम भी कम खर्च होता है।
3. लघु समुदायों के अध्ययन से प्राप्त निष्कर्ष एवं नियम वृहत् समुदायों के अध्ययन के लिये भी उपयोगी होते हैं।
4. लघु समुदायों का सहभागिक अध्ययन सम्भव है जिससे विश्वसनीय, प्रमाणिक और यथार्थ जानकारी प्राप्त होती है।
5. लघु समुदायों के अध्ययन में अध्ययनकर्ता को प्राथमिक सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण सूचनाओं के संकलन में सुगमता होती है।

6. लघु समुदायों के अध्ययन से ग्रामीण विकास सम्बन्धी योजनाएं बनाने और उनको क्रियान्वित करने में सहायता मिलती है।

5.4 कृषक समाज (अवधारणा)

रॉबर्ट रैडफील्ड (Robert Redfield) ने कृषक समाज (Peasant Society) की अवधारणा दी। इसके माध्यम से वे ग्रामीण समाज की आन्तरिक एवं बाह्य संरचना को समझाने का प्रयत्न करते हैं।

कृषक समाज की अवधारणा को समझने के लिये **'कृषक'** किसे कहा गया है। यह जानना आवश्यक है क्योंकि कृषकों से ही कृषक समाज का निर्माण होता है।

चैम्बर्स ट्वनटियथ सैन्च्युरी डिक्शनरी (Chambers Twentieth Century Dictionary) के अनुसार एक कृषक वह है जो, 'एक ग्रामीण है, एक देहाती है, जिसका व्यवसाय ग्रामीण काम है, और कृषक वर्ग वह है जिसमें कृषक या भूमि को जोतने वाले देहाती श्रमिक आते हैं। अंग्रेजी भाषा में ग्रामीण जीवन और श्रम के जीवन के मध्य एक सम्बन्ध पाया जाता है। यह बात पूर्ण औद्योगिक यूरोपीय समाज के लिये अवश्य सही है, परन्तु इसे प्रत्येक समाज और संस्कृति के लिये ठीक नहीं माना जा सकता। **एक कृषक का अर्थ निम्न आय समूह में आने वाले अशिक्षित असभ्य व्यक्ति से लिया गया है।**

- **कृषक एवं कृषक वर्ग का अर्थ**

आन्द्रे बिताई के विचार (Views of Andre Beteille) - साधारण बोलचाल की शब्दावली में कृषक के कई अर्थ लिये गये हैं, जिनमें तीन पर आन्द्रे बिताई ने प्रकाश डाला है।

1. कृषक भूमि से जुड़ा होता है – कृषक भूमि से जुड़ा होता है वह न केवल भूमि पर रहता है बल्कि उसे अपने श्रम से लाभदायक बनाता है। कानूनी दृष्टि से वह भूमि का स्वामी, उसे ाकिराये पर जोतने वाला या बिना भू–स्वामी अधिकार के एक श्रमिक हो सकता है। लेकिन इन सब स्थितियों में वह श्रम द्वारा अपनी आजीविका कमाता है। कुछ लोग कृषक शब्द का प्रयोग भू–स्वामी किसानों के लिये करते हैं, तो कुछ अन्य इसमें किराये पर भूमि जोतने वाले तथा भूमिहीन श्रमिकों को भी सम्मिलित करते हैं।

2. समाज में निम्न स्थिति– ऐसा माना जाता है कि अधिकांश समाजों में कृषक की निम्न स्थिति होती है। वे लोग जो कृषक के परिश्रमी, सरल तथा मितव्ययी होने की प्रंशसा करते हैं, स्वीकार करते हैं कि समाज में उनकी वास्तविक प्रतिष्ठा ऊंची नहीं होती। स्तरीकरण के क्रम में कृषक–वर्ग की स्थिति पर न केवल आर्थिक दृष्टि से बल्कि सांस्कृतिक दृष्टि से भी विचार किया जाता है। यदि इस वर्ग के लोग उस भूमि के स्वामी भी होते हैं, जिसको वे जोतते हैं तो भी उसका आकार काफी छोटा होता है और आय इतनी कम होती है कि परिवार कठिनता से ही अपना भरण–पोषण कर पाता है। कृषकों को अपरिष्कृत, असभ्य या अशिक्षित भी माना जाता है। उनके लिये यह समझा जाता है कि सभ्य जीवन के तौर–तरीकों से ये अपरिचित है।

3. मज़दूरों का पूरक– कृषकों को मजदूरों का प्रतिपक्ष या पूरक माना जाता है। कहने का तात्पर्य है कि 'कृषकों तथा श्रमिकों' के लिये यह समझा जाता है कि ये एक ही श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। 'कृषक' शब्द के उपरोक्त तीन अर्थों को ध्यान में रखने पर स्पष्ट हो जाता है कि सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता के लिये 'कृषक समाज' शब्दावली का प्रयोग अनुपयुक्त है। **आन्द्रे**

बिताई की मान्यता है कि भारतीय समाज के ग्रामीण खण्ड के लिये इस शब्दावली (कृषक समाज) का प्रयोग उचित नहीं है। यद्यपि अन्य समाजों में ग्रामीण खण्ड इस शब्दावली के अन्तर्गत आ सकते हैं।

- **कृषक समाज का अर्थ एवं परिभाषा**

रेडफील्ड ने कृषक समाज को परिभाषित करते हुए लिखा है, **''वे ग्रामीण लोग जो जीवन–निर्वाह के लिये अपनी भूमि पर नियन्त्रण बनाये रखते हैं और उसे जोतते हैं तथा कृषि जिनके जीवन के परम्परागत तरीके का एक भाग है और जो कुलीन वर्ग या नगरीय लोगों की ओर देखते हैं और उनसे प्रभावित होते हैं, जिनके जीवन का ढंग उन्हीं के समान है, लेकिन कुछ अधिक सभ्य प्रकार का।''**

रेडफील्ड की 'कृषक समाज' की परिभाषा में दो प्रमुख तत्व हैं:– 1. कृषकों का जीवन निर्वाह का ढंग, 2. अन्य लोगों के साथ उनके सम्बन्ध। रेडफील्ड के अनुसार छोटे उत्पादनकर्ता जो स्वयं के उपभोग के लिये उत्पादन करते हैं, कृषक हैं। लेकिन यह परिभाषा इतनी व्यापक है कि इसके अन्तर्गत मलाया के मछुए आ जायेंगे और कुछ शिकार करने वाले व फल–फूल एकत्रित करने वाले लोग भी। अतः आगे आपने उन छोटे उत्पादनकर्ताओं को ही कृषक माना है 'जो अपनी आजीविका और जीवन का ढंग भूमि को जोतकर ही चलाते हैं।'' **रेडफील्ड ने कृषक शद के अन्तर्गत उन छोटे खेतिहर लोगों को ही लिया है जो स्वयं के उपभोग के लिये उत्पादन करते हैं। आपने उन लोगों को किसान कहा है जो बाजार के लिये उत्पादन करते हैं।** वोल्फ के समान आपने भी 'कृषक' शब्द को उन छोटे भूमिहर खेती करने वालों के लिये सीमित कर दिया है जो उस भूमि पर नियन्त्रण रखते हैं जिसको वे जोतते हैं और उस सीमा तक वे आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र हैं। कृषक के उपरोक्त अर्थों को ध्यान में रखते हुए जब हम भारत में पाये जाने वाली काश्तकारी अधिकार एवं अवधि सम्बन्धी प्रबन्धों को देखते हैं, तो कई प्रकार के प्रश्न खड़े होते हैं? क्या पट्टेदारी पर भोगाधिकार प्राप्त काश्तकारी को 'कृाषक' माना जाये? इसी प्रकार बटाईदार को 'कृषक' कहा जाये अथवा नहीं?

रेडफील्ड की परिभाषा का दूसरा तत्व कृषकों के अ–कृषकों के साथ विशेषतः कस्बे का नगर के अभिजात वर्ग या कुलीन वर्ग के साथ सम्बन्धों का है। यहां हमें इस बात को ध्यान में रखना है कि भारत में अभिजात वर्ग या कुलीन–वर्ग कस्बे या नगर का हो, यह आवश्यक नहीं है, वह स्वयं गांव का ही हिस्सा हो सकता है। इस सम्बन्ध में आन्द्रे बिताई ने बतलाया है कि निम्न स्तर वाले कृषकों और उच्च स्तर वाले अकृषकों के बीच विभाजन गांव या कस्बे या गांव या नगर के बीच के भेद को व्यक्त नहीं करता है बल्कि स्वयं गांव के भीतर के भेद या दरार को बतलाता है। स्पष्ट है कि कृषकों के अकृषकों के साथ सम्बन्ध पाये जाते हैं, परन्तु ये अकृषक लोग कस्बे या नगर के रहने वाले नहीं होकर गांव ही के रहने वाले हैं। कम से कम भारत में तो वास्तविकता यही है।

डॉ0 बी0आर0 चौहान ने बताया कि रॉबर्ट रेडफील्ड की अवधारणाओं को भारतीय ग्रामों में पायी जाने वाली स्थिति के सन्दर्भ में लागू करते हैं, तो अभिजात वर्ग का पता लगाने में कोई वास्तविक कठिनाई नहीं आती, 'कृषक' तथा किसान भी पाये जाते हैं, फिर भी वह स्थिति जो परिस्थिति को जटिल बना देती है, जातियों की संख्या है जिनके अपने–अपने विभिन्न प्रकार के जीवन के ढंग हैं। यह बात कृषक वर्ग में भी पायी जाती है और अकृषक वर्ग में भी। गांव

यदि जीवन का एक ढंग है, तो इस रूप समरूपता लिये हुए नहीं कि सभी कृषकों को एक श्रेणी में रखा जा सके, वह इसी रूप में अर्थपूर्ण है कि उसके असमान स्थिति वाले जातीय समूहों के साथ सम्बन्ध पाये जाते हैं। स्वयं कृषक वर्ग में भू–स्वामियों, संयुक्त–स्वामियों, किराये पर भूमि जोतने वालों तथा भूमिहीन श्रमिकों के बीच पाये जाने वाले भेद ऐसे तथ्य हैं जिनका ग्रामीण पर्यावरण में सामना करना होता है।

कृषक समाज की विशेषताएं

रॉबर्ट रेडफील्ड ने कृषक समाज की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया हैः–

1. कृषि जीवन जीने का तरीका– कृषक वह है जो कृषि को जीवन जीने के तरीके (way of life) के रूप में अपनाता है। पीढ़ियों से उसके परिवार में कृषि से ही जीवन निर्वाह होता रहा है। वह इसमें लाभ हानि नहीं देखता। यदि कोई व्यक्ति कृषि में लगे श्रम खाद बीज और उससे होने वाली फसल को आर्थिक लाभ–हानि के रूप में देखता है तो उसे हम किसान (Farmer) कहते हैं, कृषक नहीं।

2. कृषक भूमि से जुड़ा होता है– कृषक न केवल कृषि भूमि पर रहता है, वरन् उसे अपने परिश्रम से लाभदायक भी बनाता है। कानूनी दृष्टि से भूमि का स्वामी होता है किराये पर कृषि करने वाला कृषि श्रमिक कहलाता है, कृषक नहीं। कृषक मानसिक रूप से अपनी भूमि से जुड़ा होता है। कृषि भूमि की मात्रा गांव में उसके पद और प्रतिष्ठा का निर्धारण करती है। यदि कृषक की भूमि बिकती है तो वह ऐसा समझता है मानो उसके जीवन और परिवार का कुछ खो गया है।

3. कृषक अपनी कृषि भूमि का स्वयं नियन्त्रणकर्ता होता है उसका उस पर अधिकार होता है और वही उस भूमि का भू–स्वामी होता है।

4. कृषक स्वयं के लिये उत्पादन करता है– वह अपनी फसल को बाजार में बेचने के लिये पैदा नहीं करता।

5. कुलीन वर्ग के लोग कृषक के मार्गदर्शक होते हैं। कृषक को जब भी कोई परेशानी होती है तो मार्ग दर्शन के लिये वह कुलीन वर्ग की ओर निहारता है। क्योंकि कुलीन वर्ग शिक्षित तथा सम्पत्ति सम्पन्न होता है। उसके सम्बन्ध विभिन्न अधिकारियों से होते हैं।

6. कृषक समाज अपेक्षतया एक समरूप (Hamogenous) समाज होता है अर्थात् सभी कृषकों के खान–पान, रहन–सहन, विश्व दृष्टिकोण, जीवन जीने को ढंग एवं विचारों तथा सामाजिक संरचना में समरूपता पाई जाती है।

7. कृषक समाज एक अविभेदीकृत एवं अस्तरीकृत समुदाय होता है अर्थात् उसमें आधुनिक समाजों की तरह उच्चता और निम्नता के अत्यधिक भेद नहीं पाये जाते।

8. कृषक समाज नगरों या कस्बों के कुलीन वर्ग से भिन्न है यद्यपि यह उनसे अनेक क्षेत्रों में प्रभावित होता है।

9. **आर्थिक** आधार पर कृषक समाज अन्य समाजों से भिन्नता लिये हुए होता है।

- **भारत के कृषक समाज की अवधारणा**

कृषक समाज के बारे में विभिन्न विद्वानों के विचारों को जान लेने के पश्चात् हम यहां तक देखने का प्रयास करेंगे कि वह अवधारणा भारतीय सन्दर्भ में कहां तक उपयुक्त है।

आन्द्रे बिताई ने भारतीय गांवों की प्रकृति को स्पष्ट करने के लिये तमिलनाडु में तंजोर जिले के 'अग्रहरम' (Agraharm) गांव का एक अध्ययन किया है। इस गांव को आन्द्रे बिताई ने श्रीपुरम् के नाम से पुकारा है। श्रीपुरम् 349 परिवारों का एक ऐसा गांव है, जिसकी सामाजिक संरचना काफी विभेदीकृत एवं स्तरीकृत प्रकार की है। इन परिवारों में से 92 परिवार ब्राह्मणों के हैं, जो गांव में एक अलग मौहल्ले में रहते हैं। इन लोगों को किसी भी दृष्टि से कृषक वर्ग के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। गांव के कृषकों से यह लोग भोजन, रहन–सहन, वस्त्र तथा बोल–चाल की दृष्टि से भिन्नता लिये हुए हैं, इन दोनों की परम्परागत मान्यताएं हैं, जो इन्हें स्वयं भूमि जोतने की आज्ञा नहीं देतीं जबकि भूमि जोतना कृषक जीवन की अनिवार्य शर्त है। ये ब्राह्मण भू–स्वामी (Land Lord) हैं जो अपनी भूमि जोतने के लिये अन्य लोगों को देते हैं। ये लोग प्रमुखतः अध्ययन–अध्यापन तथा धार्मिक अनुष्ठानों आदि कार्यों में लगे हुए पाये गये।

श्रीपुरम् के समान ही ब्राह्मण गांव सारे राष्ट्र में पाये जाते हैं एवं लगभग सभी जगह ब्राह्मणों के स्वयं खेत जोतने के सम्बन्ध में परम्परागत प्रतिबन्ध पाये जाते रहे। इसका आशय यह हुआ कि इन ब्राह्मणों को किसी भी अर्थ में कृषक वर्ग की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

आन्द्रे बिताई ने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि गांवों में ब्राह्मणों के अतिरिक्त राजपूत जाति के लोग भी रहते हैं। इनमें राजा–महाराजाओं के अतिरिक्त जागीरदार, जमींदार, ठिकानेदार आदि आते हैं, जो अपनी परम्पराओं को अनुसार स्वयं खेत नहीं जोतते हैं, बल्कि निम्न जाति वालों से जुतवाते हैं। यही नहीं, उच्च प्रस्थिति वाले मुसलमान लोग भी स्वयं अपने हाथ से काम करना ठीक नहीं समझते और फलस्वरूप वे स्वयं भी खेतों पर काम नहीं करते। इस ग्राम में खेती करने वाली जातियों को तीन समूह पाये हैं:–

1. बेलालास, 2. कालास एवं 3. पाडयायिस। इन्हीं तीन समूहों के सदस्यों से मिलकर गांव का कृषक वर्ग बना है। यद्यपि ये भू–स्वामी कृषक होने की अपेक्षा किराये पर भूमि जोतने वाले काश्तकार हैं। ये लोग कृषि कार्यों से भूमिहीन श्रमिकों की सहायता लेते हैं। स्पष्ट है कि श्रीपुरम् एक ऐसा गांव है जो 'कृषक गांव' की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता।

2. आन्द्रे बिताई ने अपने क्षेत्रीय अध्ययनों को आधार पर बताया है कि यह सही है कि ग्रामों में कुछ जातियां जिन्हें आकृषक और कुछ ऐसी जातियां जिन्हें कृषक कहा जा सकता है, मिल जायेंगी, परन्तु ग्रामीण सामाजिक संरचना के सही अध्ययन की दृष्टि से यह आवश्यक है कि

प्रत्येक जाति में पाये जाने वाले आन्तरिक विभेदीकरण तथा स्तरीकरण को ध्यान में रखा जाये। अतः आवश्यकता इस बात की है कि ग्रामीण अध्ययनों में विश्लेषण की इकाई के रूप में जाति के स्थान पर परिवार को लिया जाये। ऐसा करने पर ही हमें पता चल पायेगा कि किसी कृषक समझी जाने वाले जाति में सही अर्थों में कितने परिवार कृषक हैं, कितने अ–कृषक और कितने उस्पादन में वास्तविक भूमिका की दृष्टि से सीमान्त स्थिति में है।

3. गांव में यह भी पाया गया है कि बहुत से परिवार परिस्थिति तथा पारिवारिक सम्मान सम्बन्धी सामाजिक दृष्टि से परिभाषित अवधारणाओं के कारण स्वयं खेत पर काम नहीं करना चाहते। वे या तो बटाईदारी में खेती करवाते हैं या किराये पर भूमि जोतने को दे देते हैं। वे कई बार भूमिहीन श्रमिकों द्वारा अपने खेतों में कार्य कराते हैं और स्वयं निरीक्षणकर्ता के रूप में भूमिका निभाते हैं। जब कोई परिवार दो या तीन पीढ़ियों से खेत पर स्वयं काम करना बन्द कर देता है तो ऐसी स्थिति में वह कृषक कहलाने का अधिकारी नहीं रह जाता है।

4. सही अर्थों में उसी परिवार को कृषक परिवार कहा जा सकता है जिसके सभी सक्रिय सदस्य पुरूष और स्त्रियां दोनों खेत पर काम करते हैं। यहां स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उठता है कि ऐसे परिवारों को कृषक परिवार माना जाये या नहीं जिसमें पुरूष खेतों पर काम करते हैं, लेकिन प्रथा के अनुसार स्त्रियों को ऐसा करने से रोक दिया जाता है। ग्रामीण भारत में समाज के विभिन्न स्तर की स्त्रियों द्वारा घर के बाहर किये जाने वाले कार्यों के सम्बन्ध में निश्चित सूचना के अभाव में कार्य के संगठन के बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन हे। ग्रामीण भारत में परिवार की स्थिति के निर्धारण में इस बात का विशेष महत्व है कि परिवार विशेष की स्त्रियों को घर के बाहर स्वयं खेत पर अथवा अन्य कहीं कार्य करने की आज्ञा है अथवा नहीं। यदि स्वयं खेत नहीं जोतने वाले भू–स्वामी परिवार के पुरूष खेत पर काम करना आरम्भ कर देते हैं तो सामाजिक दृष्टि से परिवार की स्थिति एकदम नीची हो जाती है। यह बात न केवल हिन्दुओं के लिये बल्कि मुसलमानों के लिये भी सही है। इस देश में सापेक्ष रूप से समृद्धशाली परिवारों की स्त्रियों के द्वारा स्वयं के खेतों पर या मजदूरी के लिये दूसरों के खेतों पर काम करने का प्रश्न नहीं उठता। भारत में सम्पत्ति अधिकारों की संरचना, प्रस्थिति, सम्मान तथा शुद्धता की धारणाएं कृषि कार्य में स्त्री की भूमिका और कृषक परिवार में कार्य के विभाजन का निर्धारण करती हैं। ये धारणाएं सांस्कृतिक रूप से विशिष्टता लिये हुए होती हैं और यह समाज और दूसरे समाज में यहां तक कि एक ही समाज के विभिन्न स्तर के लोगों में भिन्न–भिन्न होती हैं। आन्द्रे बिताई का कहना है कि यदि हमें कृषक परिवारों या समुदायों का अधिक अर्थपूर्ण ढंग से अध्ययन करना है तो इन विश्वासों, मूल्यों तथा मनोभावों पर विशेष ध्यान देना होगा। ऐसा करने पर ही हम वास्तविकता को समझ सकेंगे।

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवरण से स्पष्ट है कि गांवों में रहने वाले सभी लोगों को कृषक नहीं माना जा सकता। भारतीय ग्राम की जनसंख्या काफी स्तरीकृत है और यहां कई ऐसे स्तरों के लोग पाये जाते हैं जिन्हें किसी भी दृष्टि से कृषक नहीं कहा जा सकता।

5. भारत में विभिन्न प्रकार के ग्राम पाये जाते हैं। कुछ ग्राम स्पष्टतः कृषक ग्राम हैं, तो कुछ ऐसे ग्राम हैं जहां कृषकों के साथ–साथ अकृषक लोग भी पाये जाते हैं जिनका आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक दृष्टि से विशेष प्रभुत्व है। देश के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न प्रकार के गांवों की प्रधानता पायी जाती है। ऐसी स्थिति में यह कहना वैज्ञानिक दृष्टि से तर्कसंगत नहीं है कि जनजातीय भारत को छोड़कर शेष ग्रामीण भारत कृषक समाज के अन्तर्गत आता है।

6. रेडफील्ड कृषक समाज को एक समरूप समुदाय (Homogeneous Comunity) मानते हैं। किन्तु भारत के सन्दर्भ में यह बात सही नहीं है क्योकि भारत के एक ही गांव में विभिन्न जाति, वर्ग, धर्म, प्रजाति एवं संस्कृति से सम्बन्धित लोग निवास करते हैं। ऐसी स्थिति में भारतीय गांवों को समरूप समुदाय की संज्ञा देना उपयुक्त नहीं है।

डॉ0 बी0आर0 चौहान ने राजस्थान के एक गांव 'राणावतों की सादड़ी' के अपने अध्ययन के आधार पर कृषक समाज की अवधारणा से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं को स्पष्ट किया है। **प्रथम,** यदि आर्थिक कारणों से गांवों के सभी कृषक तम्बाकू, कपास, तिल या मूंगफली की फसल उगाने लगें जिससे नकद दाम प्राप्त करने में सहायता मिले तो ऐसी दशा में कृषक (Presant) और किसान (Farmer) का अन्तर समाप्त हो जाता है। **द्वितीय,** रेडफील्ड ने कृषक समाज को दो भागों में विभाजित किया है– कृषक तथा अभिजात वर्ग। परन्तु गांव में निवास करने वाले कई लोगों जैसे मिट्टी के बर्तन बनाने वाले तथा विभिन्न किस्म के अन्य निर्माताओं के सम्बन्ध में इस अवधारणा में विचार नहीं किया गया है। ये लोग न तो कृषक वर्ग में आते हैं और न ही अभिजात वर्ग में। **तृतीय,** कृषक समाज की अवधारणा में आर्थिक विभाजन तो स्पष्ट है, लेकिन इसमें सामाजिक, धार्मिक एवं प्रशासनिक संरचना को महत्व नहीं दिया गया है। इस संरचना को समझे बिना ग्रामीण समाज को ठीक से समझना कठिन है। आन्द्रे बिताई का विश्वास है कि अस्पष्ट और अनिश्चित अवधारणा जिसका समाजशास्त्रियों एवं सामाजिक मानवशास्त्रियों में काफी चलन हो चुका है, इस प्रकार के अन्वेषण में बाधक के रूप में है। अतः उपर्युक्त तथ्यों को ध्यान रखते हुए कहा जा सकता है कि **रॉबर्ट रेडफील्ड द्वारा प्रतिपादित कृषक समाज की अवधारणा भारतीय ग्रामीण समुदायों पर पूरी तरह लागू नहीं होती। यह अवधारणा यूरोपीय वास्तविकता का चित्रण तो अवश्य करती है, परन्तु ग्रामीण भारत की वास्तविकताओं का नहीं।**

- **कृषक समाज तथा लघु समुदाय में अन्तर**

हमने लघु समुदाय और कृषक समाज की अवधारणाओं का उल्लेख किया। इससे इन दोनों के मध्य पाये जाने वाले भेद का निम्नांकित आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है :–

1. लघु समुदाय का आकार छोटा होता है, इसमें प्राथमिक सम्बन्धों की विशेषताएं, घनिष्ठता एवं सामुदायिक भावना पायी जाती है। कृषक समाज अपेक्षतया बड़े आकार का होता है तथा इसमें सदैव ही सामुदायिक भावना का होना आवश्यक नहीं है।
2. लघु समुदाय में विशिष्टता पायी जाती है जबकि कृषक समाज में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक भिन्नताएं देखने को मिलती हैं।
3. लघु समुदाय एक समरूप समुदाय है यद्यपि रेफील्ड ने कृषक समाज को समरूप समुदाय कहा है, किन्तु आन्द्रे बिताई ने इसे समरूप समुदाय नहीं माना है।
4. लघु समुदाय आत्मनिर्भर होता है। जीवन से लेकर मृत्यु तक सभी आवश्यकताओं की पूर्ति लघु समुदाय में हो जाती है, किन्तु कृषक समाज आत्मनिर्भर भी हो सकता है तथा अन्य समुदायों पर निर्भर थी।
5. लघु समुदाय कृषक समुदाय की तुलना में अधिक प्राचीन है।

6. लघु समुदाय परम्परावादी एवं सामान्यतः परिवर्तन से दूर होते हैं जबकि कृषि के यंत्रों, तरीक़ों आदि में नवीन आविष्कार होने पर कृषक समाजों में परिवर्तन आते रहते हैं।
7. लघु समुदाय की अवधारणा सार्वभौमिक है, जबकि कृषक समाज की अवधारणा विभिन्न देशों में भिन्न–भिन्न है।

5.5 लोक संस्कृति (अवधारणा)

लोक संस्कृति की अवधारणा का प्रतिपादन रॉबर्ट रेडफील्ड ने किया जिसका ग्रामीण समाजशास्त्र के अध्ययन में विशेष महत्व है। इसी अवधारणा के सन्दर्भ में रेडफील्ड ने अनेक अन्य अवधारणाओं को भी प्रस्तावित किया है। आपने एक नगर, एक कस्बे, एक गांव तथा एक जनजातीय ग्राम का तुलनात्मक रूप से अध्ययन किया। इसी प्रकार **ऑस्कर लेविस** ने **मैक्सिकों** तथा भारत के दो गांवों का, **रूथ बैनेडिक्ट** ने तीन जनजातीय समाजों का एवं **ओपलर तथा सिंह** ने पूर्वी उत्तर प्रदेश के दो गांवों का लोक संस्कृति के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। रेडफील्ड का अध्ययन इन सभी विद्वानों की तुलना में विशेष रूप से महत्वपूर्ण था।

रेडफील्ड के लोक संस्कृति की अवधारणा के विचार–स्त्रोत के रूप में तीन विचारकों के अध्ययन खास तौर से उल्लेखनीय हैंः–

प्रथम, एच0एस0 मैन, द्वितीय, एफ0 टॉनीज, तृतीय, दुर्खीम।

उपर्युक्त विद्वानों के अध्ययनों से प्रभावित होकर रेडफील्ड ने लोक–संस्कृति की अवधारणा प्रतिपादित की। प्रारम्भ में आपने इसके लिये 'कृषक–संस्कृति' (Peasant Culture) शब्द का प्रयोग किया। यहां इस बात को भी ध्यान में रखना है कि जिन अर्थों में रेडफील्ड ने **'कृषक–संस्कृति'** शब्द का प्रयोग किया, उन्हीं अर्थों में **जार्ज एम0 फोस्टर** ने 'लोक संस्कृति' (Folk Culture) शब्द का। इस प्रकार 'Prasant Culture' एवं 'Folk Culture' एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। मूल रूप में इन दोनों ही विद्वानों का सम्बन्ध लोक संस्कृति के गहन अध्ययन से है।

- **लोक संस्कृति का अर्थ**

लोक समाज की संस्कृति को ही लोक संस्कृति के नाम से पुकारा गया है। लोक समाज को रेडफील्ड ने एक ऐसा समाज माना है जिसमें नगरीय समाज से विपरीत प्रकार की विशेषताएं पाई जाती हैं। यह एक ऐसा समाज है जिसका आकार छोटा होता है तथा जिसमें अकेलापन, अशिक्षा, समानता, समूह दृढ़ता की भावना एवं जीवन का रूढ़िगत ढंग पाया जाता है। एसे समाज की अन्य विशेषताओं के रूप में कानून का अभाव, परम्परागत प्रकार का व्यवहार को प्रमुखतः वैयक्तिक एवं आलोचना रहित होता है, परिवार तथा नातेदारी समूह के लोगों के क्रिया–कलापों में एकता, धर्म का प्रभाव, अर्थव्यवस्था का बाजार के बजाय प्रस्थिति पर आधारित होना तथा बुद्धिजीवी वर्ग के चिन्तन का अभाव, आदि प्रमुख हैं।

रेडफील्ड, दुर्खीम तथा टॉनीज, आदि विद्वानों के अनुसार लोक समाज की उत्पत्ति प्राकृतिक कारणों का परिणाम है। ऐसे समाज का आधार नातेदारी, मित्र–समूह और पड़ोस हैं।

ऐसे समाज में विभिन्न कार्य लोक–रीतियों, रूढ़ियों तथा धर्म पर आधारित होते हैं। ऐसे समाज के लोगों की संस्कृति को ही लोक संस्कृति का नाम दिया गया है।

जार्ज एम0 फोस्टर ने लोक संस्कृति को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''लोक संस्कृति को जीवन के सामान्य तरीके के रूप में देखा जा सकता है जो एक क्षेत्र विशेष में बहुत से गांवों, कस्बों तथा नगरों के कुछ या सभी लोगों की विशेषताओं के रूप में है और लोक समाज उन व्यक्तियों के एक संगठित समूह के रूप में है जिसकी एक लोक संस्कृति है।''

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि **लोक समाज की संस्कृति ही लोक संस्कृति कहलाती है। यह नगरीय संस्कृति से विपरीत प्रकार की होती है।** इस संस्कृति में रूढ़ियों का प्रभाव अधिक होता है। इसमें परिवार, नातेदारी, धर्म एवं पड़ोस का अधिक महत्व होता है, बौद्धिक चिन्तन एवं बाजार अर्थव्यवस्था का अभाव पाया जाता है तथा लिखित साहित्य के स्थान पर मौखिक परम्पराएं प्रचलित होती हैं।

- **लोक सस्कृति के निर्माण के तत्व**

1. लोक ज्ञान – लोक ज्ञान में हम किसी पिछड़े हुए समूह को जीवन तथा समाज के विविध पक्षों के बारे में जो ज्ञान होता है, शामिल करते हैं। इसमें लोक साहित्य और लोक–कलाएं आती हैं।

2. लोक मनोरंजन– इसमें लोक–मंच, लोक नृत्य, लोक गीत, मेले, त्यौहार, पर्व आदि जो जनसमुदाय के विभिन्न अवसरों से जुड़े हैं, सम्मिलित किये जाते हैं।

3. लोक रीतियां– लोक रीतियों में स्थानीय स्तर पर प्रचलित विभिन्न प्रकार के कृत्यों एवं विश्वासों को ले सकते हैं जो सामान्यता संपूर्ण समुदाय से प्रथागत तथा तर्कहीन रूप से प्रचलित हैं। इनमें कुछ विश्वासों का तो किसी भी विशेष धर्म पर कोई झुकाव नहीं होता है। पीर पूजा, हनुमान का अखाड़ा जैसी धार्मिक मान्यताओं पर जन–समूह का विश्वास होता है।

- **लोक संस्कृति की विशेषताएं**

रेडफील्ड, जिम्मरमैन, सोरोकिन तथा गालपिन आदि समाजशास्त्रियों ने लोक संस्कृति की अवधारण को इसकी निम्नांकित विशेषताओं के माध्यम से स्पष्ट किया है–

1. **सरलता**– लोक संस्कृति का निर्माण करने वाले सभी तत्वों अथवा निर्माणक इकाईयों की प्रकृति बहुत सरल होती है। उदाहरण के लिए, लोक जीवन में प्रचलित चित्रकला तथा वास्तु–कला को अभिव्यक्त करने वाली लोक कला का रूप बहुत सरल होता है। लोक कला के लिए प्रयुक्त होने वाले विभिन्न उपकरणों का निर्माण गांवो में ही होता है, इसलिए यह कला विशेषीकृत नही होती। इसी प्रकार लोक संस्कृति से सम्बद्ध साहित्य मौखिक परम्पराओं के द्वारा विभिनन व्यक्तियों और समूहो को हस्तान्तरित होता है। इस साहित्य में सामूहिकता के दर्शन होते है, व्यक्तित्वादिता के नहीं।
2. **मौखिक, सांस्कृतिक परम्परा**–लोक संस्कृति का कोई लिखित स्वरूप नही होता। इसका हस्तान्तरण केवल मौखिक रूप से ही होता है। लोक संस्कृति के क्षेत्र में कोई ऐसी विकसित संस्था नही होती तो वहाँ के लोगों को व्यवस्थित रूप से प्रशिक्षण दे सके। इसमें धर्म, सहित्य, संगीत, लोक–गाथाओं तथा विश्वासों को ही महत्वपूर्ण समझा जाता है। लोक संस्कृति से

सम्बन्धित विभिन्न प्रकार के व्यवहारों, विश्वासों, विधि–विधानों तथा शिष्टाचार के लिए पुस्तकों के किन्ही लिखित नियमों का पालन नही किया जाता बल्कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने परिवार, पडौस अथवा अनौपचारिक समूहों में इनकी मौखिक सीख प्राप्त होती है।

3. **व्यावसायिक का अभाव**– लोक संस्कृति अव्यावसायिक होती है। लोक संस्कृति में सम्बद्ध विचारक, कलाकार, संगीतज्ञ तथा शिल्पकार आदि अपनी कला का उपयोग लाभ प्राप्त करने के लिए नही करते बल्कि इनका उपयोग ग्रामीण जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए किया जाता है।
4. **कृषि जीवन पर आधारित**– लोक संस्कृति की इकाईयों का सृजन साधारणतया कृषक समाज में ही होता है। एक विशेष कृषक समाज की जो सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियाँ होती है, लोक संस्कृति उन्ही परिस्थितियों को विविध रूपों में अभिव्यक्त करती है। इस संस्कृति में कृषक जीवन में सामूहिक चेतना के दर्शन होते है तथा इसक उद्देश्य कृषक समुदाय को अभावों के पश्चात् भी मानसिक रूप से सन्तुष्ट बनाए रखना है।
5. **स्थानीय स्वरूप**– ग्रामीण जीवन में अनेक ऐसी देवी–देवताओं पर विश्वास किया जाता है तथा अनेक ऐसे त्यौहार मनाये जाते है जिनका विस्तार सम्पूर्ण भारत में है। ऐसे देवी–देवता तथा त्यौहार संस्कृति की अभिजात परम्परा अथवा दीर्घ परम्परा से सम्बन्धित होते है। इसके पश्चात भी गांवों में अनेक ऐसे देवी–देवता, त्यौहार, अनुष्ठान और मेले देखे जा सकते है जिनका प्रसार सम्पूर्ण भारत में न होकर, स्थानीय होता है। लोक संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है जिसमें इस स्थानीय स्वरूप को ही अधिक प्रधानता दी जाती है। इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए मैकिम मेरियट ने उत्तर प्रदेश के किशनगढ़ गांव का अध्ययन करके अनेक उदाहरण, यथा–कुआँ के देवता का मेला, बरहो बाबू की पूजा आदि प्रस्तुत किये है।[1]
6. **बौद्धिक, धार्मिक एवं नैतिक जीवन की दृष्टि से पूर्णता का अभाव**– लोक संस्कृति बौद्धिक, धार्मिक एवं नैतिक जीवन की दृष्टि से कभी पूर्ण नही होती। इसका तात्पर्य है कि लोक संस्कृति तथा अभिजात संस्कृति एक–दूसरे से प्रभावित होती रहती है। अधिक सरल रूप में यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार कृषक समाज की अवधारण अर्द्धसमाज के रूप में स्पष्ट होती है, उसी प्रकार लोक संस्कृति भी एक अर्द्धसंस्कृति है।
7. **कलात्मक क्रियाओं में सामान्य सहभाग**– लोक संस्कृति में आने वाली कलात्मक क्रियाओं में सभी लोगों का सहभाग होता है। लोक संस्कृति के अन्तर्गत दर्शक और कलाकार को अलग–अलग वर्णो में विभाजित नही किया जा सकता। एक व्यक्ति दर्शक भी होता है और साथ ही अभिनेता भी। उदाहरण के लिए, लोक नृत्य मं भाग लेने वाले व्यक्ति स्वयं ही गति की रचना करते है, उसे गाते है और साथ ही नृत्य भी करते है। एक समय में जो दर्शक होता है, दूसरे समय में वही कलाकार बन जाता है।
8. **सृजनात्मकता**– सभी विद्यान यह स्वीकार करते है कि लोक संस्कृति में एक विशेष सृजात्मक शक्ति होती है। लोक संस्कृति के अन्तर्गत मन्दिर, धार्मिक उत्सव, अनुष्ठान, त्यौहार तथा नृत्य आदि व्यक्तियों की सामूहिकता के गुण में वृद्धि करने का अवसर प्रदान करते है। मनोरंजन के प्रमुख आधार लोक गाथाएँ, भजन–कीर्तन तथा वृद्ध व्यक्तियों के जीवन के अनुभव होते है। विभिन्न नाटको तथा खेलों के स्रोत वे धार्मिक ग्रन्थ होते है जिनकी शिक्षाएं व्यक्ति के विकास के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। लोक संस्कृति किसी स्थान पर जितनी प्रभावपूर्ण होती है, वहाँ व्यक्तित्व का आन्तरिक पक्ष उतनी ही अधिक संगठित देखने को मिलता है।

लोक संस्कृति का किसी भी लोक–समाज में महत्वपूर्ण स्थान होता है। यह संस्कृति उस क्षेत्र में विशेष के सम्पूर्ण समाज का एक दर्पण है जिसमें हम समूह के सामान्य जीवन तथा व्यवहारों, आदर्शो को देखने–समझने में समर्थ हो सकते है।

- **लोक संस्कृति : एक आलोचनात्मक दृष्टिकोण**

लोक संस्कृति की अवधारणा की अनेक विद्वानों के द्वारा आलोचना की गई है। सोल–टैक्स के ग्वाटेमालियान भारतीय के अध्ययन के आधार पर बताया गया है कि रेडफील्ड की यह धारण सही नही है कि जब तक लोक संस्कृति नगर के प्रभाव में आती है तो ऐसी दशा में उसमें धर्म निरपेक्षतावादी एवं व्यक्तित्वादी प्रवृत्तियां पैदा हो जाती है। सोल–टैक्स के अध्ययन से ज्ञात होता है कि दोनों संस्कृतियों का सामन अस्तित्व में पाया जाता है। ऑस्कर लेविस ने भारत में एक ग्राम रानीखेडा और मैक्सिकों के टैपोजलॉन के अध्ययन के आधार पर लोक संस्कृति की अवधारणा की आलोचना की है। आपने बताया है कि लोक संस्कृति की अवधारणा में केवल नगर को ही सब प्रकार के सामाजिक परिवर्तन का स्रोत माना गया है, जबकि वास्तविकता यह है कि बाहय तथा आन्तरिक कारण भी इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है। आलोचना का एक अन्य आधार यह है कि लोग नगरीय वर्गीकरण में जिस प्रकार के प्रारूप को प्रस्तुत किया गया है वह अपने आप में स्पष्ट नही है। ऐसा मालूम पड़ता है कि समाज की जिन विशेषताओं को लेकर लोक–समाज की व्याख्या की गई है, यह औपचारिक मात्र है, जोकि जीवन की वास्तविकताओं से सम्बद्ध नही है। लोक संस्कृति की अवधारणा की महत्वपूर्ण सीमा यह है कि इसमें मनोवैज्ञानिक कारण अथवा लोगों के चरित्र की व्याख्या न कर, समस्या के संकीर्ण पक्ष को ही लिया गया है।

इसकी आलोचना का एक अन्य कारण यह भी है कि इसमें सैद्धान्तिक अन्तर्दष्टि (Theoretical Insight) बहुत समिति है। प्रसिद्ध मानवशास्त्री मुरडॉक ने बताया है कि लोक संस्कृति की अवधारणा में ऐतिहासिक (Historical), प्रकार्यवादी (Functional), मनोवैज्ञानिक (Psychological) सिद्धान्तों को काम में नही लिया गया है। हर्षकोविट्स का कहना है कि '' इस अवधारणा में प्रक्रियाओं की अपेक्षा स्वरूप पर अधिक जोर दिया गया है''। इस अवधारणा की सीमा यह है कि लोक संस्कृति का रेडफील्ड द्वारा प्रस्तुत प्रारूप आदर्शात्मक अधिक है। आवश्यकता इस प्रारूप को व्यावहारिक बनाये जाने की है ताकि इसकी जॉच की जा सके और सिद्धान्त निर्माण की ओर आगे बढा जा सके।

जॉर्ज एम. फोस्टर ने रेडफील्ड द्वारा वर्णित लोक संस्कृति की कुछ विशेषताओं की आलोचना करते हुए बताया है कि रेडफील्ड की यह मान्यता सही नही है कि लोक संस्कृति में अकेलापन पाया जाता है तथा वह नगरीय प्रभाव से मुक्त रहती है। फोस्टर का कहना है कि रेडफील्ड, व्यक्तिगत गतिशीलता की बात को भूल गये। यात्रा करने वाले झुण्ड भौगोलिक दूरी को कम कर साँस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित करने में सदैव योगदान देते रहे है। आपके अनुसार किसी भी समाज में पूर्णतः अकेलापन नही होता और लोक–समाज भी अपने आप में पूर्ण समाज नही है। यह बडे या विस्तृत समाज का एक हिस्सा है। इससे स्पष्ट है कि लोक संस्कृति में अकेलापन नही पाया जाता और साथ ही यह अपने आप में पूर्ण संस्कृति भी नही है। इसकी अभिजात संस्कृति से अन्तः क्रिया सदैव चलती रहती है।

- **लोक संस्कृति में परिवर्तन–**

लोक संस्कृति का अध्ययन करने वाले विद्धानों की मान्यता थी कि लोक संस्कृति रूढिवादी, परम्परावादी एवं परिवर्तन से परे है, यह परिवर्तन विरोधी है। किन्तु यह धारणा वर्तमान संदर्भ में उचित नही कही जा सकती। औद्योगीकरण, नगरीकरण, यातायात एवं संचार के नवीन साधनों के प्रसार, आधुनिकीकरण एवं पाश्चात्य प्रभाव के कारण ग्रामीण जीवन एवं लोक संस्कृति में कई परिवर्तन हुए है। गांव की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचना में परिवर्तन होने से लोक संस्कृति भी प्रभावित हुई है। लोक संस्कृति में होने वाले प्रमुख परिवर्तन इस प्रकार है।

(1) नगरीय संस्कृति का प्रभाव– ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय संस्कृति के तत्व प्रवेश कर रहे है। गांव का लोक समाज नगरीय लोगों के वस्त्र, फैशन, रहन–सहन के ढंग, जीवन दर्शन कला, मनोरंजन के साधन, खेलकूद, आदि को अपना रहा है। रेडियों टेलीविजन, सिनेमा आदि ने नगरीय प्रभाव को गांवों तक फैलाया है। संगीत के क्षेत्र में आज अनेक धुनें एवं राग लोक संस्कृति से ग्रहण की जा रही है।

(2) व्यापारीकरण – पहले लोक संस्कृति से सम्बन्धित कलाकार, संगीतज्ञ, शिल्पकार और विचारक अपनी कला का उपयोग ग्रामीण लोगों की आवश्यकताओं की पूर्ति एवं शुद्ध मनोरंजन के लिए करते थें। किसी प्रकार के भौतिक लाभ के लिए नही। इस दृष्टि से लोक संस्कृति अव्यावसायिक थी। किन्तु वर्तमान में नगरीय संस्कृति के प्रभाव के कारण धर्म और कलां का व्यापारीकरण हो रहा है। लोक संस्कृति से सम्बन्धित कलाकार अब अपनी कलां को पैसों से बेचने लगे है। नाटक मण्डलियॉ, गीत व नृत्य आदि के संगठन बनाकर अब वे नगरों एवं गांवो में घूमते है एवं उनमें अपना जीवन यापन करते है।

(3) सामूहिक सहभागिता में कमी– लोक संस्कृति में समुदाय के सभी लोगो द्वारा भाग लिया जाता था संगीत नृत्य, कलाकृतियों के निर्माण, आदि सभी क्षेत्रों में लोग भाग लेते और अपना योगदान देते, उसका आनन्द उठाते थे। किन्तु लोक कला में अब सामूहिक सहभागिता कम होती जा रही है और यह धीरे–धीरे व्यक्तिवादी प्रकृति ग्रहण कर रही है। लोक संस्कृति से सम्बन्धित लोग इसे नगरीय संस्कृति से निम्न समझते है। अतः वे इसका त्याग कर रहे है और नगरीय संस्कृति का अपना रहे है। इससे लोक संस्कृति में विघटन की प्रक्रिया प्रबल हुई है।

(4) लोक संस्कृति के क्षेत्र का विस्तार – एक मान्यता यह थी कि लोक संस्कृति स्थानीय परम्पराओं से निर्मित होती है। इतः इसका क्षेत्र लघु होता है और यह अपरिवर्तनशील है। योगेन्द्र सिंह, इन्द्रदेव एवं उन्नीथान ने अपने अध्ययनों में यह पाया कि लोक संस्कृति का फैलाव एक क्षेत्र विशेष तक ही समिति नही है वरन् इसका फैलाव बढा है। उदाहरण के लिए कुल गीत, संगीत, कहानियॉ कथाएं, विश्वास अनुष्ठान और देवी देवता हमे विभिन्न क्षेत्रों में समान रूप से प्रचलित दिखाई देते है। भारत के क्षेत्रों में खेतो के संरक्षक देवता की पूजा की जाती है। चाहे उनका नाम कोई भी हो। राम द्वारा सीता को त्यागने की कहानी भी थोडे बहुत हेर–फेर के साथ सभी क्षेत्रों में कही जाती है।

स्पष्ट है कि लोक संस्कृति के विस्तार का क्षेत्र बहुत व्यापक है और इसकी अपनी स्वयं की एक एकता भी विद्यमान है।

इस परिवर्तनों के बावजूद आज भी लोक संस्कृति जीवित है, मरी नहीं हैं। वह नया स्वरूप ग्रहण कर रही है। इसका नगरीय एवं अभिजात संस्कृति से आदान–प्रदान तो सदैव ही होता रहा है फिर भी इसकी विशिष्टता, मौलिकता एवं अनुपमता आज भी विद्यमान है। कभी इसे अतीत की संस्कृति कहा जाता था, किन्तु आज नहीं। दूरदर्शन पर लोक संस्कृति से सम्बन्धित कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है, इससे लोक संस्कृति के प्रचार को बढावा मिलता है।

5.6 अभ्यास

1. लघु समुदाय की अवधारणा किस विद्वान ने प्रतिपादित कीः–
क. मैकिम मेरियट ख. रॉबर्ट रेडफील्ड
ग. आन्द्रे बिताई घ. बी0आर0 चौहान

2. किसने कहा कि लघु समुदाय जन्म से मृत्यु तक का प्रबन्ध हैः–
क. रॉबर्ट रेडफील्ड ख. मैकिम मेरियट
ग. एस0सी0 दूबे घ. एस0एम0 श्री निवास

3. विशिष्टता एवं लघुता किस अवधारणा की विशेषता है–
क. समुदाय ख. स्थानीयकरण
ग. लघु समुदाय घ. लोक संस्कृति

4. रॉबर्ट रेडफील्ड ने लघु समुदाय की अवधारणा किस ग्राम के अध्ययन के आधार पर बनाई हैः–
क. किशनगढी ख. राणावतो की सादड़ी
ग. चानकोम घ. शमीरपेट

5. 'भारत में ग्रामीण समाज' किसकी पुस्तक है–
क. बी0आर0 चौहान ख. एस0सी0 दूबे
ग. डी0एन0 मजमूदार घ. रॉबर्ट रेडफील्ड

6. रॉबर्ट रेडफील्ड ने लघु समुदाय की अवधारणा के लिये कितने गांवों का अध्ययन कर अवधारणा प्रस्तुत की–
क. 35 ख. 37
ग. 30 घ. 27

7. कृषक समाज की अवधारणा का श्रेय किस विद्वान को है–
क. मैकिम मेरियट ख. आन्द्रे बिताई
ग. रॉबर्ट रेडफील्ड घ. डी0एन0 मजूमदार

8. 'पीजेण्ड सोसायटी एण्ड पीजेन्ट कल्चर' किसकी पुस्तक है–
क. रॉबर्ट रेडफील्ड ख. आन्द्रे बिताई
ग. एस0सी0 दूबे घ. बी0आर0 चौहान

9. ''लघु समुदाय मानवता के समस्त इतिहास में मानव जीवन का सबसे प्रबल स्वरूप है।'' किसका कथन है–
क. बी0आर0 चौहान ख. रॉबर्ट रेडफील्ड
ग. मैकिम मेरियट घ. उपरोक्त में से कोई नहीं।

10. ''सिक्स एसेज इन कम्पेरेटिव सोश्योलॉजी' किसकी पुस्तक है–
क. आन्द्रे बिताई ख. बी0आर0 चौहान
ग. एम0एन0 श्रीनिवास घ. एस0सी0 दूबे

11. कृषक समाज मध्यवर्ती स्थिति में है, इसके एक ओर जनजातीय समाज है तो दूसरी ओर नगरीय समाज है।'' यह कथन किसका है–
क. रॉबर्ट रेडफील्ड ख. ए0 क्रोबर

ग. बी0आर0 चौहान घ. आन्द्रे बिताई

12. 'पीजेण्ट्स एण्ड पीजेण्ट सोसाइटीज' किसकी कृति है–

क. ए0 क्रोबर ख. ई0 नार्बेक

ग. तियोडोर शनीन घ. बी0 आर0 चौहान

13. 'लोक संस्कृति' की अवधारणा किस विद्वान की देन है–

क. आन्द्रे बिताई ख. रॉबर्ट रेडफील्ड

ग. ए0 क्रोबर घ. एम0एन0 श्रीनिवास

14. 'पीजेन्टस कल्चर इन इण्डिया एण्ड मैक्सिको' किसकी पुस्तक है–

क. रूथ बेनेडिक्ट ख. ऑस्कर लेविस

ग. रॉबर्ट रेडफील्ड घ. जॉर्ज एम0 फोस्टर

15. 'भारतीय समाज के ग्रामीण खण्ड के लिये इस शब्दावली (कृषक समाज) का प्रयोग उचित नहीं है' यह किस विद्वान की मान्यता है–

क. बी.आर चौहान ख. आस्कर लेविस

ग. आन्द्रे बिताई घ. रॉबर्ट रेडफील्ड

16. लोक संस्कृति में परिवर्तन का कारण है–

क. औद्योगिकरण ख. नगरीकरण

ग. पश्चिमीकरण घ. उपरोक्त सभी

17. ''पैटनर्स ऑफ कल्चर'' किसकी पुस्तक है–

क. रूथ बेनेडिक्ट ख. आस्कर लेविस

ग. एम0ई0 ओपलर घ. रॉबर्ट रेडफील्ड

18. लोक संस्कृति की अवधारणा से पहले रेडफील्ड ने लोक संस्कृति के लिये किस शब्द का प्रयोग किया–

क. अर्द्ध संस्कृति ख. कृषक संस्कृति

ग. अंश संस्कृति घ. ग्रामीण संस्कृति

19. रेडफील्ड की लोक संस्कृति की अवधारणा के विचार स्त्रोत विचारक थे–

क. एच0एस0 मेन ख. एफ0 टॉनीज

ग. दुर्खीम घ. उपरोक्त सभी

20. मैकिम मैरियट ने अपना अध्ययन किस गांव में किया है–

क. श्रीपुरम ख. किशनगढ़ी

ग. शमीर पेट घ. चानकोम

5.7 सारांश

लघु समुदाय, कृषक समाज तथा लोक संस्कृति की अवधारणाओं को विवेचन करने से एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि ये तीनों अवधारणाएं एक दूसरे से पूर्णतया भिन्न हैं अथवा इनके बीच कोई ऐसे समान तत्व हैं जो इन्हें एक–दूसरे से जोड़ते हैं। इस सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि ये तीनों अवधारणाएं ग्रामीण समुदाय के विभिन्न पक्षों को समझने तथा उनके विषय में एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर उनके विश्लेषण करने के लिये अत्यधिक महत्वपूर्ण है। बाह्य रूप से ये अवधारणाएं एक–दूसरे से भिन्न प्रतीत होती हैं, लेकिन इन सभी का आधार एक विशेष दृष्टिकोण को लेकर ग्रामीण जीवन की विवेचना करना है। लघु समुदाय मानव जीवन का सबसे प्राचीन एवं सरल रूप है। यह सच है कि सभी लघु समुदाय, कृषक समाज नहीं होते, लेकिन एक विशेष जीवन विधि, समरूपता, विशिष्टता तथा पर्याप्त सीमा तक आत्म–निर्भरता वे तत्व हैं जो कृषक समाज में भी बहुत अधिक स्पष्ट रूप से देखने को मिलते

हैं। लोक संस्कृति वह महत्वपूर्ण पर्यावरण है जो किसी भी लघु समुदाय तथा कृषक समाज की जीवन विधि को सुरक्षित बनाए रखता है। इस दृष्टिकोण से लघु समुदाय, कृषक समाज तथा लोक संस्कृति को पारस्परिक निर्भरता के दृष्टिकोण से समझना ही उचित होगा। इनमें से किसी एक में भी उत्पन्न होने वाला परिवर्तन दूसरे को निश्चित रूप से प्रभावित करता है।

5.8 शब्दावली

.कृषक– ऐसे लोगों को कृषक कहा जा सकता है जो अपनी आजीविका और जीवन का गुजर–बसर खुद भूमि जोतकर चलाते हैं, जो स्वयं के उपभोग के लिये उत्पादन करते हैं तथा जिनका जमीन पर स्वयं का नियन्त्रण होता है, साथ ही जिनकी पारम्परिक जीवन–शैली होती है।

संस्कृति–प्रतिमान– व्यवहार के समान तरीकों तथा उनके साथ जुड़े हुए विश्वासों को संस्कृति प्रतिमान कहते हैं। इस अर्थ में प्रत्येक समाज का अपना एक विशिष्ट संस्कृति–प्रतिमान होता है। विभिन्न समाजों में संस्कृति प्रतिमानों में भिन्नता का कारण संसाधनों, जलवायु के साथ–साथ परम्पराओं में भिन्नता है। विभिन्न समाज समान प्रमुख एवं पुनरावर्तक जीवन की समस्याओं का समाधान अलग–अलग रूप से विकसित करते हैं, इसी लिये उनके भिन्न संस्कृति प्रतिमान होते हैं।

5.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. B, 2. A, 3.C, 4.D, 5. A, 6. B, 7. C, 8. A, 9. B, 10. A, 11. B, 12. C, 13. B, 14. B, 15. C, 16. D, 17. A, 18. B, 19. D, 20. B,

5.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

हरिकृष्ण रावत 2012 समाजशास्त्र विश्वकोष, रावत पब्लिकेशन्स, पेज नं0 73, 259

डॉ0 एम0 एस0 लवानिया शशी के जैन ग्रामीण समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, पेज नं0– 55–76

डॉ0 वी0एन0 सिंह, जनमेजय सिंह (2013) ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, पेज नं0– 38

डॉ0 एम0 एल गुप्ता एण्ड डी0डी0 शर्मा (2012) भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र।
साहित्य भवन पब्लिकेशन्स आगरा, पेज नं0– 105–136

5.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य क्रम

रॉबर्ट रेडफील्ड – फोक कल्चर

रॉबर्ट रेडफील्ड – द लिटिल कम्यूनिटी

ब्रजराज चौहान (1989) ग्रामीण भारत

सत्यप्रकाश आर्य–ग्रामीण समाजशास्त्र

5.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लघु समुदाय की अवधारणा की विवेचना कीजिए। यह भारतीय ग्रामीण सन्दर्भ में कहां तक लागू होती है।

2. रॉबर्ट रेडफील्ड द्वारा प्रतिपादित लघु समुदाय की अवधारणा का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

3. कृषक समाज की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए तथा लघु समुदाय से इसका अन्तर बताईये।

4. भारत में कृषक समाज की अवधारणा की क्या प्रासंगिकता है? उदाहरण सहित समीक्षा कीजिए।

5. लोक संस्कृति की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।

6. लोक संस्कृति क्या है? वर्तमान में इसमें होने वाले परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए।

इकाई–6 : लघु एवं वृहत् परम्पराएं
Little & Great Tradition

इकाई की रूपरेखा

6.1 उद्देश्य
6.2 प्रस्तावना
6.3 परम्परा अर्थ एवं परिभाषा
6.4 लघु परम्परा अर्थ एवं परिभाषा
6.5 वृहत् परम्परा अर्थ एवं परिभाषा
6.6 लघु एवं वृहत् परम्पराओं में अन्तर।
6.7 वृहत् एवं लघु परम्पराओं के बीच अन्तःसम्बन्ध/अन्तःक्रिया।
6.8 समीक्षा
6.9 अभ्यास प्रश्न
6.10 सारांश
6.11 शब्दावली
6.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
6.13 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
6.14 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 उद्देश्य

- इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप समझ पायेंगे किः–
- लघु एवं वृहत् परम्परा क्या है।
- लघु परम्परा एवं वृहत् परम्परा में क्या है।
- भारतीय सन्दर्भ में वृहत् एवं लघु परम्पराओं के बीच अन्तक्रिया/अर्न्तसम्बन्ध।

6.2 प्रस्तावना

रॉबर्ट रेडफील्ड ने पहली बार अपने अध्ययन के आधार पर यह प्रमाणित किया कि प्रत्येक सभ्यता परम्पराओं से निर्मित होती है। आपके अनुसार एक ओर अभिजात लोगों की या थोड़े से चिन्तनशील लोगों की परम्पराएं आती हैं तो दूसरी ओर लोक या निरक्षर कृषकों की परम्पराएं। पहले वाली को वृहत् परम्परा एवं बाद वाली को लघु परम्परा कहा जाता है। आपके अनुसार प्रत्येक परम्परा का एक स्वयं का सामाजिक संगठन होता है अर्थात् संस्थागत भूमिकाएं, प्रस्थितियां तथा कार्यकर्ता होते हैं। दोनों परम्पराएं तक ऐसी विश्व–दृष्टि के प्रतीक के रूप में समझी जाती हैं, जो सभ्यता की एकता का प्रतिनिधित्व करती हैं। रॉबर्ट रेडफील्ड के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि लघु परम्पराओं का प्रतिनिधित्व जन–साधारण या निरक्षर कृषक और वृहत् परम्पराओं का प्रतिनिधित्व अभिज्ञात या चिन्तनशील लोग करते हैं।

6.3 परम्परा अर्थ एवं परिभाषा

लघु एवं वृहत् परम्पराओं का विस्तार से अध्ययन करने से पूर्व हमें परम्परा को समझना उपयोगी है।

सामान्य शब्दों में परम्परा हमारे व्यवहार के तरीकों को कहा जाता है। समाज में प्रचलित विचार, रूढियां, मूल्य, विश्वास, धर्म, रीति–रिवाज, आदतों आदि के संयुक्त रूप को ही मोटे तौर पर परम्परा कहा जा सकता है।

जेम्स ड्रीवर ने परम्परा की परिभाषा करते हुए लिखा है कि ''परम्परा कानून, प्रथा, कहानी तथा किंवदन्ती का वह संग्रह है, जो मौलिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है।''

मौरिस जिन्स बर्ग ने लिखा है ''परम्परा का अर्थ उन सभी विचारों, आदतों और प्रथाओं का योग है, जो व्यक्तियों के एक समुदाय से सम्बन्धित होता है और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होता रहता है।''

प्रो0 योगेन्द्र सिंह ने 'ट्रेडिशन एण्ड मोडरनिटी इन इण्डिया' में परम्परा की व्याख्या करते हुए लिखा है कि ''परम्परा किसी समाज की संचित विरासत है, जो सामाजिक संगठन के समस्त स्तरों पर छाई रहती है, जैसे मूल्य–व्यवस्था, सामाजिक संरचना तथा वैयक्तिक संरचना।''

इस प्रकार परम्परा सामाजिक विरासत का वह अभौतिक पक्ष (प्रथाएं, रूढ़ियां, आदतें, विश्वास, रीति–रिवाज, धर्म, कानून आदि) है, जो हमारे व्यवहार के स्वीकृत तरीकों का द्योतक है और जिसकी निरन्तरता पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरण की प्रक्रिया द्वारा बनी रहती है।

भारतीय समाज में सांस्कृतिक परम्पराओं की तीन प्रमुख धाराएं दिखाई देती हैं जिन्हें सांस्कृतिक उप संरचनाओं के नाम से पुकारा गया है। डॉ0 उन्नीथान, इन्द्रदेव एवं योगेन्द्र सिंह ने इन्हें तीन प्रमुख भागों में इस प्रकार रखा है–

1. अभिजात–उप–सरंचना
2. लोक–उप–सरंचना
3. जनजातीय–उप–संरचना

यहां हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि लोक उप–संरचना का प्रमुख क्षेत्र 'ग्रामीण भारत' एवं अभिजात परम्पराओं का क्षेत्र 'नगरीय भारत' रहा है। इसका यह आशय नहीं लगाया जाना चाहिये कि ग्रामीण भारत में अभिजात परम्परा के एवं नगरीय भारत में लोग–परम्परा के तत्व नहीं पाये जाते हैं। वस्तुतः ये दोनों ही परम्पराएं एवं इनके तत्व एक–दूसरे से इतने निकट हैं कि इन्हें पृथक् करके नहीं समझा जा सकता?

6.4 लघु परम्परा अर्थ एवं परिभाषा

रेडफील्ड के अनुसार छोटे गांवों में पाई जाने वाली जीवन उपार्जन की क्रियाओं एवं शिल्प, गांव और उससे सम्बन्धित संगठन तथा प्रकृति पर आधारित धर्म को लघु परम्परा के नाम से पुकारा जाता है। यह छोटे लोगों की परम्परा होती है जो स्वयंसिद्ध मानी जाती है, इसका विशेष परिमार्जन और सुधार नहीं किया जाता। रेडफील्ड कहते हैं, वे देवी–देवता, धार्मिक, अनुष्ठान, रीति–रिवाज, मेले, लोक–गीत, लोक–नृत्य, जादुई क्रियाएं तथा विविध सांस्कृतिक तत्व जिनका वर्णन अखिल भारतीय धर्मग्रन्थों एवं अन्य पुस्तकों में लिखित रूप में नहीं मिलता और और

प्रमुखतः मौखित रूप में पीढ़ी–दर–पीढ़ी हस्तान्तरित होते रहते हैं, लघु परम्परा के अन्तर्गत आते हैं।

अण्डरहित ने अपने अध्ययन में भारत में पाए जाने वाले 270 कर्मकाण्डों का उल्लेख किया है। जिनमें से अनेक स्थानीय कर्मकाण्ड हैं जो लघु परम्पराओं की श्रेणी में आते हैं। **रेडफील्ड साधारण निरक्षर किसानों की परम्पराओं को ही लघु परम्परा कहते हैं। जिनका जन्म एवं विकास अशिक्षित कृषक समुदायों में होता है और वहीं स्थायित्व प्राप्त होता है।**

डॉ0 बी0 आर0 चौहान के अनुसार, ''लघु परम्पराएं, स्थानीय अलिखित, आास्त्रीय, कम व्यवस्थित और कम चिन्तनशील होती हैं। लोग इनके अर्थ को न जानते हुए भी इनकी परिपालना अवश्य करते हैं। लोक–गीतों एवं रीति–रिवाजों में उनकी झांकियां देखने को मिलती हैं। ये हमारी संस्कृति की निरन्तरता एवं सजीवता का आधार हैं इसलिये अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं।

मैकिम मैरियट ने कृषक समाज में पाई जाने वाली परम्पराओं को लघु परम्पराएं माना है।

डॉ0 योगेन्द्र सिंह ने जनसाधारण, निरक्षर कृषकों के स्तर पर होने वाली सांस्कृतिक प्रक्रियाओं को लघु परम्परा कहा है।

इस प्रकार वे **परम्पराएं जिनका उल्लेख धर्मग्रन्थों में नहीं मिलता जो अलिखित, अशास्त्रीय, कम व्यवस्थित, कम चिन्तनशील एवं स्थानीय होती हैं, लघु परम्पराएं कहलाती हैं। इनका हस्तान्तरण मौखित रूप से होता है तथा ये अशिक्षित कृषक समुदाय में अधिक पाई जाती है।** अधिकांश व्यक्ति तो उनका वास्तविक अर्थ भी नहीं समझते फिर भी उनका पालन करते हैं।

6.5 वृहत् परम्परा अर्थ एवं परिभाषा

रेडफील्ड ने मैक्सिकों की माया संस्कृति के मन्दिरों एवं प्रसादों के विशाल प्रस्तर निर्मित वास्तु–शिल्प, परिष्कृत कला, खगोल विज्ञान, पचांग, चित्रलिपि में लिखित साहित्य, देवताओं एवं प्राकृतिक शक्तियों तथा धर्म पर आधारित राजव्यवस्थाओं की वृहत् परम्परा के नाम से पुकारा है। रेडफील्ड के अनुसार वृहत् परम्परा स्कूलों और मन्दिरों में पोषित होती है। यह दार्शनिक, ब्रह्मज्ञानी तथा साहित्यिक मनुष्यों की परम्परा होती है जो विचारपूर्वक घोषित तथा हस्तान्तरित की जाती है।

मैकिम मैरियट ने वृहत् परम्परा को परिभाषित करते हुए लिखा है, ''यदि कोई परम्परा प्राचीन धर्म ग्रन्थों में बताए गए व्यवहारों के अनुरूप होती है तथा उसका प्रसार सम्पूर्ण समाज में होता है तो उसे वृहत् परम्परा कहेंगे।''

डॉ0 दूबे के अनुसार, ''वृहत परम्पराओं का अर्थ उन विश्वासों, कर्मकाण्डों तथा सामाजिक प्रतिमानों की संयुक्तता से लिया जाता है जो नियमबद्ध और पवित्र ग्रन्थों से सम्बन्धित होते हैं।''

भारत के सन्दर्भ में वृहत् परम्परा का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा जा सकता है कि देवी–देवता, धार्मिक अनुष्ठान, रीति–रिवाज, मेला, त्यौहार, साहित्य, संगीत तथा विभिन्न सांस्कृतिक तत्व जिनका उल्लेख अखिल भारतवर्षीय धर्मग्रन्थों, वेद–पुराणों, उपनिषदों, रामायण महाभारत, गीता तथा अन्य ग्रन्थों में लिखित रूप में मिलता है, वृहत् परम्परा के अन्तर्गत आते हैं। वृहत् परम्परा का पोषण अभिजात वर्ग के थोड़े–से दार्शनिक एवं चिन्तनशील लोगों द्वारा किया जाता है और धीरे–धीरे उन्हें सभी वर्गों एवं क्षेत्रों के लोगों द्वारा ग्रहण कर लिया जाता है। उदाहरण के लिये,

राम, कृष्ण, हनुमान, विष्णु, ब्रह्मा, शिव, सीता, लक्ष्मी, सरस्वती एवं रक्षाबन्धन, आदि त्यौहारों एवं उत्सवों का उल्लेख प्राचीन धर्मग्रन्थों में पाया जाता है तथा इन्हें भारत के सभी भागों में मानते और मनाते हैं, अतः इन देवी–देवताओं तथा त्यौहारों एवं उत्सवों को वृहत् परम्परा का अंग माना जाता है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि **वे परम्पराएं जिनका उल्लेख हमें धर्मग्रन्थों में मिलता है, जिनकी विषय–वस्तु शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक है, जो लिखित हैं, अधिक व्यवस्थित एवं चिन्तनशील हैं तथा जिनका फैलाव सारे देश में है, वृहत् परम्पराएं कहलाती हैं।**

6.6 वृहत् एवं लघु परम्पराओं में अन्तर

भारत में वृहत् एवं लघु दोनों ही परम्पराएं अति प्राचीन हैं और दोनों की अपनी विशिष्ट विशेषताएं हैं। ये दोनों ही परम्पराएं एक–दूसरे के काफी निकट रही हैं। इनसे सम्बन्धित लोग भी एक–दूसरे के निकट सम्पर्क में रहे हैं। अतः इन दोनों परम्पराओं में निन्तर अन्तः क्रियाओं का होना स्वाभाविक है। फिर भी इन दोनों प्रकार की परम्पराओं में स्पष्ट अन्तर पाया जाता है। **रेडफील्ड** लिखते हैं कि लघु एवं वृहत् परम्पराओं पर मौलिक मूल्यों तथा विश्वदृष्टि के रूप में विचार करने पर ज्ञात होता है कि ये समान ही हैं, फिर भी इनमें भिन्नता पाई जाती है। भारत की लघु परम्पराओं की विश्व दृष्टि बहुदेववादी, जादूवादी तथा आदर्शनिक है, जबकि वृहत् वैदिक परम्परा की विभिन्न धाराओं का बौद्धिक–नैतिक दृष्टिकोण इनसे भिन्न प्रकार का है।

डॉ0 योगेन्द्र सिंह ने दोनों परम्पराओं में अन्तर बताते हुए लिखा है' जनसाधारण व निरक्षर कृषकों के स्तर पर होने वाली सांस्कृतिक प्रक्रियाएं लघु–परम्परा को निर्मित करती है और अभिजात व्यक्तियों के स्तर पर होने वाली सांस्कृतिक प्रक्रियाएं वृहत् परम्परा का निर्माण करती हैं।

1. व्यापकता के आधार पर अन्तर–वृहत् परम्पराओं का विस्तार व्यापक है, उनका राष्ट्रीय स्वरूप पाया जाता है। भारत के सभी वर्गों, जातियों एवं क्षेत्रों में इनका प्रचलन किसी न किसी रूप में अवश्य पाया जाता है, जबकि लघु परम्पराओं का प्रचलन स्थानीय स्तर पर न किसी रूप में अवश्य पाया जाता है, जबकि लघु परम्पराओं का प्रचलन स्थानीय स्तर पर एक क्षेत्र में विशेष में ही होता है। अतः हमें विभिन्न क्षेत्रों में भिनन–भिन्न लघु परम्पराएं देखने को मिलती हैं।

2. लिखित एवं अलिखित के आधार पर अन्तर– वृहत् परम्पराएं अति प्राचीन हैं और उनका उल्लेख हमें धर्म ग्रन्थों, पुराणों, वेदों, उपनिषदों, रामायाण, महाभारत आदि में देखने को मिलता है। वे लिखित होती हैं अतः समान रूप से सारे देश में स्वीकार की जाती है। इनका हस्तान्तरण भी लिखित एवं मौलिक रूप में होता है। दूसरी ओर लघु परम्पराएं अलिखित होती हैं, धर्मग्रन्थों में उनका उल्लेख नहीं पाया जाता और मौखिक रूप से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तान्तरण होता है।

3. प्राचीनता के आधार पर अन्तर– वृहत् परम्पराएं अति प्राचीन एवं पौराणिक होती हैं, उनकी विषय–वस्त में शास्त्रीय तत्व पाए जाते हैं, जबकि लघु परम्पराएं अधिक प्राचीन एवं पौराणिक न होने से शास्त्रीय नहीं होती है।

4. व्यवस्थितता के आधार पर अन्तर– वृहत् परम्पराएं व्यवस्थित होती हैं। धर्मग्रन्थों में उनके नियमों, कर्म–काण्डों एवं निषधों का उल्लेख होता है, अतः उनका स्वरूप निश्चित एवं स्पष्ट होता है। लघु परम्पराएं सुविधाजनक होती हैं, उनसे सम्बन्धित नियम निश्चित, स्पष्ट एवं व्यवस्थित नहीं होते। प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधानुसार उनके पालन में थोड़ा–बहुत हेर–फेर कर लेता है।

5. निर्माण एवं विकास के आधार पर अन्तर– वृहत् परम्पराओं का निर्माण एवं विकास अभिजात वर्ग के चिन्तनशील लोगों द्वारा किया जाता है, इसलिये ही ये अधिक व्यवस्थित एवं स्पष्ट होती है। लघु परम्पराएं गांव के अशिक्षित लोगों द्वारा निर्मित एवं विकसित होती हैं, अतः उनमें चिन्तन, स्पष्टता एवं व्यवस्था का अभाव पाया जाता है।

6. हस्तान्तरण के आधार पर अन्तर– वृहत् परम्पराओं का हस्तान्तरण लिखित रूप में होता है जबकि लघु परम्पराओं का मौखिक रूप में।

डॉ0 बी0 आर0 चौहान ने दोनों में भेद बताते हुए लिखा है, ''वृहत् परम्पराओं की प्रकृति राष्ट्रीय होती हैं, वे लिखित, विषय–वस्तु में शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक, अधिक व्यवस्थित और अधिक चिन्तनशील होती हैं, जबकि इनकी तुलना में लघु परम्पराएं स्थानीय क्षेत्र वाली, अलिखित, अशास्त्रीय, कम व्यवस्थित एवं कम चिन्तनशील होती हैं।'' आपने राजस्थान के गाँव ''राणावतो की सादड़ी'' में किये गये अध्ययन के आधार पर वृहत् परम्पराओं एवं लघु परम्पराओं के अन्तर को इस प्रकार से सारणीबद्ध किया है–

वृहत् परम्पराएँ	**लघु परम्पराएँ**
राष्ट्रीय	स्थानीय
लिखित	अलिखित
विषय वस्तु में शास्त्रीय एवं सांस्कृतिक	अशास्त्रीय
अधिक व्यवस्थित	कम व्यवस्थित
अधिक चिन्तनशील	कम चिन्तनशील

वोन ग्रुनबाम का मत है कि वृहत् परम्पराएं, अभिजात वर्ग द्वारा निर्मित होती हैं, कारण इन्हें अधिक मान्यता प्राप्त होती है। जबकि लघु परम्पराएं लोक जीवन की विशेषता होने के कारण सीमित क्षेत्र में प्रसारित होती हैं। दोनों ही विश्वासों से सम्बन्धित होने पर भी जहां वृहत् परम्परा को 'विश्वास' कहा जाता है वहीं लघु–परम्पराएं, 'अन्ध विश्वास' के रूप में मानी जाती हैं।

मैकिम मैरियट का मत है कि धर्मग्रन्थों के द्वारा निर्दिष्ट व्यवहारों के अनुरूप परम्पराओं को वृहत् परम्पराओं के अन्तर्गत माना जाता है जबकि कृषक समाज के स्तर पर पाई जाने वाली परम्पराओं को लघु परम्पराओं के अन्तर्गत माना जाता है।

6.7 वृहत् एवं लघु परम्पराओं के बीच अर्न्तसम्बन्ध/अन्तक्रिया

मिल्टन सिंगर तथा **मैकिम मैरियट** ने वृहत् एवं लघु परम्परा दोनों ही अवधारणाओं का प्रयोग भारतीय ग्रामों के अध्ययन में किया और इन दोनों की पारस्परिक अन्तःक्रिया का भी उल्लेख किया है। उनके अनुसार ये दोनों परम्पराएं आन्तरिक एवं बाह्य दो सम्पकों द्वारा अन्तःक्रिया करते हैं। **प्रथम स्तर** पर जनसाधारण एवं निरक्षर कृषकों के द्वारा अन्तःक्रिया होती है और

द्वितीय स्तर पर अभिजात तथा चिन्तनशील व्यक्तियों के द्वारा इन दोनों प्रकार की परम्पराओं का सम्पर्क होता है।

प्रथम के अन्तर्गत आने वाली सांस्कृतिक प्रक्रियाएं लघु परम्परा को निर्मित करती हैं और **दूसरे** के अन्तर्गत आने वाली वृहत् परम्परा को। परम्पराओं के इन दोनों स्तरों पर निरन्तर अन्तःक्रिया होती रहती है। उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि लघु परम्परा का सम्बन्ध प्रमुखतः निरक्षर कृषकों और वृहत् परम्परा का चिन्तनशील व्यक्तियों जो संख्या में थोड़े होते हैं, के साथ पाया जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट है कि लघु और वृहत् परम्पराएं एक ओर स्वयं के देशज उद्विकास और दूसरी ओर अन्य सभ्यताओं के साथ बाहरी सम्पर्क के द्वारा विकसित और परिवर्तित होती हैं। इसके अतिरिक्त इन दोनों ही परम्पराओं में परस्पर आदान–प्रदान होता रहता है। ये दोनों संस्कृतियों के मध्य निरन्तर अन्तर क्रियायें चलती रहती हैं। ये सांस्कृतिक कार्य, लघु और वृहत् संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन जाती हैं और संस्था का रूप धारण कर लेती हैं। लघु परम्पराओं का निर्माण ग्रामीण समाज की लोक विशेषताओं से होता है जैसे लोग गीत, लोक कलाकार, ग्रामीण डॉक्टर, कहावत, बुझावल, लोक कहानी, लोक नृत्य आदि। सांस्कृतिक व्यवस्था में परिवर्तन लघु और वृहत् परम्पराओं की परस्पर अन्तर क्रियाओं से होता है। सामान्यतः परिवर्तन लघु परम्पराओं में होता है और जिसकी प्रवृत्ति वृहत् परम्पराओं की ओर बढ़ने की होती है। इससे संपूर्ण सांस्कृतिक प्रतिमान में परिवर्तन होता है।

इस अध्ययन पद्धति में यह मानकर चला गया है कि सभी सभ्यताओं का विकास अपने आरम्भिक चरणों में सांस्कृतिक संगठनों द्वारा होता है और कालान्तर में आन्तरिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप इनमें परिवर्तन आता है किन्तु जब यह बाह्य जगत की अन्य सभ्यताओं और संस्कृति के सम्पर्क में आते हैं तो इनमें कहीं अधिक परिवर्तन होते हैं। परिवर्तन के इस स्वरूप से सर्वव्यापी संस्कृति के प्रतिमान का निर्माण होता है। इन मान्यताओं और अनुमानों के साथ **मिल्टन सिंगर** ने यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारतीय संस्कृति में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। सिंगर का यह विचार है कि भारतीय संस्कृति में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते हैं। सिंगर का यह विचार है कि लघु और वृहत् परम्परायें इनमें मात्र अन्तर क्रियाएँ ही नहीं होती वरन् भारत में यह एक दूसरे पर आश्रित भी रहती हैं। सिंगर अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि आधुनिकीकरण से भारतीय समाज के अनेक आंगों में और संस्कृति में परिवर्तन हो रहे हैं, फिर भी इन्होंने भारतीय संस्कृति की मूल आत्मा को नष्ट नहीं किया है। इसने भारतीयों को एक नया विकल्प दिया है और जीवन–पद्धति के लिये कुछ नयीं चीज़ें चुनने को प्रस्तुत की है। भारतीय ढांचा इतना लचीला और समृद्ध है कि असंख्य भारतीयों ने आधुनिक चीज़ों को स्वीकार किया है किन्तु उनकी भारतीयता में कहीं कमी नहीं आ पायी है। वास्तव में उन्होंने आधुनिक और परम्परात्मक चीज़ों और चुनाव के मध्य सामंजस्य स्थापित किया है।

इसी अध्ययन–पद्धति के आधार पर मैकिम मेरियट ने उत्तर–भारत के एक गांव किशनगढ़ का अध्ययन किया है और यह जानने का प्रयास किया कि इस गांव का सम्बन्ध बाह्य क्षेत्र से कितना है। बाह्य क्षेत्र के प्रभाव के फलस्वरूप इस गांव के सांस्कृतिक प्रतिमान में किस प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं। उन्होंने किशनगढ़ गांव में लघु–परम्पराओं और वृहत् परम्पराओं के तत्वों को वहां के समाज में समाहित देखा। वहां दोनों के मध्य निरन्तर अन्तरक्रियायें होती हैं।

इन्होंने अनेक ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जिससे ज्ञात होता है कि ग्रामीण समाज में अथवा किसी विशिष्ट गांव में लघु परम्परायें और वृहत् परम्परायें किस रूप में पायी जाती हैं। जैसे वे

कहते हैं कि किशनगढ़ी एक पृथक संपूर्ण नहीं है बल्कि ये आन्तरिक विभाजनों द्वारा बंटा हुआ है। इतना ही प्रत्येक खण्ड में सम्बन्धों का एक पृथक जाल देखने को मिलता है जो उसे भाग का निर्माण करता है।

लघु समुदाय और जाति में घनिष्ट सम्बन्ध हैं। इनमें एकता भी है और निरन्तरता भी। जाति–व्यवस्था एक गांव से अनेक गांव में फैली हुई है और यह भारत के वृहत् समुदाय, जिसे वे सामूहिक रूप से मिलकर बनाते हैं, ये लघु समुदायों की प्राचीन अपार्थक्यता के प्रमाणों में शायद आधार भूत (चरम) प्रदान करती हैं।''

किशनगढ़ी गांव में लघु और वृहत् परम्पराओं का कौन–सा स्वरूप प्राप्त होता है। इसका अध्ययन करने का प्रयास किया गया। मेरियट का विचार है कि ''हिन्दू धर्म की वृहत् परम्परा किशनगढ़ी के अधिकांश व्यवहारों के एक अंश के रूप में ही मात्र विद्यमान नहीं हैं, अपितु उत्सवों द्वारा उसने ग्राम जीवन में एकता की स्थिति प्राप्त कर ली है। किशनगढ़ी के मुख्य त्यौहारों के नामों तथा वितरण की इस सादी सूची से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस लघु–समुदाय के उत्सवों में ऐसी कोई बात नहीं है जिसे अवधारणात्मक दृष्टि से सांस्कृतिक महान परम्परा से मान्यता प्राप्त नहीं है। तीसरे, किशनगढ़ी के त्यौहारों तथा उन त्यौहारों, जिन्हें वृहत् परम्परा द्वारा मान्यता प्राप्त है, के मध्य सम्बन्ध स्वयं वृहत् परम्परा के अन्दर प्रत्येक विशिष्ट दिवस के लिये प्रतिस्पर्धा अर्थों की जटिलता के कारण, अक्सर शिथिल, भ्रमपूर्ण अथवा तथ्यहीन हो जाते हैं। चौथे उनके संस्कृतनिष्ठ नामों तथा अनेक वृहत् परम्परागत युक्तियों के पीछे किशनगढ़ी के त्यौहार पर्याप्त संस्कारयुक्त होते हैं जिनका वृहत् परम्परा के साथ कोई स्पष्ट सम्बन्ध नहीं है।''

राबर्ट रेडफील्ड ने लिखा है कि ''बृहत एंव लघु परम्पराएँ विचार तथा कर्म की दो धाराओं के रूप में देखी जा सकती है, जो कि एक दूसरे से पृथक है, किन्तु तब भी एक दूसरे से मिलती हुई तथा एक–दूसरे मे से जो बहती हुई निकलती है। इनके सम्बधों का चित्र लगभग उन तन्तु मानचित्रों (Histromps) जैसाा होगा जो हम कभी–कभी देखते है, अर्थात वे रेखा मानचित्र (Diafraphs) जो धर्मो तथा सभ्यताओं का काल–क्रम में उत्थान और परिवर्तन व्यक्त करते है।''

वृहत् परम्परा सामान्य लोगो तक कैसे पहुँचती थी इस सम्बंध में वी राघवन (V. Raghavan) ने लिखा है कि ''हिन्दू राजा–महाराजा अपने द्वारा बनाये गये मन्दिरों में हिन्दू महाकाव्यों को गाने के लिए बडी–बडी निधियाँ स्थापित करते थे।'' दक्षिण भारत के बारे में उन्होनें लिखा है कि ''वहां हिन्दू राजा ही होता था, बल्कि चलते–फिरते गायक साधु लोग भक्ति गीतों द्वारा इनका प्रसार करते थे। इस प्रकार दार्शनिकों, धार्मिक विचारकों, साधु–सन्तों एंव कथावाचकों के द्वारा बृहत परम्परा को गाँवों के सामान्य लघु परम्परा से सम्बन्धित लोगों तक पहुँचाय जाता था।''

जहाँ वृहत परम्पराओं की उप–कल्पनाओं को विश्वास माना जाता है, वहाँ लघु परम्पराओं की उप कल्पनाओं को अन्धविश्वास माना जाता है। यथार्थ में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति इस पर निर्भर करती है कि वह इन दो लघु परम्पराओं में से किसे अपने जीवन में स्वीकारने का निश्चय करता है। इस प्रकार आपके अनुसार बृहत एवं लघु परम्पराएँ एक–दूसरे की पूरक है तथा इनमें अन्तःक्रिया होती रहती है।

रेडफील्ड ने एक उदाहरण देकर स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि किस प्रकार बृहत परम्परा का विकास होता है एवं फिर किस प्रकार उस परम्परा के साँस्कृतिक तत्व लघु परम्परा के रूप में गाँवों तक में पाये जाते है। रेडफील्ड इसके लिए भारत के एक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ 'रामायण' को लेते है।[1] आपके अनुसार वाल्मिकी नामक एक कवि ने भौतिक कहानियों या दन्तकथाओं के आधार पर इस महाकाव्य की रचना की थी और उससे यह कथा भारत की उच्च परम्परा का अंग बन गई। नवी शताब्दी से लेकर सोलहवीं शताब्दी तक इसका अनुवाद भारत की अनेक जन–भाषाओं में हुआ और उन अनूदित रूपों में इसका साँस्कृतिक संरचना के व्यावसायिक गायको ने गायन और प्रचार किया। सोलवीं शताब्दी में तुलसीदास नामक सन्त ने इसको हिन्दी भाषा में लिखा, जो कि अनेक ग्राम–पर्वो एवं त्यौहारो के अवसर पर पढ़ी लाने लगी। उच्च साँस्कृतिक परम्परा के इस व्याख्याकार ने एक प्रकार के मूल–स्रोत–ग्रन्थ की रचना की। ऐसा कहा जाता है कि भारतीय ग्रामों में यह ग्रन्थ उससे भी अधिक प्रचलित है, जितनी की इंग्लैण्ड के ग्रामों में बाईबिल, किन्तु समय बीतने के साथ ग्रामवासियों के लिए तुलसीदास की हिन्दी कठिन हो गई। उन्होनें अपने स्थानीय प्रचलित शब्द इसमें मिला दिये। अब भारतीय ग्राम में इस मूल ग्रन्थ को समझनें के लिए व्याख्याकार की आवश्यकता होती है। यह व्याख्या 'रामलीला' के त्यौहाार के अवसर पर की जाती है।

भारत में लघु एवं वृहत् परम्पराओं में निरन्तर और बहुमुखी अन्तःक्रिया होती रहती है। यही वृहत् परम्परा से सम्बन्धित चिन्तनशील और सभ्य मस्तिष्कों के विचार और उपदेश लघु परम्परा से सम्बन्धित कृषक–समाजों के त्यौहारो, अनुष्ठानों एवं आदर्शो में स्पष्टतः दिखाई पड़ते है। इसका यह आशय नही है कि लघु परम्परा ही वृहत् परम्परा से ग्रहण करती है। वास्तव में वृहत् परम्परा भी लघु परम्परा से अनेक तत्व ग्रहण करती है और उन्हे अपने में एकीकृत कर लेती है। लघु एवं वृहत् परम्परा में आदान–प्रदान की इस प्रवृत्ति को जानने के लिए हमें संस्कृति के प्रवाह की दिशा में जानना होगा। यह दिशा वृहत् परम्परा से लघु परम्परा की ओर एवं लघु से वृहत् से परम्परा की ओर है। इतना अवश्य है कि वर्तमान समय में लघु परम्परा तुलनात्मक दृष्टि से वृहत् परम्परा से सम्बन्धित अभिजात लोगों से अनेक भौतिक सुख–सुविधाओं की वस्तुओं को ग्रहण किया है, उन पर अभिजात संस्कृति का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। धार्मिक क्षेत्र में भी जन साधारण में प्रचलित कुछ अवधारणाएँ, जैसे–पाप–पुण्य, स्वर्ग–नरक, आत्मा तथा ब्रह्म, पुनर्जन्म आदि वृहत् परम्परा के ही तत्व है, जिन्हे लघु परम्परा ने अपने में आत्मसात् कर लिया है। रामायण और महाभारत से सम्बन्धित अनेक कथानकों को लेकर ग्रामीण क्षेत्रों में प्रदर्शित किये जाने वाले नाटक वृहत् परम्परा और साँस्कृतिक प्रवाह को की व्यक्त करते है। रासलीला, रामलीला तथा अनेक अन्य धार्मिक नाटक ग्रामीण क्षेत्रों में जन–साधारण जन–साधारण में काफी लोकप्रिय है।

संस्कृति का यह प्रवाह केवल वृहत् से लघु परम्परा की ओर ही नही हुआ है, बल्कि लघु से वृहत् परम्परा की ओर भी इसका विकास हुआ है। कृषक समाजों से प्राप्त तथ्य यह प्रमाणित करते है कि वृहत् परम्परा भी लघु परम्परा से कुछ तत्वों को निरन्तर ग्रहण कर रही है, यद्यपि लघु परम्परा की तुलना में कम मात्रा में। अभिजात लोगों की पोशाक, वेशभूषा, उनके खेल–कूद, चित्रपट, गायन, नृत्य, विश्वास, अन्धविश्वास तथा जीवन से सम्बन्धित लघु परम्परा से काफी कुछ ग्रहण किया है। ग्रामीण ढ़ंग का पहनावा, लोक–गीत तथा लोक–नृत्य अभिजात लोगों में काफी लोकप्रिय होते जा रहे है।

यद्यपि वृहत् परम्परा से सम्बन्धित अभिजात लोग लघु परम्परा से सम्बन्धित जन–साधारण लोगों की तुलना में अधिक तार्किक एवं ज्ञानसम्पन्न है, परन्तु फिर भी उन पर लघु परम्परा में प्रचलित विश्वासों और अन्धविश्वासों का स्पष्ट दिखाई पडता है। लोग नवीन ढ़ंग के बने बंगलों एवं विशाल कोठियों को 'नजर लगाने' से बचाने के लिए उसके ऊपरी भाग पर काली मिट्टी के बर्तन या कोई ऐसा ही चेहरा लटका देते है। अभिजात लोग भी शकुन–अपशकुन में विश्वास करते है। इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि साँस्कृतिक प्रवाह की दिशा वृहत् परम्परा से लघु परम्परा की ओर ही नही वरन् लघु परम्परा से वृहत् परम्परा की ओर भी है। यह अवश्य स्वीकार करना पडेगा कि लघु परम्परा वृहत् परम्परा से जितना ग्रहण कर रही है उतना वृहत् परम्परा लघु परम्परा से नही।

6.8 समीक्षा :

डॉ0 श्यामाचरण दुबे एवं कुछ अन्य समाजशास्त्रियों ने लघु एवं वृहत् परम्पराओं के रूप में परम्पराओं के द्वि–भागीकरण की आलोचना की है। डॉ0 दूबे का मानना है कि लघु एवं वृहत् परम्पराओं की अवधारणा के आधार पर साँस्कृतिक परिवर्तनों का विश्लेषण सन्तोषप्रद नहीं है, क्योंकि भारत में परम्पराओं का संगठन 'द्विध्रुवीय (Bipolar) व्यवस्था के रूप मे न होकर 'बहुध्रुवीय' (Multi-polar) व्यवस्था के रूप में हुआ है।

डॉ0 दूबे का कहना है कि ''जहाँ तक लघु एवं वृहत् परम्पराओं का सवाल है, इनकी कोई निश्चित परिभाषा नही दी जा सकती। जहाँ एक से अधिक वृहत् या अनेक वृहत् परम्परायें है, उनमें से प्रत्येक के अपने प्रमाणित ग्रन्थ एवं नैतिक आचार–संहिताएँ है, जो परिस्थिति की ओर अधिक उल्लंघनपूर्ण बना देती है। इतना और कहा जा सकता है कि वृहत् एवं लघु परम्पराओं का संदर्भ ढ़ाँचा क्षेत्रीय, पश्चिमी एवं उभरती हुई राष्ट्रीय परम्पराओं, जिनमें से प्रत्येक अपने तरीके से शक्तिशाली है, की भूमिका एवं महत्व के मनन के लिए समुचित क्षेत्र प्रदान नही करता''।

डॉ0 दुबे ने उपर्युक्त संदर्भ ढ़ाँचे के विकल्प के रूप में परम्पराओं का वर्गीकरण छः रूपों में किया है–1) शास्त्रीय परम्परा, 2) उभरती हुई परम्परा, 3) क्षेत्रीय परम्परा, 4) पश्चिमी परम्परा, 5) सामाजिक समूहों की स्थानीय परम्पराएँ एवं 6) उप–साँस्कृतिक परम्पराएँ।

डॉ0 दुबे का वर्गीकरण भारतीय साँस्कृतिक वास्तविकताओं का अधिक प्रतिनिधित्व करता है और विश्लेषण के लिए यह उत्तम संदर्भ प्रस्तुत करता है। उनके अनुसार इनमें से प्रत्येक प्रकार की परम्परा का अध्ययन ग्रामीण एवं नगरीय संदर्भो में किया जाना चाहिए।

6.9 अभ्यास प्रश्नः

1. लघु एवं वृहत् परम्परा की अवधारणा का प्रयोग सर्वप्रथम किस विद्वान ने किया?

अ) मैकिम मेरियट ब) रॉबर्ट रेडफील्ड स) बी0आर0 चौहान द) प्रा0 योगेन्द्र सिंह

2. रॉबर्ट रेडफील्ड ने परम्परा की अवधारणा का प्रयोग किया है।

अ) सामाजिक संरचना के विश्लेषण के लिये ब) सामाजिक व्यवस्था के विश्लेषण के लिए स) सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए द) उपरोक्त में से कोई नही

3. अभिजात या चिन्तनशील लोगों की परम्पराएँ है–

अ) वृहत् परम्परा ब) लघु परम्परा स) दोनों द) दोनों में से कोई नही

4. लोक या निरक्षर कृषकों की परम्पराएँ है–

अ) लघु परम्परा ब) वृहत् परम्परा स) ग्रामीण परम्परा द) नगरीय परम्परा

5. 'यदि कोई परम्परा प्राचीन धर्म ग्रन्थों में बताए गए व्यवहारों के अनुरूप होती है तथा उसका प्रसार सम्पूर्ण समाज में होता है तो उसे वृहत् परम्परा कहेंगे'' यह कथन किसका है?

अ) रॉबर्ट रेडफील्ड ब) डॉ0 ए0सी0 दुबे स) डॉ0 योगेन्द्र सिंह द) मैकिम मेरियट

6. वे परम्पराएँ जिनका उल्लेख हमें धर्मग्रन्थों में मिलता है कहलाती है–

अ) लघु परम्परा ब) वृहत् परम्परा स) दोनों द) दोनों में से कोई नही

7. स्थानीय, अलिखित परम्परा है–

अ) प्राचीन परम्परा ब) वृहत् परम्परा स) लघु परम्परा द) उपरोक्त में से कोई नही

8. राष्ट्रीय, लिखित परम्परा है–

अ) वृहत् परम्परा ब) लघु परम्परा स) नगरीय परम्परा द) उपरोक्त में से कोई नही

9. मॉर्डनाईजेशन ऑफ एन इण्डिया ट्रेडिशन किसकी पुस्तक है–

अ) वृहत् परम्परा ब) लघु परम्परा स) नगरीय परम्परा द) उपरोक्त में से कोई नही

10. 'विलेज इण्डिया' किसकी पुस्तक है–

अ) रॉबर्ट रेडफील्ड ब) ए0सी0दुबे स) मैकिम मेरियट द) बी0आर0 चौहान

11. वृहत् परम्परा को जाना जाता है–

अ) लोक परम्परा से ब) अभिजात परम्परा से स) ग्रामीण परम्परा से द) उपरोक्त सभी

12. लघु परम्परा को जाना जाता है–

अ) लोक परम्परा से ब) अभिजात परम्परा से स) नगरीय परम्परा से द) उपरोक्त सभी

13. मौखिक रूप से पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरित होती है–

अ) वृहत् परम्परा ब) अभिजात परम्परा स) लघु परम्परा द) पश्चिमी परम्परा

14. 'ट्रेडिशन एण्ड मोर्डनिटी इन इण्डिया' किसकी कृति है–

अ) मोरिस गिन्सबर्ग ब) रॉबर्ट रेडफील्ड स) एम0एन0 श्रीनिवास द) योगेन्द्र सिंह

15. मैकिम मेरियट के अध्ययन का क्षेत्र कौन सा गांव था–

अ) किशनगढ़ी ब) शमीर परे स) श्रीपुरम द) उपरोक्त में से कोई नही

16. लघु परम्परा की उपकल्पना माना जाता है–

अ) विश्वास ब) अन्धविश्वास स) उपनिषद द) उपरोक्त सभी

17. वृहत् परम्परा की उपकल्पना माना जाता है–

अ) अन्धविश्वास ब) विश्वास स) उपरोक्त दोनों द) उपरोक्त में से कोई नही

6.10 साँराश–

किसी भी गांव में लघु परम्परा और वृहत् परम्परा दोनों के तथ्य देखे जा सकते है। किन्तु यह आवश्यक नही है कि परम्परा का अभाव गाँव के सभी अंगों पर समान रूप से पड़ता है। मेरियट का अध्ययन इस तथ्य को उद्घाटित करता है कि चाहे सामाजिक संरचना हो, अथवा जाति, धर्म, संस्कार आदि की, उस पर लघु परम्परा और वृहत् परम्परा का न्यूनाधिक प्रभाव किसी न किसी रूप में देखा जा सकता है। किन्तु ऐसे भी तीज–त्यौहार होते है जो स्थानीय होते है और वे वृहत् परम्परा से प्रभावित नही हुए होते है। उदाहण के लिये किशनगढ़ी के 19 ग्राम–त्यौहारों में से 15 त्यौहार एक या एक से अधिक धार्मिक ग्रन्थों द्वारा मान्यता प्राप्त है। इसका अर्थ यह हुआ कि 4 ऐसे त्यौहार हैं जो विशुद्ध लघु परम्परा की देन हैं और उसपर वृहत् परम्परा का कोई प्रभाव नहीं पड़ा है। अन्त में निष्कर्ष रूप में मेरियट जी लिखते हैं कि ''किशनगढ़ी के धर्म में वृहत् तथा लघु परम्पराओं के वर्तमान संयोग के पीछे जो भी प्रक्रिया रही हों, गांव के लोग अब दोनों परम्पराओं को प्राचीन तथा देशी परम्परा के रूप में मानते हैं।'' उदाहरण के लिये किशनगढ़ी की चार मुख्य जातियों में से तीन 15 देवी–देवताओं की पूजा करते हैं। इनमें 7–8 देवी–देवताओं की वृहत–परम्परा के रूप में माना जाता है। इस तरह त्यौहारों के समान वृहत–परम्परागत तत्व किशनगढ़ी के इस लघु समुदाय के देवताओं में महत्वपूर्ण भूमिका अभिनीत करते हैं।

6.11 शब्दावली

परम्परा– परम्परा, परिपाटियों का एक पुंज है जो कुछ व्यवहार सम्बन्धर मानदण्डों और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाये जाने या सम्पन्न किये जाने पर बल देती है कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। बहुधा इन परम्पराओं के साथ व्यापक रूप से स्वीकृत कर्मकाण्ड या प्रतीकात्मक व्यवहार के अन्य स्वरूप जुड़े होते है। परम्परा में हस्तान्तरण या संचरण की प्रक्रिया निहित होती है। जिसके द्वारा एक समाज अपनी सँस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखता है।

6.12 अभ्यास प्रश्नो के उत्तर

1) अ 2) स 3)अ 4)अ 5)द 6)ब 7)स 8)अ 9)ब 10)स
11) ब 12) अ 13) स 14) द 15) अ 16) ब 17) ब

6.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ0 वी0एन0 सिंह, जनमेजय सिंह (2013) 'ग्रामीण समाजशास्त्र' विवेक प्रकाशन, पेज नं0–47

डॉ0 एम0एल0 गुप्ता, डॉ0 डी0डी0 शर्मा, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र साहित्य भवन पब्लिकेशन, पेज नं0 138–141

डॉ0 एम0एम0 लवानिया, शशी के जैन, ग्रामीण समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, पेज नं0 97–102

डॉ0 वीरेन्द्र सिंह (1988) ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, पेज नं0 107–110

6.14 सहायक उपयोगी पाठ्यक्रम

ए0आर0 देसाई – भारत में ग्रामीण समाजशास्त्र

बृजराज चौहान 1989 – ग्रामीण भारत

6.15 निबन्धात्मक प्रश्न

1. लघु तथा वृहत् परम्परा की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए। ग्रामीण संस्कृति को समझने में वे कहाँ तक सहायक है?
2. वृहत् और लघु परम्पराओं को स्पष्ट कीजिए एवं दोनों में अन्तर बताइये?

लघु एव वृहत् परम्पराओं के मध्य अन्तःक्रिया का उल्लेख कीजिए?

इकाई–7 : स्थानीयकरण एवं सार्वभौमिकरण
Parochialisation & Universalization

इकाई की रूपरेखा

7.1 उद्देश्य
7.2 प्रस्तावना
7.3 स्थानीयकरण
- अवधारणा
- स्थानीयकरण का अर्थ
- स्थानीयकरण की विशेषताएँ
- स्थानीयकरण के उदाहरण
- स्थानीयकरण के कारण
- समीक्षा

7.4 सार्वभौमिकरण अवधारणा
- सार्वभौमिकरण का अर्थ
- सार्वभौमिकरण की विशेषताएँ
- सार्वभौमिकरण के उदाहरण
- सार्वभौमिकरण के कारण
- सार्वभौमिकरण एवं स्थानीयकरण में अन्तर

7.5 अभ्यास प्रश्न
7.6 सारांश
7.7 शब्दावली
7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची
7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री
7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 उद्देश्य

इस अवधारणा के अध्ययन के उपरान्त आप –

- समझ पाएंगे कि स्थानीयकरण एवं सार्वभौमिकरण क्या है।
- स्थानीयकरण एवं सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया की विवेचना कर भारतीय ग्रामीण व्यवस्था को समझा जा सकता है।
- स्थानीयकरण एवं सार्वभौमिकरण एक दूसरे से अन्तः सम्बन्धित होते हुए भी पृथक–पृथक है।

7.1 प्रस्तावना

लघु एवं वृहत् परम्पराओं के आधार पर रॉबर्ट रेडफील्ड ने मेक्सियन समुदाय का अध्ययन प्रस्तुत किया इस अध्ययन का उद्देश्य यह जानना था कि अमुक संस्कृति में किस प्रकार के परिवर्तन घटित हो रहे हैं अध्ययन की इस पद्धति से मैकिम मेरियट और मिल्टन सिंगर काफी प्रभावित हुए और उन्होंने इस अध्ययन पद्धति को किशनगढ़ नामक गांव में प्रयोग किया है। इस अध्ययन पद्धति का मुख्य उद्देश्य सभ्यता और परम्परात्मक सामाजिक संगठन का अध्ययन करना था।

रॉबर्ट रेडफील्ड ने भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए परम्परा की अवधारणा का प्रयोग किया है। जो समाज सभ्यता की दृष्टि से काफी विकसित रहे है, और जिनका एक लम्बा इतिहास है, उनके सम्बन्ध में **रेडफील्ड** ने सांस्कृतिक और सामाजिक संगठनात्मक स्तरों के क्रमों को प्रस्तावित किया है, जिनके आधार पर परिवर्तन की प्रक्रिया का विश्लेषण किया जाना चाहिए। आपने बताया है कि प्रत्येक सभ्यता परम्पराओं से निर्मित होती है, एक और अभिजात लोगों की या थोडे से चिन्तनशील लोगों की परम्पराएं आती है और दूसरी ओर लोक या निरक्षर कृषकों की परम्पराएं। पहले वाली को आपने वृहत् (दीर्घ) परम्परा (Great Tradition) और बाद वाली को लघु परम्परा (LittleTradition) के नाम से पुकारा है। प्रत्येक परम्परा का अपना स्वयं का सामाजिक संगठन होता है, अर्थात संस्थागत भूमिकाएं, प्रस्थितियाँ तथा कार्यकर्ता होते है। दोनो परम्पराएं एक साथ एक ऐसी विश्व दृष्टि (World-View) के प्रतीक के रूप में समझी जाती हैं, जो एक सभ्यता की एकता का प्रतिनिधत्व करती है। रेडफील्ड के उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि लघु परम्पराओं का प्रतिनिधित्व जन–साधारण या निरक्षर कृषक और वृहत् परम्पराओं का अभिजात या चिन्तनशील लोग करते है। दानो ही परम्पराएं मिलकर एक ऐसी विश्व–दृष्टि का प्रतिपादन करती है जिसके माध्यम से सभ्यता की एकता प्रकट होती है।

7.3 स्थानीयकरण अवधारणा

- रॉबर्ट रेडफील्ड ने भारत में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया के विश्लेषण के लिए परम्परा की अवधारणा का प्रयोग किया और बतलाया कि प्रत्येक सभ्यता परम्पराओं से निर्मित होती है। एक ओर अभिजात लोगों की या थोडे–से चिन्तनशील लोगों की परम्पराएं आती है, जिन्हे हम वृहत् परम्परा (Great Tradition) कहते है एवं दूसरी ओर लोक या निरक्षर कृषकों की परम्पराएँ आती है, जिन्हे हम लघु परम्परा (LittleTradition) कहते हैं। स्थानीयकरण की अवधारणा को समझने के लिए हम यह जान ले कि इन दोनों परम्पराओं के मध्य एक प्रकार का सह–सम्बन्ध पाया जाता है। ये दोनों परम्पराएँ एक दूसरे में परिवर्तित होती रहती है। मैकिम मैरियट ने लघु तथा वृहत् परम्पराओं के मध्य स्पष्ट होने वाली अन्तः क्रिया को स्पष्ट करने के लिए इन दो अवधारणाओं को प्रयोग किया–
  1. स्थानीयकरण या ग्राम्यीकरण (Parochialisation) एवं
  2. सार्वभौमिकरण (Universalisation) ।

  इन अवधारणाओं का प्रयोग मैकिम मेरियट ने लघु परम्परा एवं वृहत् परम्परा में आदान प्रदान की प्रक्रिया की व्याख्या करने के लिए किया। स्थानीयकरण के

सम्बन्ध में मैकिम मेरियट ने यह लिखा है कि साहित्यिक स्वरूपों आदि को स्थानीय बनाने की यह एक प्रक्रिया है।

- **स्थानीयकरण का अर्थ**

सामान्यता आंग्ल भाषा के शब्द (Parochial) का आशय संकीर्णता या देहातीकरण से लगाया जाता है। इस प्रकार शाब्दिक रूप ने कोई भी वह प्रक्रिया, जो समूह की भावना को संकीर्ण (Rigid) बनाती है अर्थात् व्यक्ति को पिछड़ेपन की ओर ले जाती है अथवा समूह में ग्रामों की स्थानीय विशेषताओं को उत्पन्न करती है, उसे हम स्थानीयकरण की प्रक्रिया कहते हैं। वैसे तो स्थानीयकरण की प्रक्रिया का सर्वप्रथम उल्लेख मोरिस ओपलन ने किया था, लेकिन बाद में मैकिम मेरियट ने जिस रूप में इसकी विवेचना की उसमें संकीर्णता को अधिक महत्व न देकर स्थानीय धार्मिक विश्वासों को अधिक महत्व दिया गया है।

मैकिम मेरियट का मानना है कि अनेक संस्कृतियां जब काफी समय से चली आ रही होती है और वे काफी पुरानी हो जाती हैं तो उनका वृहत् परम्पराओं में परिवर्तन होने लगता है तब साधारणतया ऐसी परम्पराओं को स्थानीय विश्वासों और आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित किया जाने लगता है अर्थात् शैनः शनैः वृहत् परम्परा के अनेक तत्व लघु परम्परा के रूप में विकसित हो जाते हैं। फलस्वरूप किसी भी स्थानीय परम्परा के मूल स्वरूप, उसकी अपयोगिता तथा धर्म–ग्रन्थों से उसके सम्बन्धों को समझना बहुत कठिन हो जाता है। स्वयं एक ही गांव के व्यक्ति भी ऐसी परम्परा के बारे में न तो अधिक जानकारी दे पाते हैं और न ही वे उस जानकारी के प्रति एकमत ही होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वृहत् परम्परा से सम्बन्धित विभिन्न विश्वास विभिन्न स्थानों एवं क्षेत्रों की पृथक सांस्कृतिक विशेषताएं बनकर भिन्न–भिन्न रूप ग्रहण कर लेती हैं। इसी आधार पर मैकिम मेरियट कहते हैं कि जब वृहत् परम्परा में गांव की स्थानीय विशेषताओं का समावेश होने लगता है तब इस प्रक्रिया को हम स्थानीयकरण या ग्राम्यीकरण (Parochialisation) की प्रक्रिया कहते हैं। जब स्थानीय विश्वास एक वृहत् या दीघ्र परम्परा के प्रसार में बाधा डालकर उसके क्षेत्र में सीमित कर देते हैं, तो उसे हम स्थानीयकरण या ग्राम्यीकरण की प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है।

मैकिम मेरियट ने स्थानीयकरण की अवधारणा को परिभाषित करते हुए लिखा है कि वृहत् परम्परा के तत्वों का नीचे की ओर बढ़ना तथा उनका लघु परम्परा के तत्वों से मिल जाना ही स्थानीयकरण की प्रक्रिया कहलाती है। मेरियट की इस परिभाषा से स्पष्ट है कि यदि वृहत् परम्परा लघु परम्परा के विकास को रोकना चाहे तो अनेक छोटी और पूर्णतः काल्पनिक परम्पराएं इन वृहत् परम्पराओं के विकास में बाधा डालकर उनके प्रभाव को कम कर देती हैं। इसके फलस्वरूप वृहत् परम्पराओं के अन्तर्गत अनेक छोटी–छोटी स्थानीय परम्पराओं का विकास हो जाता है। वस्तुतः यह संस्कृति का अप–विकास (Downward Devolution) अथवा हासोन्मुख परिवर्तन है, जिसे हम स्थानीयकरण या ग्राम्यीकरण की प्रक्रिया कहते हैं। वास्तव में मेरियट ग्राम्यीकरण का प्रयोग व्यापक अर्थ में करते हैं जबकि रेडफील्ड और सिंगर ने इसका प्रयोग संर्कीण अर्थों में किया है। अपनी बात स्पष्ट करते हुए मेरियट लिखते हैं, 'रेडफील्ड तथा सिंगर अपने लेख में सर्व 'देशीकरण' के पद का मात्र सांस्कृतिक चेतना के सर्व वेशीयकरण की वर्णन पद्धति में करते हैं। इस विषय के बाद में इस पद का प्रयोग, केवल सांस्कृतिक चेतना के लिये नहीं अपितु सांस्कृतिक विषय वस्तुओं को आगे बढ़ाने तथा ऊंचा उठाने हेतु व्यापक अर्थ में प्रयोग करता हूं।

- **स्थानीयकरण की विशेषताएं**

➢ स्थानीयकरण की अवधारणा को इसकी विशेषताओं के आधार पर और स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है।

1. स्थानीयकरण की प्रक्रिया द्वारा वृहत् परम्परा के तत्व किसी स्थान की लघु परम्परा में जुड़ने लगते हैं।
2. स्थानीयकरण की प्रक्रिया लघु समुदायों की रचनात्मक शक्ति को प्रकट करती है।
3. स्थानीयकरण की प्रक्रिया वृहत् परम्पराओं को उनके मूलरूप से दूर ले जाती है अर्थात् जिस रूप में उनका उल्लेख धर्मग्रन्थों में है, उसे वह परिवर्तित करके नया रूप प्रदान करती है जो स्थानीय होता है।
4. स्थानीयकरण की प्रक्रिया में वृहत् परम्पराएं अपना व्यवस्थित रूप खोकर कम व्यवस्थित एवं कम विचारपूर्ण हो जाती है।
5. स्थानीयकरण की प्रक्रिया के द्वारा वृहत् परम्पराओं में होने वाले परिवर्तन को बुद्धि एवं तर्क के द्वारा स्पष्ट नहीं किया जा सकता।
6. स्थानीयकरण की प्रक्रिया में वृहत् परम्परा का साहित्यिक स्वरूप समाप्त हो जाता है।
7. स्थानीयकरण की प्रक्रिया में वृहत् परम्पराएं संकुचित होने लगती हैं, उनका राष्ट्रीय एवं सामूहित स्वरूप स्थानीय रूप ग्रहण करने लगता है। वे एक छोटे समूह के विचारों, विश्वासों, भावनाओं एवं व्यवहारों को प्रकट कराती हैं।

- **स्थानीयकरण के उदाहरण**

इस प्रक्रिया को समझाने के लिये मैकिम मैरियट द्वारा दिये गये दो उदाहरणों का सहारा लिया गया है

➢ **गोवर्धन पर्व** :– किशनगढ़ी गांव के लोग गोवर्धन पर्व के सम्बन्ध में दो कथाएं (कहानियाँ) जानते हैं। दोनों ही कहानियां दसवीं शताब्दी के संस्कृत ग्रन्थ भागवत पुराण से ली गयी हैं। इस संस्कृत पुस्तक का सार उन्नीसवीं शताब्दी की हिन्दी में लिखी गयी पुस्तक 'प्रेम सागर' (लल्लूलाल, 1897 : 1–2) में मिलता है। इसमें श्रीकृष्ण के जीवनचरित्र और साहसिक कार्यों का उल्लेख किया गया है। इस वृहत् परम्परा से सम्बन्धित ग्रन्थ की कहानी गोवर्धन पूजा के महत्व को प्रकट करती है। वास्तव में किशनगढ़ी से चालीस मील दूर गोवर्धन पर्वत स्थित है। कहानी के अनुसार श्रीकृष्ण ब्रज के ग्वालों को इन्द्र की पूजा करने, जो काफी दूर है, के बजाय नजदीक गोवर्धन पर्वत की पूजा करने को कहते हैं। ग्वाले कृष्ण की बात को मानकर ऐसा ही करते हैं। इस पर इन्द्र क्रोधित होकर ग्वालों और उनके पशु–धन (गायों, आदि) को नष्ट करने के लिये मूसलाधार वर्षा करते हैं। कृष्ण गोवर्धन पर्वत उठा लेते हैं और सभी ग्वाले, आदि अपने पशुओं सहित उस पर्वत के नीचे खड़े होकर अपनी रक्षा करते हैं तथा सभी बच जाते हैं। मथुरा जिले में अब गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा तथा पूजा का एक वार्षिक उत्सव मनाया जाता है।

जब उपरोक्त वृहत् परम्परागत गाथा किशनगढ़ी के एक त्यौहार में सांस्कारिक स्वरूप तक पहुंची तो इसमें बहुत–सी ऐसी बातें जुड़ गयीं जिनका वृहत् परम्परा से कोई सम्बन्ध नहीं था। गांव वालों ने इस गाथा के संकुचित स्वरूप को ग्रहण कर लिया है। 'गोवर्धन' (Cow Nourisher) ग्रामीण व्युत्पत्ति को रूप में, गोबर–धन (Cowdung-

wealth) अर्थात् (Gobardhan) बन गया है। भागवत पुराण में वर्णित गोवर्धन पर्वत किशनगढ़ी को प्रत्येक परिवार के आंगन में गोबर के पर्वत के रूप में दिखलाई पड़ता हे। इस गोबर में बने हुए पर्वत को तिनके एवं रूई के बनाये गये पेड़ों से सजाया जाता है। गोबर की बनी दीवारों के भीतर परिवार के गाय, बैल, भैंस और यहां तक कि परिवार के ग्वाले, पशुओं का चारा खिलाने की नांद, दूध निकालने के बर्तन, पशुओं को पानी पिलाने का स्थान, आदि भी गोबर से संकेत रूप में बनाये जाते हैं। इस दिन परिवार के ग्वाले को एक रूपया भी दिया जाता है। स्त्रियां तथा बच्चे इस गोवर्धन के पर्वत के निर्माण का काम दिन में ही पूरा कर लेते हैं। संध्या समय प्रत्येक परिवार के सभी सगोत्री लोग सम्मिलित रूप से इस पर्वत की पूजा करते हैं, पर्वत को मध्य भाग में एक दीपक जलाते हैं, पर्वत के चारों ओर बनाये गये पेड़ों पर धागा लपेटते हैं और पितामह गोवर्धन के दीर्घायु होने हेतु नारे लगाते हैं। दूसरे दिन गोबर की इस प्रतिमा को तोड़ दिया जाता है, इसके अवशोषों को ईंधन के रूप में काम में लिया जाता है और कुछ भाग बचा कर होली के दहन के समय जलाने के लिये सुरक्षित रख लिया जाता है। गोवर्धन पर्व के उदाहरण के माध्यम से मैकिम मैरियट ने यह समझाने का प्रयत्न किया है कि जब वृहत् परम्परा के सांस्कृतिक तत्वों की गति नीचे की ओर की होती है और इस यात्रा के दौरान उनका रूप बदल जाता है और वे लघु परम्परा में एकीकृत हो जाते हैं, तो इस प्रक्रिया को स्थानीयकरण के नाम से पुकारते हैं।

- **नवदुर्गा या नवरात्रि (नौरता) पूजाः**– इस प्रक्रिया के एक अन्य उदाहरण के रूप में मैकिम मैरियट ने दशहरे के अवसर पर मनाये जाने वाले त्यौहार नवदुर्गा या नवरात्रि का उल्लेख किया है। सम्पूर्ण भारत में नवरात्रि के दिनों में वृहत् परम्परा से सम्बन्धित काली, दुर्गा, अम्बा, पार्वती, आदि की पूजा की जाती है जिनके फैलाव का क्षेत्र सारा देश है। वृहत् परम्परा से सम्बन्धित नवरात्रि के पर्व का रूप किशनगढ़ी गांव तक पहुंचते पहुंचते बदल गया और यहां नवरात्रि शब्द के अपभ्रंश 'नौरता' नामक एक नवीन देवी को ये लोग पूजने लगे। नवरात्रि से एक नवीन शब्द नौरता बन गया जिसने इस ग्राम में देवी का रूप ग्रहण कर लिया। नौ दिनों तक दशहरे के अवसर पर स्त्रियां और लड़कियां प्रत्येक दसवें घर के बाहर दीवार पर गोबर एक मिट्टी की भिन्न–भिन्न प्रकार की प्रतिमाएं प्रतिदिन बनाती हैं, संध्या समय वहां दीपक जलाती हैं, इस नौरता देवी की पूजा करती हैं और गीत गाती हैं। मैकिम मैरियट ने बताया कि इस प्रकार किशनगढ़ी में नौ–दुर्गा का त्यौहार भारतीय सभ्यता के अन्तर्गत लघु समुदायों की निरन्तर सृजनात्मकता का उदाहरण प्रस्तुत करता है। वृहत् तथा लघु परम्पराओं के मध्य सम्पर्क में मात्र, अर्थ की हानि तथा भाषा सम्बन्धी भ्रम के कारण एक नवीन लघु देवी की उत्पत्ति हुई है। अतः मैरियट के अनुसार नौरता एक संकुचित देवी (Parochial Goddess) है।

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि स्थानीयकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूप कई स्थानीय परम्पराओं एवं विश्वासों का उदय होता है। आपके अनुसार नौरता नवरात्रि अर्थात् दुर्गा का ही एक अन्य वैकल्पिक नाम है जिसकी नवरात्रि काल में पूजा होती है। लघु परम्परा से सम्बन्धित लोग (जनसाधारण) सुविधा की दृष्टि से ही देवी–देवताओं के सामान्यतः वैकल्पिक नाम रखते हैं।

- **स्थानीयकरण के कारण**

ग्राम्यीकरण के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं जिन्हें अग्रलिखित बिन्दुओं के माध्यम से जाना जा सकता है :–

1. धार्मिक शास्त्रीय ग्रन्थों से अनभिज्ञता:– भारतीय ग्रामीण सीधा, सरल, अशिक्षित है। वे धार्मिक ग्रन्थों से न तो परिचित हैं और न उनके बारे में वे जानते हैं। जैसा इन्हें पुरोहित समझा देते हैं वैसा ये समझ जाते हैं। इसीलिये पुराहितों द्वारा बताई गयी धार्मिक गाथाओं में ये सहज ही विश्वास करने लगते हैं।

2. अन्धविश्वासी स्वभाव:– ग्रामीण व्यक्ति अंधविश्वासी होता है। गांव में अनेक ऐसे धार्मिक उदाहरण हैं जो धर्म संबंधी शुद्ध अंधविश्वासों की गाथा कहते हैं। पेड़–पौधे, तालाब, नदी, ग्रामीण देवी, देवता, बाबा में अटूट आस्था रखते हैं। इनसे जुड़ी हुई कहानियाँ कालान्तर में इन्हें वास्तविक लगने लगती है। इन्हें फिर ये त्याग नहीं पाते हैं बल्कि वह कर्मकाण्ड का अभिन्न अंग बन जाता है। इनके अन्दर ये भय समा जाता है कि यदि वे अमुक धार्मिक कार्य नहींकरते हैं तो उनका अनिष्ट हो जायेगा। ये भय अंधविश्वासी आस्थाओं से जन्मता है और समय के साथ संपूर्ण ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त हो जाता है।

3. पूर्वज पूजा में आस्था:– ग्रामीण क्षेत्रों की यह सामान्य बात है कि वे अपने पूर्वजों की नित्य पूजा करते हैं। घर के सामने ही छोटी–छोटी मठियाँ होती हैं जो पूर्वजों का प्रतीक होती हैं इनका विश्वास है कि पूर्वजों की मृत्यु के पश्चात् उनकी आत्मायें भ्रमण करने निकलती है। सामान्यता जिस व्यक्ति की आत्मा का जिस स्थान, पेड़, पौधे अथवा अन्य किसी चीज से सम्बन्ध होता है उसी में उनकी आस्था उत्पन्न होने लगती है। फलस्वरूप ये उसकी पूजा आरम्भ कर देते हैं। एक समय के पश्चात् ऐसे विश्वासों का ग्राम्यीकरण हो जाता है।

4. स्थानीय अनुभवों का प्रभाव:– गांव में अनेक प्रकार की घटनाएं होती रहती हैं। इनसे ग्रामीण व्यक्ति को तरह–तरह के अनुभव प्राप्त होते रहते हैं। कुछ घटनाओं से जुड़े अनुभव इस प्रकार के होते हैं जो संपूर्ण क्षेत्र में प्रभावित करते हैं। इस प्रकार की घटनाओं से जुड़ी हुई भावना का कालान्तर में ग्राम्यीकरण हो जाता है। उदाहरण के लिये बुन्देलखण्ड के हरदौल की घटना। बुन्देलखण्ड में एक कहानी प्रचलित है कि जुझार सिंह का छोटा भाई हरदौल सिंह था। बड़े भाई जुझार सिंह को संदेह हो गया कि उसकी पत्नी का सम्बन्ध हरदौल से है। जुझार सिंह ने अपने भाई से अपनी पवित्रता का प्रमाण देने के लिये विष का प्याला दे दिया जिसे वह पीकर मृत्यु को प्राप्त हुआ। कुछ समय पश्चात् जुझार सिंह के बहन के लड़की की शादी थी। वह भाई के पास भात का नेवता देने और उसने भैय्या से कहा कि अगर हरदौल भैय्या होते तो वह भी भात लेकर आते। जुझार सिंह ने गुस्से में आकर कहा कि फिर उसे ही बुला लो। कहा जाता है कि हरदौल ने आकर बारातियों को भात परोसा। इस घटना से सम्पूर्ण बुन्देलखण्ड में विवाह के समय हरदौल भैय्या की पूजा की जाती है। इस स्थानीय घटना के अनुभव ने ग्राम्यीकरण को प्रोत्साहित किया।

- **समीक्षा**

➢ 'फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडिशन्स' नामक अपनी पुस्तक में डॉ0 एम0एल0 श्रीवास्तव ने मैरियट से भिन्न अपने विचार प्रस्तुत किये:– डॉ0 बी0आर0 चौहान ने भी गोवर्धन पूजा के आधार पर वर्णित स्थानीयकरण की अवधारणा की आलोचना की है और यह बताया

है कि अवधारणा को प्रस्तावित करने के लिये गोवर्धन पूजा के त्यौहार को आधार के रूप में मानने की अपेक्षा परीक्षण–स्थल के रूप में समझा जाना चाहिये।

लेविस स्पेन्स ने भी बताया कि अर्द्ध–सभ्य लोगों में बड़े देवताओं के कार्यों में निरन्तर वृद्धि होती रही है। द्वन्दात्मक गलतफहमियों के कारण वर्णनात्मक शब्दों का सृजन हुआ जो देवी नामों में परिवर्तन लाया। इस प्रकार देवी–देवताओं का स्थानीय नाम पाकर यह कहना कि वृहत् परम्परा के उस देवी–देवता का स्थानान्तरण हुआ है और लोकजनों ने उन्हें अपना बनाकर अपनी परम्परा में आत्मसात् कर लिया है, एक बड़ी भूल होगी। इसके अतिरिक्त भारत के दूसरे क्षेत्रों में लोकजन नौरथा नामक किसी भी देवी को नहीं जानते हैं और न ही वे नवरात्रि पूजा को दुर्गा के अतिरिक्त अन्य किसी देवी से सम्बन्धित करते हैं। इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि 'नौरथा' शब्द का प्रयोग नवरात्रि की देवी दुर्गा के लिये ही किया है, न कि किसी अन्य देवी के लिये।

मैकिम मैरियट के अनुसार किशनगढ़ी में शुक्राचार्य नामक देवता भी स्थानीयकरण की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हैं, लेकिन श्रीवास्तव के अनुसार मैकिम मेरियट की यह व्याख्या ठीक प्रतीत नहीं होती। मैकिम मेरियट ने एक स्थान पर लिखा है कि किशनगढ़ी के प्रमुख ब्राह्मण खानदान के बुज़ुर्गों ने कुछ समय पहले शुक्राचार्य की पूजा करने के लिये पहलवों की शमशान भूमि में एक पेड़ के नीचे एक पत्थर खड़ा कर दिया, जहां उस परिवार की नववधुएं पति के घर आने के कुछ दिनों के अन्दर अपने पति के साथ जाकर शुक्राचार्य का प्रतिनिधित्व करने वाले उस पत्थर की पूजा करती हैं। वे पुनः लिखते हैं कि उस खानदान की स्त्रियां तथा उस खानदान की नायन (नाई की पत्नी) ने मैकिम मेरियट को बताया कि शुक्राचार्य का प्रतिनिधित्व करने वाला यह पत्थर किसी सांस्कृतिक देवता का उद्‌बोधक नहीं है, अपितु उसी ब्राह्मण परिवार के पितरों का स्थल है। इस तथ्य को जानते हुए भी मैकिम मेरियट ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया कि सांस्कृतिक देवता शुक्राचार्य स्थानीयकरण की प्रक्रिया के माध्यम से किशनगढ़ी ग्राम में एक स्थानीय देवता बन गये हैं।

इन आलोचनाओं के बाद भी मैकिम मेरियट द्वारा प्रतिपादित अवधारणा स्थानीयकरण भारतीय ग्रामीण व्यवस्था को समझने के लिये एक महत्वपूर्ण अवधारणा है।

7.4 सार्वभौमिकरण अवधारणा

मैकिम मेरियट सार्वभौमिकरण के सम्बन्ध में अपने अनुभव को बताते हुए कहते हैं कि 'सन् 1951–52 में किशनगढ़ी गांव में जाने पर यह उल्लेख करने में असमर्थ हूं कि मैंने लघु परम्परा के त्यौहारों से हिन्दू–धर्म की वृहत् परम्परा की पवित्र घटनाओं में सार्वभौमिकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया का अवलोकन किया है।''

मैकिम मेरियट ने सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया का उल्लेख एक ऐसी स्थिति के लिये किया है, जिसमें स्थानीय एवं लघु परम्पराओं से धीरे–धीरे वृहत् परम्परा का निर्माण होता है। किसी भी समाज के सांस्कृतिक जीवन को सुस्पष्ट करने के लिये सार्वभौमिकण एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अवधारणा है।

'सार्वभौमिकरण' की प्रक्रिया का सर्वप्रथम उल्लेख मिल्टन सिंगर एवं रॉबर्ट रेडफील्ड ने किया था। बाद में इसका प्रयोग मैकिम मेरियट ने लघु परम्परा एवं वृहत् परम्परा के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिये किया। उन्होंने स्वयं अपनी सम्पादित कृति 'विलेज इण्डिया' में लिखे एक लेख 'लिटिल कम्युनिटी इन एन इण्डिजीनस सिविलाइजेशन' में लिखा है कि ''यह समझने के लिये कि अक्सर प्राचीन संस्कृत कर्मकाण्ड असंस्कृत कर्मकाण्डों (Non-

sanskritised) को हटाए बिना उनसे क्यों जुड़ जाते हैं? हमें उस प्रक्रिया को समझना होगा जो स्वदेशी सभ्यता से सम्बन्धित है। परिभाषा के दृष्टिकोण से स्वदेशी सभ्यता वह है जिससे सम्बद्ध वृहत् परम्पराओं की उत्पत्ति पहले से ही विद्यमान छोटी परम्पराओं के तत्वों के मिलने से होती है। वृहत् परम्पराओं की इस प्रक्रिया को हम 'सार्वभौमिकरण', 'सर्वव्यापीकरण' या 'सर्वदेशीकरण' के नाम से जानते हैं।'' स्पष्ट है कि जब स्थानीय लघु या छोटी परम्पराओं के मिलने से एक बड़ी परम्परा का निर्माण होता है तथा उनका विवेचन धर्म–ग्रन्थों में कर लिया जाता है, तब संस्कृति के प्रसार की यह प्रक्रिया 'सार्वभौमिकरण' कहलाती है।

- **सार्वभौमिकरण का अर्थ**

सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया ग्राम्यीकरण की प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न है इसके शाब्दिक अर्थ से ज्ञात होता है कि किसी परम्परा का अधिक व्यापक हो जाना।

मैकिम मेरियट लिखते हैं कि जब लघु परम्परा (Little Tradition) के तत्व (देवी–देवता, संस्कार आदि) ऊपर की ओर बढ़ते हैं, अर्थात् उनके फैलाव का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, जब वे वृहत् परम्परा (Great Tradition) के स्तर तक पहुंच जाते हैं और उनका मूल स्वरूप परिवर्तित हो जाता है, तो इस प्रक्रिया को हम 'सार्वभौमिकरण' कहते हैं। मैरियट ने स्वयं लिखा है कि ''सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया का तात्पर्य वृहत् परम्परा का उन तत्वों से निर्मित होना है जो छोटी परम्पराओं में पहले से ही विद्यमान होते हैं तथा जिनसे वृहत् परम्पराएं सैदव आच्छादित रहती हैं।''

जब लघु परम्परा से सम्बन्धित सांस्कृतिक तत्वों के फैलाव का क्षेत्र बढ़ता जाता है तो इस दौरान उनका स्वरूप भी बदल जाता है। ये सांस्कृतिक तत्व कालान्तर में शनैः–शनैः वृहत् परम्परा के अंग बन जाते हैं। जब लघु परम्परा के तत्व देवी–देवता, प्रथाएं, संस्कार वृहत् परम्परा के स्तर तक प्रचलित हो जाते हैं और उन्हें वृहत् परम्परा का ही अंग माना जाने लगता है, तो इस प्रक्रिया को हम 'सार्वभौमिकरण' के नाम से जानते हैं।

सार्वभौमिकरण की विशेषताएं

- सार्वभौमिकरण की अवधारणा को इनकी विशेषताओं के आधार पर और स्पष्ट रूप से समझा जा सकता हैः–

  1. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया का सम्बन्ध लघु और वृहत् परम्पराओं की अन्तःक्रिया से है।
  2. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया में लघु परम्पराएं नष्ट नहीं होतीं वरन् वे वृहत् परम्पराओं का सृजन करती हैं और अपना अस्तित्व भी बनाए रखती हैं।
  3. सार्वभौमिकरण में लघु परम्परा के तत्व स्थानीय क्षेत्र से राष्ट्रीय स्तर की ओर ऊपर बढ़ते हैं, उनका फैलाव होता है।
  4. सार्वभौमिकरण द्वारा निर्मित वृहत् परम्पराएं लघु परम्परा का संशोधित एवं परिमार्जित रूप होता है।
  5. सार्वभौमिकरण का तात्पर्य लघु परम्परा का महत्व घटना व वृहत् परम्परा का महत्व बढ़ना नहीं है। गांव के लोग समग्र रूप से दोनों ही परम्पराओं को मानते हैं एवं उनके सम्बन्धित कर्मकाण्डों में भाग लेते हैं।
  6. वृहत् परम्पराओं का प्रायः धर्म ग्रन्थों में उल्लेख देखने को मिलता है।

सार्वभौमिकरण के उदाहरण

इस प्रक्रिया को व्यक्त करने की दृष्टि से मैरियट ने किशनगढ़ी ग्राम से कुछ उदाहरण दिये हैं जो इस प्रकार हैंः–

सौरती पूजाः– किशनगढ़ी गांव में दीवाली के त्यौहार के अवसर पर लोग अपने घरों में दीवार पर चावल के आटे की एक–एक प्रतिमा बनाते हैं जिसे ये सौरती (Saurti) के नाम से पुकारते हैं। यह एक देसी देवी है जिसकी इस गांव के लोग इस त्यौहार के अवसर पर पूजा करते हैं। यहां के लोगों की मान्यता है कि लक्ष्मी धनवानों की देवी है और सौरती हमारी देवी है। यहां इन्हीं लोगों के द्वारा सौरती के अलावा लक्ष्मी पूजा भी की जाती है। मैकिम मैरियट का अनुमान है कि सौरती जो कि लघु परम्परा के अन्तर्गत आती है, के फैलाव का क्षेत्र बढ़ता गया, उसकी गति ऊपर की ओर रही। इस लम्बी यात्रा में उसका स्वरूप परिवर्तित हो गया और उसने लक्ष्मी का रूप ग्रहण कर लिया। लक्ष्मी एक ऐसी देवी है जिसकी गणना वृहत् परम्परा को अन्तर्गत होती है। एक क्षेत्र विशेष में प्रचलित देवी 'सौरती' कालान्तर में लक्ष्मी के रूप में बदल गयी। सौरती का लक्ष्मी के रूप में रूपान्तर सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया को व्यक्त करता है।

सालूनों त्यौहारः– सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया का एक अन्य उदाहरण किशनगढ़ी में मनाये जाने वाले त्यौहार 'सालूनों' (Saluno) से दिया गया है। सम्पूर्ण देश में मनाये जाने वाले त्यौहार रक्षाबन्धन के दिन ही इस गांव में 'सालूनो' का त्यौहार मनाया जाता है। इस त्यौहार के कुछ दिन पहले ही युवा स्त्रियां अपने माता–पिता तथा भाई–बहनों से मिलने गांव में आती हैं। सालूनों के दिन उनके पति उन्हें वापस ले जाने के लिये ससुराल पहुंचते हैं। पत्नियां अपने ससुराल के लिये वापस लौटने के पूर्व अपनी अविवाहित बहनों सहित अपने भईयों के सिर तथा कान पर जौ की बालें (पवित्र अनाज) रखती हैं। वे अपने भाईयों के प्रति अपनी आस्था एवं सम्बन्ध व्यक्त करने के लिये ऐसा करती हैं। क्योंकि भाई अपनी बहन से बिना कुछ दिये हुए कोई चीज़ स्वीकार नहीं करते, अतः जौ की बालियों के बदले उन्हें कुछ सिक्के या रूपये–पैसे देते हैं। तत्पश्चात् भाई तथा जीजा खेल में भाग लेते हैं। इसी दिन रक्षाबन्ध का त्यौहार मनाया जाता है। ब्राह्मण पण्डित अपने जजमानों की कलाई पर मन्त्रोच्चारण के साथ अशीर्वाद देते हुए राखी (रक्षासूत्र) बांधते हैं और उन्हें बदले में नकद रूपया या सिक्के दिये जाते हैं, क्योंकि ऐसा माना जाता है कि ब्राह्मण से बिना उसे कुछ दिये कुछ प्राप्त करना अनुचित है। सालूनों के पारिवारिक त्यौहार और रक्षाबन्ध के ब्राह्मणों के विशिष्ट त्यौहारों में बहन और ब्राह्मण पण्डित की भूमिकाओं में समानता पाई जाती है। मैकिम मैरियट ने बताया कि यह सम्भावना है कि रक्षाबन्ध के त्यौहार की उत्पत्ति सालूनों जैसे लघु परम्परा के त्यौहार से हुई हो। अब किशनगढ़ी में दोनों ही त्यौहार साथ–साथ मनाये जाते हैं। स्पष्ट है कि सालूनों के त्यौहार का फैलाव बढ़ता गया, धीरे–धीरे इसने वृहत् परम्परा से सम्बन्धित त्यौहार के रूप में मान्यता प्राप्त कर ली, इसका मूल स्वरूप परिवर्तित हो गया और इसे रक्षाबन्धन के रूप में मनाया जाने लगा।

डॉ0 एस0एल0 श्रीवास्तव ने राजस्थान और उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों से प्राप्त तथ्यों के आधार पर मैकिम मैरियट के इन विचारों से असहमति व्यक्त की है कि सौरती की पूजा और सालूनों का त्यौहार लघु परम्परा से सम्बन्धित है तथा सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया के द्वारा लक्ष्मी पूजन और रक्षाबन्धन जैसे वृहत् परम्परा से सम्बन्धित त्यौहार की उत्पत्ति हुई है। आपकी मान्यता है कि सौरती और सालूनों जैसे त्यौहारों की जड़ें स्वयं वृहत् परम्परा में ही हैं।'' श्रीवास्तव का कहना है कि 'सौरती' कोई अन्य देवी नीहं वरन् लक्ष्मी ही है। सौरती–ासुखरात्री का अपभ्रंश रूप है जो दीपावली के त्यौहार का प्राचीन नाम है जब देवी लक्ष्मी की पूजा को सुखरात्री की पूजा कहा जाता था। बाद में 'सुखरात्री' का रूपान्तरण 'सौरती' के रूप में हो गया होगा। इसी प्रकार से 'सालूनो' त्यौहार की जड़ें भी वृहत् परम्परा में हैं। रक्षाबन्धन का त्यौहार सलूनों को नाम से भी जाना जाता है जो वृहत् परम्परा से सम्बन्धित है। वास्तव में इस सम्बन्ध में पूर्ण निश्चय के साथ

कुछ भी कहना कठिन है, क्योंकि लघु और वृहत् परम्परा के बीच पिछले सैकड़ों–हज़ारों वर्षों से अन्तःक्रिया और पारस्परिक आदान–प्रदान होता रहा है। अतः यह कहना मुश्किल है कि कौन–से तत्वों की उत्पत्ति मूलरूप से लघु परम्परा से और किनकी वृहत् परम्परा से हुई।

- **सार्वभौमिकरण के कारण**

आधुनिक समय में अनेक लघु–परम्परायें, वृहत–परम्पराओं के रूप में दृष्टिगोचर हो रही है। इनकी पृष्ठ भूमि में निम्नलिखित कारण महत्वपूर्ण हैंः–

1. संस्कृतिकरण– नीची जाति के व्यक्ति ऊंची जाति के व्यक्तियों के आदर्श, मूल्य, परम्पराओं, आदर्शों, विचार का अनुकरण करने लगते हैं। इन ऊंची जातियों के आदर्शों को अपना कर वे अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा को ऊंचा करना चाहते हैं। इससे स्थानीय सांस्कृतिक तत्व को बल प्राप्त होता है। इनसे व्यापीकरण को प्रात्साहन मिलता है।

2. गतिशीलता में वृद्धि– आधुनिक युग में गतिशीलता में अत्यधिक वृद्धि हुई है फलस्वरूप एक स्थान के धार्मिक विश्वास सहज ही दूसरे स्थान पर पहुंच जाते हैं और वहां की स्थानीय परम्पराओं से इनका समायोजन हो जाता है। इससे सर्वव्यापीकरण की प्रक्रिया को बल प्राप्त होता है।

3. संस्कृति प्रसार– संस्कृति के तत्व एक स्थान पर जड़ रूप में नहीं रहते हैं बल्कि अन्य क्षेत्रों में स्वतः इनका प्रभाव पड़ता है। इसलिये एक स्थान के धार्मिक विश्वास और कर्मकाण्ड के तत्व दूसरे स्थानों पर हमें सरलता से देखने को मिल जाते हैं।

4. निहित स्वार्थों की देन– सर्वव्यापीकरण की प्रक्रिया को प्रोत्साहित करने का श्रेय बहुत कुछ पुरोहित और ब्राह्मणों को है क्योंकि इसमें उनका स्वार्थ समाहित है क्योंकि इसके माध्यम से उनकी आय में वृद्धि होती है। इसीलिये धार्मिक विश्वासों और कर्मकाण्डों के महत्व की वे निरन्तर पैरवी करते हैं। इसकी पृष्ठभूमि में उनकानिहित स्वार्थ है।

5. स्थानीय अनभिज्ञता– संस्कृति के तत्वों से जुड़ा धार्मिक विश्वास पिछड़े हुए क्षेत्रों के व्यक्तियों को चिन्तन की सीमा को संकीर्ण बनाये रहता है। इसीलिये लघु परम्पराओं की आड़ में वृहत् परम्परायें विकसित होने लगती हैं क्योंकि स्थानीय व्यक्तियों की अशिक्षा और वास्तविक तथ्यों से वे परिचित नहीं होते हैं और न वे तर्क का ही प्रयोग करते हैं।

6. महत्वपूर्ण लघु परम्परायें– महत्वपूर्ण लघु परम्परायें जो अत्यधिक लोकप्रिय हो गयी हैं और जन मानस में बैठ गयी हैं कालान्तर में ये वृहत–परम्पराओं को स्थापित करती हैं।

- **सार्वभौमिकरण एवं स्थानीयकरण में अन्तर**

➢ सार्वभौमिकरण एवं स्थानीयकरण की प्रक्रियाओं में प्रमुख अन्तर इस प्रकार हैंः–

1. सार्वभौमिकरण में लघु परम्पराएं ऊपर की ओर (Upward) विकसित होती है अर्थात् वे वृहत् परम्परा का निर्माण करती हैं जबकि स्थानीयकरण में वृहत् परम्परा के तत्व नीचे की ओर गमन करते हैं और स्थानीयकरण व छोटी परम्पराओं को विकसित करते हैं।
2. सार्वभौमिकरण में परम्पराओं का प्रभाव क्षेत्र विकसित एवं विस्तृत हैं, जबकि स्थानीयकरण में प्रभाव क्षेत्र संकीर्ण एवं संकुचित होता है।
3. सार्वभौमिकरण में स्थानीय विश्वासों एवं कर्मकाण्डों का महत्व घटता है, जबकि स्थानीयकरण में स्थानीय विश्वासों एवं कर्मकाण्डों की संख्या में वृद्धि होती है।

4. सार्वभौमिकरण में लघु परम्पराएं विकसित होकर नयी वृहत् परम्परा बनती हैं, जबकि स्थानीयकरण में वृहत् परम्परा छोटे–छोटे रूपों में विकसित होती है, जो नयी नहीं अपितु पूर्व प्रचलित किसी वृहत् परम्परा का ही अंग होती है।

5. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया व्यवस्थित है क्योंकि इससे सम्बन्धित विश्वासों एवं कर्मकाण्डों का स्वरूप सभी क्षेत्रों में प्रायः समान दिखाई देता है, जबकि स्थानीयकरण की प्रक्रिया अव्यवस्थित है क्योंकि इसमें प्रत्येक क्षेत्र की परम्पराओं का रूप भिन्न–भिन्न होता है।

7.5 अभ्यास

1. स्थानीयकरण की अवधारणा का उल्लेख किस विद्वान ने किया हैः–

क. एम0एन0 श्री निवास ख. एस0सी0 दूबे

ग. योगेन्द्र सिंह घ. मैकिम मेरियट

2. 'गोवर्धन पर्व' किस प्रक्रिया का उदाहरण हैः–

क. संस्कृतिकरण ख. सार्वभौमिकरण

ग. स्थानीयकरण घ. आधुनिकीकरण

3. 'विलेज इण्डिया' किसकी पुस्तक हैः–

क. मैकिम मेरियट ख. रॉबर्ड रेडफील्ड

ग. एस0सी0 दूबे घ. योगेन्द्र सिंह

4. किशन गढ़ी गावं का अध्ययन किस विद्वान ने किया हैः–

क. आन्द्रे बिताई ख. मैकिम मेरियट

ग. एम0एन0 श्रीनिवास घ. राबर्ट रेडफील्ड

5. 'फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडिशन' पुस्तक के लेखक कौन हैः–

क. एस0एल0 श्रीवास्तव ख. योगेश अटल

ग. एम0एन0 श्रीनिवास घ. डी0एन0 मजूमदार

6. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया का सर्वप्रथम उल्लेख किसने कियाः–

क. एम0एन0 श्रीनिवास ख. रॉबर्ट रेडफील्ड एवं मिल्टन सिंगर

ग. योगेन्द्र सिंह घ. रॉबर्ट रेडफील्ड

7. लघु एवं वृहत् परम्परा के पारस्परिक सम्बन्धों को स्पष्ट करने के लिये मैकिम मैरियट ने कौन सी प्रक्रिया का प्रयोग कियाः–

क. आधुनिकीकरण ख. संस्कृतिकरण

ग. स्थानीयकरण व सार्वभौमिकरण घ. उपरोक्त सभी।

8. सार्वभौमिकरण का उदाहरण हैः–

क. गोवर्धन पूजा ख. नौरता (नवरात्रि)

ग. सौरती पूजा घ. उपरोक्त सभी।

9. ''जब लघु परम्परा के तत्व (देवी–देवता, प्रथाएं, संस्कार आदि) ऊपर की ओर बढ़ते हैं, फैलाव का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है, जब वे वृहत् परम्परा के स्तर पर पहुंच जाते हैं और उनका मूल स्वरूप परिवर्तित हो जाता है तो इस प्रक्रिया को 'सार्वभौमिकरण' कहते हैं, किसका कथन हैः–

क. रॉबर्ट रेडफील्ड ख. बी0आर0 चौहान

ग. एम0एन0 श्रीनिवास घ. मैकिम मैरियट

10. 'ए राजस्थान विलेज' पुस्तक के लेखक कौन हैंः–

क. मैकिम मेरियट ख. रॉबर्ट रेडफील्ड

ग. बी0आर0 चौहान घ. एस0सी0 दूबे

11. सालूनों का त्यौहार सम्बन्धित हैः–

क. वृहत् परम्परा से ख. लघु परम्परा से

ग. वृहत एवं लघु दोनों से घ. उपरोक्त में से कोई नहीं।

12. परम्पराओं का प्रभाव क्षेत्र विकसित एवं विस्तृत होता हैः–

क. सार्वभौमिकरण में ख. स्थानीयकरण में

ग. संस्कृतिकरण में घ. आधुनिकरण में।

13. स्थानीयकरण की प्रक्रिया सम्बन्धित है–

क. लघु परम्परा से ख. वृहत् परम्परा से

ग. लघु एवं वृहत् दोनों से घ. उपरोक्त में से कोई नहीं।

14. सार्वभौमिकरण की प्रक्रिया सम्बन्धित है–

क. वृहत् परम्परा से ख. लघु परम्परा से

ग. लोक संस्कृति से घ. लघु समुदाय से।

15. स्थानीयकरण के मुख्य कारण हैं–

क. स्थानीय अनुभवों का प्रभाव ख. धार्मिक ग्रन्थों से अनभिज्ञता

ग. अन्धविश्वास घ. उपरोक्त सभी।

16. सार्वभौमिकरण के कारण हैं–

क. संस्कृतिकरण ख. संस्कृति प्रसार

ग. स्थानीय अनभिज्ञता घ. उपरोक्त सभी।

17. वृहत् परम्परा है–

क. लघु परम्परा का विकसित और संशोधित रूप ख. कर्म–काण्डों का एक विस्तृत रूप

ग. उपरोक्त दोनों घ. दोनों में से कोई नहीं।

7.6 सारांश

संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि किसी भी समाज में लघु और बृहत परम्परायें एक साथ जीवित रहती हैं। एक के महत्व को दूसरे की अनुपस्थिति में आंका नहीं जा सकता है। साथ ही साथ ग्राम्यीकरण और सर्वव्यापीकरण की प्रक्रियायें अपना–अपना कार्य करती रहती हैं। दोनों एक सिक्के के दो पहलू हैं। अपितु इन दोनों का प्रभाव परम्परा, धार्मिक विश्वास और कर्मकाण्डों पर पड़े बिना नहीं रहता है। इसके महत्व को बताते हुए मेरियट लिखते हैं कि **''चूंकि बृहत तथा लघु परम्परायें दोनों ही लघु समुदायों तथा उनके भाग लेने वालों के धर्म में निहित करती हैं। अतः एक लघु समुदाय के धर्म का अध्ययन सार्वभौमीकरण तथा स्थानीयकरण की उन प्रक्रियाओं को समझने में सहायता प्रदान करता है, जो भारतीय सभ्यता में सामान्यता व्याप्त है।'' प्रसिद्ध समाजशास्त्री योगेन्द्र सिंह सर्वव्यापीकरण और ग्राम्यीकरण की प्रक्रिया को एक सांस्कृतिक परिवर्तन के रूप में देखते हैं जो एम0एन0 श्रीनिवास के सांस्कृतिकरण के सिद्धान्त के अत्यन्त निकट है।** विशेष तौर से सर्वव्यापीकरण इस अवधारणा के अत्यधिक निकट है। ग्राम्यीकरण सांस्कृतिकरण का लघु स्वरूप है या असांस्कृतिकरण का। इस तरह मेरियट का यह सिद्धान्त अपनी लघु सीमाओं में कैद है जो मात्र सांस्कृतिक परिवर्तन की बात करता है।

7.7 शब्दावली

परम्परा– परम्परा, परिपाटियों का एक पुंज है जो कुछ व्यवहार सम्बन्धी मानदण्डों और मूल्यों जो इस आधार पर अपनाये जाने या सम्पन्न किये जाने पर बल देती है कि इनका वास्तविक या काल्पनिक भूत के साथ तारतम्य है। बहुधा इन परम्पराओं के साथ व्यापक रूप से स्वीकृत कर्मकाण्ड या प्रतीकात्मक व्यवहार के अन्य स्वरूप जुड़े होते हैं। परम्परा में हस्तान्तरण या संचरण की प्रक्रिया निहित होती है जिसके द्वारा एक समाज अपनी संस्कृति को अक्षुण्य बनाये रखता हैं।

विश्व दृष्टि– विश्व के प्रति सोचने समझने के हमारे विशिष्ट दृष्टिकोण या नजरिए को विश्वदृष्टि कहा जाता है। यह वास्तविकता का एक मानसिक अवबोधन है। एक व्यक्ति जीवन और विश्व का क्या अर्थ लगाता है, उसकी दृष्टि में विश्व तथा जीवन का क्या प्रयोजन है तथा विश्व एवं मानव के उद्भव और अस्तित्व के सम्बन्ध में उसकी क्या धारणाएं हैं, इन सभी विषयों के सम्बन्ध में उसके सोच द्वारा उसकी विश्वदृष्टि का निर्माण होता है।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. D, 2. C, 3. A, 4. B, 5. A, 6. B, 7. C, 8. C, 9. D, 10. C, 11. C, 12. A, 14. A, 15. D, 16. D, 17. C.

7.9 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

डॉ0 एम0एम0 लवानिया एवं शशी के0 जैन (2009) ग्रामीण समाजशास्त्र रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर पेज नं0– 78–83
डॉ0 वीरेन्द्र नाथ सिंह (1988) ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, पेज नं0– 113–117
श्री एम0एल0 गुप्ता एवं डॉ0 डी0डी0 शर्मा, भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन्स पेज नं0– 137–152
डॉ0 वी0एन0 सिंह एवं जनमेजय सिंह (2013), ग्रामीण समाजशास्त्र विवेक प्रकाशन पेज नं0–53

7.10 सहायक उपयोगी पाठ्य सामग्री

मैकिम मैरियट (1955) ग्रामीण भारत।
रोबर्ट रेडफील्ड, पीजेन्ट सोसाइटी एण्ड कल्चर।
योगेन्द सिंह (1986) भारतीय परम्परा एवं आधुनिकता, जयपुर रावत पब्लिकेशन।
एस0एल0 श्रीवास्तव, फोक कल्चर एण्ड ओरल ट्रेडिशन।
ब्रजराज चौहान (1967) ए राजस्थान विलेज, नई दिल्ली।

7.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्थानीयकरण की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. सार्वभौमिकरण से आप क्या समझते हैं। सार्वभौमिकरण की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
3. स्थानीयकरण की अवधारणा को उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।
4. सार्वभौमिकरण एवं स्थानीयकरण की प्रक्रिया से आप क्या समझते हैं? उदाहरण देकर समझाइये।
5. स्थानीयकरण एवं सार्वभौमिकरण को स्पष्ट कीजिए एवं दोनों में अन्तर बताईये।

इकाई 8 भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना–अवधारणा, ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवर्तन

Rural Social Structure in India-Concept, Change in Rural Social Structure)

इकाई की रूपरेखा

8.1 उद्दे"य
8.2 प्रस्तावना
8.3 सामाजिक संरचना का अर्थ व परिभाषायें
8.4 सामाजिक संरचना की वि"ोषतायें।
8.5 बोध प्र"न–01
8.6 ग्रामीण सामाजिक संरचना : एक परिचय
8.7 ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रमुख इकाईयां
8.8 ग्रामीण सामाजिक संरचना की वि"ोषतायें
8.9 भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना सम्बन्धी अध्ययन
8.10 ग्रामीण सामाजिक संरचना में वर्तमान परिवर्तन
8.11 बोध प्र"न–02
8.12 सारां"ा
8.13 प्रयुक्त शब्दावली
8.14 अभ्यास प्र"न
8.15 अभ्यास प्र"नों के उत्तर
8.16 निबन्धात्मक प्र"न
8.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
8.18 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

8.1 उद्दे"य

इस इकाई के अध्ययन के प"चात आप यह जान सकेंगे कि –

–सामाजिक संरचना किसे कहते हैं?

–ग्रामीण सामाजिक संरचना से क्या आ"ाय है?

–ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रमुख इकाईयां कौन सी हैं ?

–भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना सम्बन्धी अध्ययनों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।

–ग्रामीण सामाजिक संरचना में आ रहे वर्तमान परिवर्तन कौन से हैं ?

8.2 प्रस्तावना

सामाजिक संरचना समाज"ाास्त्र की अनेक सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से एक है। जिस भी समाज"ाास्त्री ने सामाजिक संरचना के बारे में लिखा, उसने ख्याति अर्जित की है। इमाईल दुर्खीम, हरबर्ट स्पेन्सर, रैडक्लिफ ब्राउन, एस0 एफ0 नैडेल और रॉबर्ट मर्टन से लेकर टॉलकट पारसन्स तक ऐसे ही नाम हैं । यह विदित है कि प्रत्येक समाज की रचना अनेक अंगों से मिलकर होती है। ये सभी अंग मिलकर जिस ढांचे का व्यवस्थित तरीके से निर्माण करते हैं, समाज का वही ढांचा सामाजिक संरचना कहलाता है। दूसरे शब्दों में, किसी भी समाज की बाहरी रूपरेखा को उस समाज की सामाजिक संरचना कहा जाता है।

यहां पर यह बात भी उल्लेखनीय है कि एक समाज की संरचना दूसरे समाज की संरचना से कुछ या अनेक सन्दर्भों में भिन्नता प्रदर्"ात करती है। जैसे कि परम्परागत समाजों की सामाजिक संरचना का आधुनिक समाजों की सामाजिक संरचना से भिन्न होना स्वाभाविक ही है। उदाहरण स्वरूप यदि परम्परागत समाजों में परम्परागत सामाजिक मूल्यों का वर्चस्व देखने को मिलता है तो आधुनिक समाजों में तर्क"ाीलता का प्रभाव अधिक पाया जाता है। इसी प्रकार ग्रामीण सामाजिक संरचना नगरीय सामाजिक संरचना से पर्याप्त आधारों पर भिन्न दिखाई देती है। ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवर्तन की गति भी धीमी होती है।

8.3 सामाजिक संरचना का अर्थ व परिभाषायें:–

समाजशास्त्र की 2 महत्वपूर्ण अवधारणायें हैं–सामाजिक संरचना और सामाजिक व्यवस्था। सामाजिक संरचना किसी समाज के ढांचे की परिचायक है जबकि सामाजिक व्यवस्था उस समाज के प्रकार्यात्मक पक्ष की । जब हम सामाजिक संरचना की बात करते हैं तो उसका अर्थ समाज के बाह्य स्वरूप से होता है और जब हम सामाजिक व्यवस्था पर विचार करते हैं तो उसका अर्थ समाज की आन्तरिक प्रक्रियाओं से होता है । सामाजिक संरचना की प्रकृति रचनात्मक होने के कारण यह अधिक स्थिर होती है जबकि सामाजिक व्यवस्था प्रकार्यात्मक पक्ष से सम्बन्धित होने के कारण अधिक क्रिया"ाील होती है।

समाज"ाास्त्र में सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग सामाजिक सम्बन्धों, सामाजिक घटनाओं अथवा सामाजिक प्रक्रियाओं के नि"चित क्रम के लिये किया जाता है। सामाजिक संरचना शब्द का प्रयोग अन्य मिलते–जुलते शब्दों, जैसे कि सामाजिक संगठन, सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक प्रतिमान या सम्पूर्ण समाज के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया जाता है इसी कारण इसका कोई एक नि"चत

अर्थ दे पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। फिर भी अधिकां"ा समाज"ाास्त्री 'सामाजिक संरचना' शब्दावली का प्रयोग व्यवस्थित या प्रतिमानित ढंगों के लिये करते हैं, जिनसे व्यक्ति या व्यक्तियों के समूह परस्पर एक दूसरे से स्वयं को सम्बन्धित करते हैं। पारसन्स के अनुसार, 'सामाजिक संरचना परस्पर सम्बन्धित संस्थाओं, अभिकरणों और सामाजिक प्रतिमानों और साथ ही समूह में प्रत्येक सदस्य द्वारा ग्रहण किये गये पदों तथा कार्यों की वि"ाष्ट क्रमबद्धता को कहते हैं।' कार्ल मैनहीम के अनुसार, 'सामाजिक संरचना अन्तःक्रियात्मक सामाजिक शक्तियों का जाल है जिससे विभिन्न प्रकार की निरीक्षण तथा चिन्तन पद्धतियों का जन्म हुआ है।'

जॉनसन कहते है–'किसी भी वस्तु की संरचना उसके अंगों में पाये जाने वाले अपेक्षाकृत स्थायी अन्तःसम्बन्धों को कहते हैं, साथ ही अंग शब्द में स्वयं ही कुछ न कुछ स्थिरता की मात्रा का समावे"ा है। चूंकि सामाजिक व्यवस्था लोगों की अन्तःसम्बन्धित क्रियाओं से बनती है, इस कारण उसी संरचना को इन क्रियाओं में पायी जाने वाली नियमितता की मात्रा या पुनरूत्पत्ति में ढूंढा जाना चाहिये।'

1. पारसन्स ने सामाजिक संरचना के अंगों के रूप में संस्थाओं, अभिकरणों, प्रतिमानों, पदों तथा कार्यों का उल्लेख किया है और ये सभी तत्व अमूर्त हैं। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पारसन्स सामाजिक संरचना को एक अमूर्त अवधारणा मानते हैं।

2. अनेक समाज"ाास्त्रियों ने समाज को सामाजिक सम्बन्धों का जाल माना है। मैनहीम ने सामाजिक संरचना को सामाजिक शक्तियों का जाल कहा है। सामाजिक शक्तियों से तात्पर्य उन नियामक व नियंत्रणात्मक साधनों से है जो सामाजिक जीवन को स्थिरता प्रदान करते हैं। इन शक्तियों में परस्पर अन्तः क्रिया होती रहती है। क्रियात्मक सामाजिक शक्तियों का यह ताना–बाना जिस जाल का निर्माण करता है, उसी जाल को मैनहीम ने सामाजिक संरचना की संज्ञा दी है।

3. जॉनसन द्वारा प्रस्तुत परिभाषा से स्पष्ट होता है कि सामाजिक संरचना में स्थायी तत्वों को सम्मिलित नहीं किया जता है। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि सामाजिक संरचना अपरिवर्तन"ाील होती है। परिवर्तन"ाीलता तो विचारों, आद"ाों व मूल्यों की वि"ाष्ट वि"ोषता है । हाँ, सामाजिक संरचना में परिवर्तन"ाीलता की तुलना में स्थिरता की मात्रा अधिक पायी जाती है।

पारसन्स, मैनहीम और जॉनसन द्वारा प्रस्तुत की गई सामाजिक संरचना की परिभाषाओं व अवधारणात्मक वि"लेषण के आधार पर संक्षेप में कहा जा सकता है कि 'सामाजिक संरचना किसी समय में परस्पर सम्बन्धित प्रास्थिति एवं भूमिकाओं के ऐसे प्रतिमान हैं जो अपेक्षाकृत स्थायी होते हैं और नियमित सम्बन्धों को जन्म देते हैं।'

8.4 सामाजिक संरचना की वि"ोषताऐं

एस0 एफ0 नैडेल रेडक्लिफ ब्राउन, टालकट पारसन्स और हरबर्ट स्पेन्सर जैसे समाज
शास्त्रियों द्वारा प्रस्तुत किये गये सामाजिक संरचना के विवेचन के आधार पर हम इसकी निम्नलिखित वि"ोषताओं को स्वीकार कर सकते हैं–

1– सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत एक स्थायी अवधारणा है अर्थात सामाजिक व्यवस्था की तुलना में यह कम परिवर्तन"ाील है।

2– यह समाज के बाहरी स्वरूप को प्रद"र्ित करती है। यही कारण है कि कभी भी 2 समाजों की सामाजिक संरचना एक समान नहीं होती। उनमें भिन्नता का पाया जाना अव"यंभावी है।

3– सामाजिक संरचना की प्रकृति अमूर्त होती है, क्योंकि इसका निर्माण सामाजिक संस्थाओं, सामाजिक अभिकरणों और सामाजिक प्रतिमानों जैसे अमूर्त अवयवों के द्वारा होता है। जाति, वर्ग और परिवार जैसे अवयव को मैकाईवर ने भी अमूर्त माना है।

4– सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक छोटी–बड़ी इकाईयों से मिलकर होता है, इसलिये यह माना गया है कि सामाजिक संरचना एक अखण्ड इकाई नहीं है। उदाहरणार्थ– परिवार की सामाजिक संरचना का निर्माण अनेक छोटी छोटी इकाईयों–विवाह, नातेदारी, गोत्र, मूल्य व आद"ार्, कर्मकाण्ड और रीति–रिवाजों से मिलकर होता है। ये सभी तत्व मिलकर एक सामाजिक संगठन को परिवार की संरचना प्रदान करते हैं।

5– सामाजिक संरचना की निर्माणक इकाईयों में एक नि"चित क्रमबद्धता पायी जाती है। एस0 एफ0 नैडेल का मत है कि संरचना के अध्ययन में समग्र के अन्तर्गत अंगों तथा उपांगों की क्रमबद्धता का अध्ययन किया जाता है। यदि हम जाति की सामाजिक संरचना का अध्ययन करना चाहते हैं तो इसकी उत्पत्ति के कारणों व सिद्धान्तों से लेकर, विभिन्न कालों में इसके विकास क्रम व प्रभावों को मानव समाज के सन्दर्भ में देखते हुए क्रमबद्ध तरीके से आगे बढ़ना होगा, तभी हम जाति की सामाजिक संरचना को समझ पायेंगे।

6– सामाजिक संरचना में सामाजिक संगठन व सामाजिक विघटन दोनों ही विद्यमान रहते हैं, दोनों की मात्रा में अन्तर हो सकता है। भारतीय समाज का ही अवलोकन करें तो प्रचलित सामाजिक मूल्यों व आद"ार्ों का प्रभाव समाज पर सदियों पूर्व से रहा है, रहेगा। इसी प्रकार भारतीय समाज विकास व प्रगति करता रहा है, करता रहेगा। पूर्व काल में सती प्रथा व बाल विवाह रूपी सामाजिक समस्यायें प्रचलित थीं तो वर्तमान समय में कि"ोर हिंसा व वृद्धजनों की उपेक्षा जैसी सामाजिक समस्यायें अस्तित्व में आ चुकी हैं। संक्षेप में कहा जाये तो, सामाजिक संरचना में आद"ार्ा शून्यता की स्थिति पायी जाती है।

7– रेडक्लिफ ब्राउन का निश्चित मत है कि सामाजिक संरचना में स्थानीय तत्वों अर्थात स्थानीयता का प्रभाव पाया जाता है। यह स्वाभाविक भी है। उदाहरणार्थ–एक जनजातीय समुदाय की सामाजिक संरचना दूसरे जनजातीय समुदाय की तुलना में कई मायनों में पृथकता प्रदर्शित करती है। इसका एक कारण उस जनजातीय समुदाय की स्थानीय विशेषताओं में अन्तर का पाया जाना भी होता है।

8.5 बोध प्रश्न–01

---

1. सामाजिक संरचना का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
2. सामाजिक संरचना की विशेषताओं पर प्रकाश डालिये।

8.6 ग्रामीण सामाजिक संरचना : एक परिचय

जब हम सामाजिक संरचना की अवधारणा को भारतीय सन्दर्भ में देखने का प्रयास करते हैं, तब यह निश्चित मानिये कि हम ग्रामीण सामाजिक संरचना की बात करते हैं क्योंकि मूल रूप में भारतीय समाज एक ग्रामीण समाज है और भारतीय समाजशास्त्री मौलिक रूप से या तो ग्रामीण समाजशास्त्री रहे हैं या फिर मानव विज्ञानी। जहां तक भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्रियों का प्रश्न है–ए0 आर0 देसाई, एस0 सी0 दुबे, एम0 एन0 श्रीनिवास, बृजराज चौहान, मैकिम मेरिएट, आन्द्रे बिताई, एच0 डी0 मालवीय और प्रदीप्त रॉय जैसे समाजशास्त्री तो विशुद्ध ग्रामीण समाजशास्त्री रहे ही हैं, इरावती कर्वे, जी0 एस0 घुरिये व योगेन्द्र सिंह जैसे समाजशास्त्री भी जब भारत में परिवार, विवाह, नातेदारी व प्रथाओं–परम्पराओं में परिवर्तन की बात अपने अध्ययनों के माध्यम से करते हैं तो ये भी ग्रामीण समाजशास्त्री कहलाने का अधिकार पा जाते हैं। और तो और डी0 एन0 मजूमदार ने 'ग्रामीण पाश्र्ववचित्र (Rural Profile) व रामकृष्ण मुकर्जी ने 'ग्रामीण समाज की गत्यात्मकता (The Dynamics of a Rural society) जैसे अपने अध्ययनों के माध्यम से ग्रामीण समाजशास्त्र को अन्यों की भांति ही समृद्ध किया है। यहां पर एक और बात उल्लेखनीय है कि भारत के सन्दर्भ में समाजशास्त्रीय और मानवशास्त्रीय विचारधाओं में सुस्पष्ट विभाजन रेखा खींचना सरल कार्य नहीं है। हम उन अध्ययनों को मानवशास्त्रीय अध्ययन कह सकते हैं, जो गहन क्षेत्रीय अध्ययन के माध्यम से सम्पन्न हो सके हैं और जिनमें समुदायों के सभी अंगों पर समग्रता का दृष्टिकोण अपनाया गया है, भले ही इस प्रकार के अध्ययन एक समाजशास्त्री के द्वारा सम्पादित/संचालित किये गये हों। ए0 आर0 एन0 श्रीवास्तव लिखते हैं, '' भारत में इस प्रकार का अध्ययन स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद एक व्यवहारजन्य परिस्थितियों में हुआ। सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के कार्यान्वयन हेतु देश के ग्रामीण समुदायों के विषय में अधिकाधिक तथ्यों की आवश्यकता महसूस की गई। चूंकि इन विकास योजनाओं के लिये अनुदान राशि अमेरिका से प्राप्त होती थी और देश में प्रशिक्षित

अध्ययनकर्ताओं की कमी थी अतएव सन 1950–1960 के दौरान कई एक विदे"ाी मानववेत्ताओं ने फोर्ड फाउन्डे"ान संस्था के तत्वाधान में भारतीय गांवों का अध्ययन करना शुरू कर दिया। इस क्षेत्र में कुछेक भारतीय और ब्रिटि"ा मानव"ाास्त्री भी सम्मिलित हो गये। इस प्रकार पांचवे व छठवें द"ाक में ग्राम समुदायों का विविध रूप दृष्टिगोचर होना शुरू हुआ और यह क्रम थोड़े स्तर पर अभी भी जारी है।'' कहा जा सकता है कि विगत कई द"ाकों से भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना समाज"ाास्त्रीय अध्ययन का विषय रही है। जाति व जनजाति ग्रामीण सामाजिक संरचना की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई है। यदि एक गांव में केवल एक ही जाति या जनजाति के लोग निवास करते हैं तो इस गांव की सामाजिक संरचना उस गांव से भिन्न होगी, जिसमें अनेक जातियों, उपजातियों या जनजातियों के लोग निवास करते हैं। ऐसे गांव की सामाजिक संरचना अत्यन्त जटिल होगी।

भारतीय गांवों की सामाजिक संरचना की प्रकृति को समझने के लिये हमें गांवों के आन्तरिक सम्बन्धों, समूहों, गांव को समुदायों में समुदाय के रूप में समझना होगा तथा ग्रामों की सामाजिक संरचना की स्थायी इकाईयों का अध्ययन करना होगा। जहां तक एक गांव अपनी अनेक आव"यकताओं की पूर्ति स्थानीय स्तर पर या ग्राम स्तर पर ही करता है, वहीं वह अपनी अनेक आव"यकताओं की पूर्ति के लिये पूरे दे"ा पर भी निर्भर रहता है। इस परिप्रेक्ष्य में एस0 सी0 दुबे अपनी पुस्तक 'भारतीय ग्राम' में लिखते हैं कि भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिये लघु स्तर पर अनेक हिस्सों में गांवों का अध्ययन करके हम गांवों के विभिन्न पक्षों एवं वि"ोषताओं की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं तथा उनके आधार पर भारतीय गांव के बारे में सामान्यीकरण प्रस्तुत कर सकते हैं।

एस0 सी0 दुबे, मैकिम मेरियट व अन्य अनेक ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों ने अपने अपने अध्ययनों के माध्यम से भारतीय ग्रामों की सामाजिक संरचना को निम्नलिखित दो दृष्टिकोणों से समझने का प्रयास किया है–

(अ) भारतीय ग्राम एक वि"िाष्ट पूर्ण पृथक इकाई के रूप में।

(ब) भारतीय ग्राम बड़े समुदाय में एक छोटी सम्बन्धित इकाई के रूप में।

8.7 ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रमुख इकाईयाँ

उपर्युक्त इकाइयों के आधार पर भारतीय ग्रामीण संरचना की प्रमुख इकाइयों तथा उनकी प्रकृति को इस प्रकार समझा जा सकता है–

(1) **परिवार**–ग्रामीण सामाजिक संरचना की सबसे छोटी इकाई व्यक्ति है जिसकी स्थिति का निर्धारण प्राथमिक रूप से उसके परिवार तथा नातेदारी व्यवस्था के आधार पर होता है। ग्रामीण परिवार या तो विस्तृत होते हैं अथवा संयुक्त। ये परिवार प्रमुख रूप से पितृसत्तात्मक होते हैं। परिवार के सभी सदस्य कृषि के द्वारा आजीविका उपार्जित करते हैं। अतः किसी भी सदस्य को अपने लिए एक पृथक

परिवार की आव"यकता नहीं होती। परिवार में मुखिया अथवा कर्ता की सत्ता असीमित होती है। इसका तात्पर्य है कि कोई भी सदस्य कर्ता की अनुमति के बिना कोई कार्य नहीं कर सकता। साथ ही परिवार के सदस्यों के कार्यों का विभाजन तथा विवादों का निपटारा करना भी कर्ता के ही अधिकार में होता है। परिवार के सभी सदस्य एक ही स्थान पर निवास करते हैं, एक ही रसोई में भोजन करते हैं, एक सामान्य सम्पत्ति का उपभोग करते हैं तथा विभिन्न कर्मकाण्डों, उत्सवों और त्योहारों में सामूहिक रूप से भाग लेते हैं। परिवार की स्थिति ही व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण करती है। इस दृष्टिकोण से ग्रामीण सामाजिक संरचना में परिवार को एक केन्द्रीय और मौलिक इकाई माना जा सकता है।

(2) **नातेदारी**—ग्रामीण सामाजिक संरचना में विवाह दो व्यक्तियों का सम्बन्ध नहीं है बल्कि दो परिवारों का सम्बन्ध है। इसके फलस्वरूप गांव में नातेदारी व्यवस्था का महत्व किसी भी दूसरे समुदाय की अपेक्षा कहीं अधिक है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत रक्त तथा विवाह से सम्बन्धित व्यक्ति एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े रहते हैं। किसी भी कठिनाई अथवा अभाव के समय नातेदारों अथवा बन्धु—बान्धवों का सहयोग लेना आव"यक समझा जाता है। अनेक परिस्थितियों में नातेदारी समूह के द्वारा व्यक्ति के व्यवहारों पर नियंत्रण भी रखा जाता है।

(3) **जाति**—ग्रामीण सामाजिक संरचना का दूसरा मूल आधार जाति है। जाति का निर्धारण जन्म से होता है। प्रत्येक जाति का एक परम्परागत व्यवसाय होता है। एक व्यक्ति अपनी जाति में ही विवाह करता है। जाति अन्य जातियों के साथ खान पान के नियम भी तय करती है और अपने सदस्यों पर नियंत्रण रखती है। गांव में सामाजिक संस्तरण का मुख्य आधार जाति ही है। विभिन्न जातियां परस्पर आर्थिक सम्बन्धों, कर्तव्यों एवं दायित्वों से बंधी होती हैं। जातियों की इस सम्बन्ध व्यवस्था को जजमानी प्रथा कहते हैं। प्रत्येक जाति की एक जाति पंचायत होती है जो अपने सदस्यों के व्यवहारों पर नियंत्रण रखती है तथा जातीय नियमों का उल्लंघन करने वालों को दण्ड देती है। इस प्रकार जाति ग्रामीण भारत में सामाजिक जीवन के निर्वाह का आधार स्तंभ है और व्यक्ति की जाति उसकी सामाजिकता व कियाकलापों को प्रभावित करती है।

(4) **ग्राम पंचायत**—गांव में ग्राम पंचायत सत्ता और शक्ति का केन्द्र होती है तथा समुदाय की सामाजिक संरचना को संगठित करती है। गांव पंचायत प्रारम्भ से ही, प्र"ाासन की इकाई रही है। गांव पंचायतों पर परिवार, जाति, वर्ग और वं"ा आदि का प्रभाव होता है। जाति पंचायत गांव पंचायतों के कार्य संचालन में योग देती है। परम्परागत गांव पंचायतों के स्थान पर वर्तमान में पंचायती राज के द्वारा नई पंचायतों की व्यवस्था की गयी है जो अधिक प्रजातंत्रीय प्रणाली पर आधारित है। गांव में इस नयी व्यवस्था ने ग्रामीण शक्ति संरचना, नेतृत्व, गुटबंदी, दलीय प्रणाली के नये आयामों को जन्म दिया है। ग्राम पंचायतें गांव में अनेक प्र"ाासकीय, सामाजिक एवं राजनैतिक कार्य करती है। परिवर्तित व्यवस्था ने गांवों के मौलिक जीवन को व्यापक रूप से प्रभावित किया है और ग्रामीण सामाजिक संरचना कई नवीन प्रवृत्तियों के साथ जुड़ गयी है।

(5) **मूल्य संरचना**–प्रत्येक गांव स्वयं में एक इकाई है और इस रूप में प्रत्येक गांव का सामाजिक जीवन कुछ ऐसे मूल्यों अथवा आद"ार्ा नियमों में बंधा रहता है जिन्हें ग्रामीण जीवन के लिये आव"यक समझा जाता है। इनमें कुछ मूल्य ऐसे हैं जिनका विस्तार एक बड़े क्षेत्र में पाया जाता है जबकि अनेक मूल्य ग्रामीण परम्परा अथवा वं"ा परम्परा से सम्बन्धित होने के कारण एक गांव की अपनी अलग वि"ोषता के रूप में देखने को मिलते हैं। इन सामाजिक मूल्यों के द्वारा ही व्यक्तिगत व्यवहारों का निर्धारण होता है तथा यह मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होते रहते हैं।

(6) **प्रतिमान, मूल्य और परिवर्तन**–ग्रामीण सामाजिक संरचना का सम्बन्ध ग्रामीण आद"ार्ों , मूल्यों तथा बाह्य प्रभाव से भी है। सामाजिक मूल्य और आद"ार्ा मानव व्यवहार को तय करते हैं। ग्रामीण सामाजिक संरचना और ग्रामों के आन्तरिक प्र"ाासन एवं संगठन को नेतृत्व ने भी प्रभावित किया है। ग्रामों की सामाजिक संरचना के उल्लेख के दौरान गांवों में आने वाले नवीन सामाजिक परिवर्तनों का भी उल्लेख किया जाना चाहिऐ। वर्तमान में ग्रामोत्थान की अनेक योजनायें प्रारम्भ की गयी हैं। सामुदायिक विकास योजनाओं, जमींदारी उन्मूलन अधिनियम, पंचवर्षीय योजनाओं, पंचायती राज आदि के प्रभाव के कारण परम्परात्मक प्राचीन ग्रामीण सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वर्तमान समय में ग्रामीण जीवन से सम्बन्धित आद"ार्ों एवं मूल्यों में भी परिवर्तन आये हैं। ग्रामीण जीवन के कई क्षेत्रों में आज आधुनिकीकरण का प्रभाव स्पष्टतः दिखाई पड़ने लगा है।

(7) **धर्म**–भारतीय ग्रामीण समुदाय धर्म प्रधान है। कोई समाज कितना ही आदिम अथवा सभ्य क्यों न हो, धर्म सभी समाजों की एक अनिवार्य और सर्वव्यापी वि"ोषता है। भारत के ग्रामीण जीवन में धर्म केवल वि"वास ही नहीं है बल्कि जीवन की एक ऐसी विधि है जिसका सम्पूर्ण सामाजिक संरचना पर एक स्पष्ट प्रभाव है। भारतीय ग्रामीण समुदाय में धर्म की कुछ वि"ोषताओं की अभिव्यक्ति स्थानीय वि"ोषताओं के रूप में देखने को मिलती है जबकि अनेक धार्मिक वि"ोषताओं का सम्बन्ध सम्पूर्ण राष्ट्रीय जीवन से भी है। धर्म ग्रामीण सामाजिक जीवन की एक अनिवार्य वि"ोषता है।

(8) **आर्थिक संस्थाऐं**–ग्रामीण आर्थिक संस्थाऐं भी ग्रामीण सामाजिक संरचना का भाग हैं। गांव की अर्थव्यवस्था जाति व्यवस्था से सम्बन्धित है। अधिकां"ा लोग कृषि के द्वारा अपना जीवन यापन करते हैं। गांव के लोगों का अपनी जमीन से घनिष्ठ लगाव होता है और जमीन के स्वामित्व के आधार पर व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति का मूल्यांकन किया जाता है। सामान्यतः कृषि के साथ साथ प"ुपालन तथा प्रत्येक जाति द्वारा अपना परम्परागत व्यवसाय भी किया जाता है। एक जाति दूसरी जाति की सेवा करती है जिसे जजमानी प्रथा व्यवस्था कहते हैं। जजमानी प्रथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था की आधारि"ाला रही है। वर्तमान समय में यह परम्परागत व्यवस्था कई कारणों से संकट से गुजर रही है। अब परम्परात्मक व्यवसाय एवं पूरे परिवार द्वारा कृषि करना लुप्त होती हुई ग्रामीण वि"ोषताऐं रह गयी हैं।

(9) **भौक्षणिक संस्थाऐं**–परम्परागत रूप से ग्रामों में औपचारिक ि"ाक्षण संस्थाऐं सीमित मात्रा में ही पायी जाती हैं। किन्तु अनौपचारिक रूप से ग्रामीण लोगों का ि"ाक्षण एवं प्रि"ाक्षण जाति द्वारा होता रहा है। एक व्यक्ति अपने परम्परागत जातीय व्यवसाय का प्रि"ाक्षण अपने पुरखों से प्राप्त करता है। परिवार ही व्यापार, कृषि एवं दस्तकारी का ज्ञान अपने सदस्यों को प्रदान करता है। कृषक, लुहार, सुनार, चर्मकार, धोबी, नाई, ढोली और पुजारी अपने व्यावसायिक ज्ञान अपनी सन्तानों को सिखाते हैं। परिवार द्वारा मनाये जाने वाले त्योहारों, उत्सवों एवं पर्वों द्वारा व्यक्ति को धार्मिक प्रि"ाक्षण मिलता है। गांवों की आधुनिक ि"ाक्षा की पूर्ति के लिये ि"ाक्षण संस्थायें खोली जा रही हैं। प्रौढ़ ि"ाक्षण का कार्य भी सामुदायिक विकास योजना के अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया है। कृषि एवं उद्योगों के प्रि"ाक्षण की व्यवस्था भी पंचायती राज और सामुदायिक विकास योजना के द्वारा की गयी है। ये नए प्रयोग गांवों में तार्किकता एवं अन्य कई सोच को जागृत करने में सफल रहे हैं जिससे परम्परागत संरचना व्यापक रूप से प्रभावित हुई है। अब ग्रामीणजन भी अपने बच्चों को अंग्रेजी माध्यम से ि"ाक्षा दिला रहे हैं और परम्पराऐं भुला रहे हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार, विवाह, नातेदारी और जाति तथा धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं शैक्षणिक संस्थाऐं, सामाजिक प्रतिमान एवं मूल्य, गांव की सामाजिक संरचना के निर्माण में योग देते हैं। एस० सी० दुबे कहते हैं कि 'गांव सामाजिक संरचना की एक इकाई के नाते नातेदारी एवं जाति की सीमाओं को लांघकर अनेक असम्बन्धित परिवारों को एक एकीकृत बहुजाति समुदायों में बांधता है।'

8.8 ग्रामीण सामाजिक संरचना की वि"ोशताऐं

श्रीनिवास, मेरियट, स्मिथ तथा दुबे द्वारा जिन विभिन्न गांवों का अध्ययन किया गया है उनके आधार पर भारतीय ग्रामीण संरचना की सामान्य वि"ोषताओं को निम्नांकित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

(1) ग्रामीण संरचना कृषि प्रधान है। इसका तात्पर्य है कि ग्रामों में व्यक्ति की स्थिति, समूह निर्माण की प्रक्रिया, आर्थिक सम्बन्धों के निर्धारण, भू–स्वामित्व और कृषि की प्रकृति से जुड़ी हुई है।

(2) यद्यपि भारत के गांवों में विभिन्न जातियां तथा धार्मिक समूह साथ–साथ रहते हैं लेकिन प्रत्येक समूह की सामाजिक स्थिति का निर्धारण परम्परागत रूप से होता है। ग्रामीण संरचना में आज भी आर्थिक साधनों तथा धन के संचय का इतना महत्व नहीं है जितना कि परम्पराओं के अनुसार व्यवहार करने का।

(3) ग्रामीण संरचना में परिवार तथा नातेदरी वे मूल इकाइयां है जिनके सन्दर्भ में व्यक्ति को अपने गांव में एक वि"ोष स्थिति प्राप्त होती है तथा उसका अन्य समूहों से प्रभुत्व अथवा अधीनता का सम्बन्ध स्थापित होता है।

(4) जातिगत मान्यताओं का ग्रामीण संरचना में एक महत्वपूर्ण स्थान है। खान–पान, सामाजिक सम्पर्क, विवाह तथा व्यवसाय के क्षेत्र में व्यक्ति के व्यवहारों पर जातिगत मान्यताओं का ही सबसे अधिक प्रभाव होता है।

(5) व्यक्ति की आर्थिक स्थिति का निर्धारण भू–स्वामित्व के आधार पर होता है। गांव में आय के अन्य साधन होते हुये भी व्यक्ति के पास यदि भूमि नहीं होती तो साधारणतया उसे सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं हो पाती।

(6) ग्रामीण संरचना में उन समूहों का प्रभाव सबसे अधिक है जो बड़ी–बड़ी भूमि के स्वामी हैं लेकिन वे स्वयं भूमि पर कृषि न करके उस पर अन्य व्यक्तियों से कृषि करवाते हैं।

(7) ग्रामीण संरचना में नियंत्रण की स्थापना का कार्य मुख्य रूप से जनमत तथा धार्मिक नियमों के द्वारा होता है। प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्य रूप से समूह के निर्णयों से बंधा रहता है।

(8) भावनात्मक जीवन के संरक्षण के लिए ग्रामीण संरचना में पारलौकिक मूल्यों का महत्व सर्वाधिक है। बुद्धिवाद का यहां कोई प्रत्यक्ष प्रभाव देखने को नहीं मिलता।

(9) अन्य समूहों की संरचना के समान ग्रामीण संरचना में भी ि"ाक्षा का महत्व है लेकिन इसका सम्बन्ध सैद्धान्तिक ि"ाक्षा से न होकर व्यवसाय और संस्कृति की व्यावहारिक सीख से है।

(10) ग्रामीण सामाजिक संरचना का विभाजन ग्रामीण गुट के रूप में देखने को मिलता है। एक–एक विस्तृत परिवार अथवा बन्धुत्व समूह द्वारा ग्रामीण गुट का निर्माण होता है तथा इनका कार्य अपने गुट की आव"यकतायें पूरी करके उसे विभिन्न क्षेत्रों में सुरक्षा प्रदान करता है।

(11) गांव की सम्पूर्ण संरचना को स्थायी बनाने का कार्य गांव की प्रभु जाति करती है। प्रभु जाति आव"यक रूप से गांव की सर्वोच्च जाति नहीं होती बल्कि यह वह जाति है जिसके सदस्य संख्या में अधिक होते हैं और साथ ही आर्थिक और राजनैतिक रूप से शक्ति सम्पन्न होते हैं।

8.9 भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना सम्बन्धी अध्ययन

भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए बड़े पैमाने पर समाज"ाास्त्रीय अध्ययन किये गये हैं, वि"ोषकर सन 1950–60 की अवधि में। यहां पर ऐसे कुछ अध्ययनों का संक्षिप्त उल्लेख किया जा रहा है।

1. भारत की महान समाज"ाास्त्री इरावती कर्वे ने दामले के साथ संयुक्त रूप से सन 1963 में 'ग्रुप रिले"ांस इन विलेज कम्युनिटी' शीर्षक से ग्रामीण समुदायों में समूह सम्बन्धों के अध्ययन के लिये कुछ पद्धति"ाास्त्र प्रयोग किये थे। नातेदारी, जाति और बसावट के आधार पर उन्होंने संख्यात्मक तथा गुणात्मक दोनों ही प्रकार के तथ्यों का संकलन किया था। इस अध्ययन का उल्लेख बी0 के0 नागला की पुस्तक 'भारतीय समाज"ाास्त्रीय चिन्तन' में मिलता है। नागला लिखते हैं कि इस अध्ययन हेतु प"िचमी महाराष्ट्र में पूर्वी और प"िचमी छोर पर स्थित ग्रामों का

चयन किया गया था । इससे विभिन्न परिवे"ा उपलब्ध हो गये थे। 21 जातियों के 343 व्यक्तियों को अध्ययन में सम्मिलित किया गया था। वाडी को छोड़ कर अधिकां"ा लोग 2 पीढ़ियों से अधिक समय से गांव में रह रहे थे। सभी ग्रामों में पारिवारिक संरचना लगभग एक ही थी।

अधिकां"ा लोग चाहते थे कि उनकी सन्तान अपने पारम्परिक व्यवसाय के साथ जुड़ी रहे। अधिकां"ा का व्यवसाय कृषि था और कुछ लोग सेवा क्षेत्र तथा दस्तकारी में संलग्न थे। कुछ परिवर्तन"ाील लोग श्वेत वसन रोजगार करना चाहते थे। अधिकां"ा गांवों में जमींदार व का"तकार एक ही जाति के थे। यदि किसी को किसी काम के लिये उधार लेना पड़े तो वह अपनी जाति के बाहर उधार मांगने जाता था । नियमानुसार किसी अवसर के भोजन मात्र नातेदारियों तक ही सीमित थे। कृषकों तथा व्यावसायियों द्वारा विवाह के अवसर पर भोजन के लिये सारा गांव आमंत्रित किया जाता था। अ"पृ"यों तथा सेवारत लोगों में ये आमंत्रण जाति सदस्यों तथा नातेदारों तक ही सीमित थे।

जहां तक अनुसूचित जातियों का प्र"न था, ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में उनका कोई स्थान नहीं था। सार्वजनिक सुविधाओं के उपयोग के लिये इन जातियों को मनाही थी। ग्रामीण व्यवस्था की कार्यप्रणाली में उनकी भूमिका समाप्त प्रायः थी, किन्तु इनकी भूमिका को नकारा भी नहीं जा सकता था। उदाहरण के लिये उन्होंने कृषकों के मृत प"ाुओं के शवों को हटाना बन्द कर दिया था।

अध्ययनकर्ताओं ने माना कि ग्राम की अधिकां"ा गतिविधियां नातेदारी समूहों तक ही सीमित थीं। अन्तर्सामूहिक गतिविधियां जाति नियमों से प्रभावित थीं। मनोवृत्तियां तथा जनमत भी जाति व्यवस्था द्वारा निर्धारित नियमों से प्रतिबन्धित थे। जो लोग अपने व्यवसाय के कारण अंतर्निर्भर थे वे आपस में किसी वि"ोष प्रकार के सम्बन्धों को स्थापित करने से प्रतिबन्धित थे।

2. मैकिम मेरियट की दृश्टि में कि"ानगढ़ी गांव की सामाजिक संरचना : सन 1955 में एक महत्वपूर्ण पुस्तक प्रकां"ात हुई–'विलेज इन्डिया : स्टडीज इन लिटिल कम्युनिटी'। इसके सम्पादक मैकिम मेरियट थे। यह पुस्तक ग्रामीण अध्ययनों पर लेखों का संकलन था। पुस्तक में दे"ाी व विदे"ाी दोनों प्रकार के लेखकों के लेख संकलित हैं। इन्हीं में से एक लेख स्वयं मैकिम मेरियट का है– 'लिटिल कम्युनिटी इन इंडीजिनस सिविलाइजे"ान।' दिसम्बर 1950 से अप्रैल 1952 के मध्य मेरियट ने उत्तर प्रदे"ा के अलीगढ़ जिले के कि"ानगढ़ी गांव में यह अध्ययन पूर्ण किया था।

कि"ानगढ़ी में 24 स्थानीय जाति समूह रहते हैं। गांव की कुल जनसंख्या 850 थी। सबसे बड़ा जाति समूह ब्राह्मणों का था जो कि मुख्य रूप से किसान हैं। ब्राह्मणों के उपरान्त चर्मकार, जाट, कुम्हार तथा मुस्लिम फकीरों की संख्या आती है। अन्य जातियों के छोटे छोटे परिवार भी हैं। प्रत्येक जाति में कई वं"ाों के लोग हैं। एक वं"ा के लोगों में वं"ा भक्ति पायी जाती है। वर्तमान में वं"ा समूहों का संगठन दुर्बल होता जा रहा है।

कि"ानगढ़ी के लोगों के वैवाहिक सम्बन्ध आस पास के कई गांवों से हैं। इस गांव तथा आसपास के छः गांवों में विवाह सम्बन्ध स्थापित करना वर्जित है क्योंकि

ये सभी परस्पर रक्त सम्बन्धी हैं। विवाह का क्रम एक ही दि"ाा में चलता है। लड़की देने वाले गांव को लड़की लेने वाले गांव से नीचा माना जाता है। विवाह पर व उसके उपरान्त भी लड़की के ससुराल वालों द्वारा परिवार को कुछ न कुछ दिया ही जाता है। दुधारू प"ाुओं में से एक–चौथाई प"ाु विवाह सम्बन्धियों द्वारा भेंट दिये गये थे। ऋणों का एक चौथाई भाग विवाह के लिये लिया जाता था।

विवाह व अन्य उत्सवों पर स्वयं की जाति के अतिरिक्त दूसरी जातियों के लोग भी सहभागिता करते हैं। शादी से पूर्व दस रातों तक अनेकों महिलायें बिन बुलाये शादी वाले घर में गीत गाती हैं। शादी की दावतों व जुलूसों में पुरूष भी सम्मिलित होते हैं। दावतें क्रम"ाः वं"ा समूह, जाति, अन्य जाति व पास के गांव से दी जाती हैं। विवाह, जन्म, मृत्यु एवं अन्य अवसरों पर न्यौता देने की प्रथा पायी जाती है। बड़े त्यौहार सभी जातियों द्वारा एक साथ मिलकर मनाये जाते हैं। कुछ दिनों सभी जातियों की खेल प्रतियोगितायें भी आयोजित होती हैं। वार्षिक मेले व देवताओं की पूजा में भी सभी जातियों के लोग सहभाग करते हैं।

जहां तक कि"ानगढ़ी गांव की शक्ति संरचना व राजनैतिक प्रस्थिति का प्र"न है, जमींदार के नेतृत्व में नियंत्रण व अनु"ाासन था। गांव में गुटबाजी के चलते पंचायत सही से कार्य नहीं कर पा रही थी। पंचायत में सभी जातियों का उचित प्रतिनिधित्व होने के बाद भी समन्वय का अभाव पाया गया। गांव में पंचायत अदालत भी है जो मुकदमों की सुनवाई करती है। इस पंचायत की कुल सदस्य संख्या 25 है। सभी सदस्य जमींदार हैं। इनमें भी समन्वय का अभाव है।

535 एकड़ समतल व उपजाऊ भूमि वाले कि"ानगढ़ी गांव की आर्थिक स्थिति संतोषजनक है। सिंचाई अधिकां"ातः कुओं द्वारा होती है। पानी निकालने का काम बैलों व ढेकालियों की मदद से किया जाता है। जमीन उपजाऊ है अतः लोगों को खाद्यान्न व प"ाुओं को चारे की कमी नहीं होती। निम्न जाति के लोग कर्जमंद हैं, जो रूपये व अनाज देकर साहूकार का कर्ज चुकाते हैं। सभी जातियां अपने परम्परागत व्यवसायों में संलग्न पायी गयी।

3 एस0 सी0 दुबे का शमीरपेट गांव का अध्ययन :

दुबे द्वारा यह अध्ययन सन 1951–52 में हैदराबाद और सिकन्दराबाद से 25 मील दूर स्थित शमीरपेट गांव में सम्पन्न किया गया था। इस अध्ययन का प्रका"ान सन 1955 में 'इन्डियन विलेज' पुस्तक के रूप में हुआ। इस अध्ययन का शोध प्रारूप अन्तर्अनु"ाासनिक था। दुबे व उनके समाज वैज्ञानिकों की पूरी एक टीम ने अध्ययन को पूर्णता प्रदान की। इस अध्ययन के महत्व को रेखांकित करते हुये बी0 के0 नांगला अपनी कृति भारतीय समाज"ाास्त्रीय चिन्तन में लिखते हैं–ग्राम का यह अध्ययन बहुत विस्तृत तथा गंभीर था। ग्रामों पर लिखे गये मोनोग्राफ में से यह पहली रचनाओं में से एक था । इस अध्ययन के प्रमुख निष्कर्ष इस प्रकार हैं –

(अ)सामाजिक संरचना : विभिन्न जातियों के मध्य भोजन तथा सामाजिक सहवास पर प्रतिबन्ध है, सभी जातियां अन्तर्वैवाहिक हैं, व्यवसायों पर जातियों का पीढ़ीगत एकाधिकार है, हिन्दू तथा मुस्लिम धार्मिक संगठन व प्र"ाासकीय संगठन के रूप में दोनों व्यवस्थायें विद्यमान हैं।

(ब) आर्थिक संरचना : गांव की आर्थिकी का मूल आधार गाय और भैंस के दूध का विक्रय, ि"ाकार, मत्स्य पालन, फलों का व्यापार, जड़ी बूटी उत्पादन व विक्रय व कंदमूल फल एकत्र करना है। गैर कृषि व्यवसाय के रूप में कुम्हार, बढ़ई, लोहार व धोबी हैं तथा सफाई कर्मचारी भी हैं।

(स) न्यायिक संरचना : गांव की अपनी पंचायत है। पंचायत का मुखिया वं"ाानुगत होता है, जिसे दे"ामुख कहा जाता है। इसका निर्णय सर्वमान्य होता है। अध्ययन के समय पंचायत में 27 लोग थे–चार गांव के अधिकारी, गांव में रहने वाली 17 बड़ी जातियों के मुखिया और 6 अन्य धनी व प्रभाव"ाली व्यक्ति। पंचायत के प्रमुख कार्य हैं–दीवानी व फौजदारी के मुकदमे निपटाना, गांव के किसी भी कार्य के लिये चंदे आदि की व्यवस्था करना व सार्वजनिक निर्माण से संबंधित कार्य हेतु सरकारी वित्तीय सहायता के लिये विचार विम"ा करना आदि।

एस0 सी0 दुबे के इस सर्वकालिक व महान अध्ययन पर टिप्पणी करते हुए टी0 बी0 बॉटोमोर ने अपनी पुस्तक 'सो"ायोलॉजी : ए गाइड टू प्रॉब्लम एंड लिटरेचर' में लिखा है, यातायात के विकास ने सामाजिक गति"ाीलता को बढ़ा दिया है और नगरीय शैक्षिक सुविधाओं की ओर आकर्षण बढ़ा है। इसके अतिरिक्त सरकार की कल्याण संस्थाओं व राष्ट्रीय राजनैतिक दलों की गतिविधियों से भी शमीरपेट के सामाजिक व राजनीतिक सोपान क्रम में परिवर्तन आया है। प्रभाव और प्रतिष्ठा के स्त्रोतों में धन, ि"ाक्षा, सरकारी सेवा में पद का भी समावे"ा हो गया है। फिर भी परिवर्तन बहुत धीमा है और परम्परागत व्यवस्था की पकड़ अब भी सुदृढ़ बनी हुई है।

8.10 ग्रामीण सामाजिक संरचना में वर्तमान परिवर्तन

भारतीय ग्रामीण संरचना में परिवर्तन का तात्पर्य परम्परागत सामाजिक संरचना में उत्पन्न होने वाले उन परिवर्तनों से है जो नवीन मूल्यों, ि"ाक्षा के प्रसार तथा संस्थात्मक परिवर्तनों से सम्बद्ध है। अनेक अध्ययनकर्ताओं का विचार है कि ग्रामीण संरचना आज पहले से भिन्न और पूर्णतया एक नवीन स्वरूप ग्रहण कर रही है। ग्रामीण संरचना में जहां परिवर्तन की प्रक्रिया उत्पन्न हुई है वहीं उसकी परम्पराओं के साथ कटिबद्धता भी बनी हुई है। इसका तात्पर्य है कि ग्रामीण समुदाय का एक भाग यदि परिवर्तन के पक्ष में है, तो दूसरा भाग आज भी परम्पराओं को अपने लिए आव"यक मानता है।

भारतीय ग्रामीण संरचना में हो रहे प्रमुख सामाजिक परिवर्तनों को निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है :–

(1) **संयुक्त परिवार में परिवर्तन**–भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना का महत्वपूर्ण आधार संयुक्त परिवार प्रणाली है। आज इस व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। पहले कृषि–युग में परिवार के सभी सदस्य एक स्थान पर ही रहकर मिल–जुलकर खेती बाड़ी का कार्य करते थे। परन्तु औद्योगीकरण के विकास के साथ–साथ संयुक्त परिवार में पाई जाने वाली यह एकता नष्ट होती गई क्योंकि

औद्योगीकरण के फलस्वरूप नौकरी का क्षेत्र सारे दे"ा में फैल गया और लोग नौकरी की खोज में अपना घर छोड़कर अलग–अलग स्थानों पर जाकर बसने लगे। इससे संयुक्त परिवार की संरचना को गहरा धक्का लगा है और संयुक्त परिवार का विघटन हो रहा है।

(2) **विवाह संस्था में परिवर्तन**– भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों में विवाह संस्था के अन्तर्गत हो रहे परिवर्तन वि"ोष रूप से उल्लेखनीय हैं। आधुनिक ि"ाक्षा, पा"चात्य संस्कृति, औद्योगीकरण, व्यक्तिवादी आद"ार्ा व सरकारी कानूनों आदि के प्रभाव के कारण हिन्दू विवाह का धार्मिक आधार लगभग समाप्त सा ही हो गया है। आज विवाह को एक धार्मिक संस्कार न मानकर स्त्री पुरूष की कुछ आव"यकताओं की पूर्ति का एक साधन मात्र माना जाता है। साथ ही दहेज प्रथा, बाल–विवाह प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक आदि के सम्बन्ध में लोगों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन देखने को मिले हैं। इतना ही नहीं, विवाह सम्बन्धी परम्परागत प्रतिबन्ध अब धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे हैं और अन्तर्जातीय विवाह, विलम्ब विवाह, जीवन–साथी का स्वतंत्र चुनाव व प्रेम–विवाह की ओर लोगों का झुकाव बढ़ रहा है। भारतीय सामाजिक संगठन में नि"चत रूप से यह अभूतपूर्व परिवर्तन है।

(3) **स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन**–आधुनिक भारतीय समाज में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन स्त्रियों की स्थिति के सम्बन्ध में हुआ है। आज स्त्री पहले की तरह पुरूष की दासी नहीं, वरन् उसकी मित्र है। आज नौकरी के अवसर केवल पुरूषों को नहीं, स्त्रियों को भी उपलब्ध हैं। इसका परिणाम यह हुआ है कि अब स्त्रियां नौकरी करने लगी हैं और इसलिए वे आर्थिक मामलों में परिवार पर कम निर्भर रहने लगी हैं। इस स्थिति में उनमें आत्म–वि"वास तथा आत्म–सम्मान की भावना पनपी है। यह नि"चय ही शुभ कार्य है।

(4) **जाति व्यवस्था में परिवर्तन**–जाति व्यवस्था भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना की एक आधारभूत संस्था है। आधुनिक युग में इस व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन देखने को मिल रहे हैं। जाति–प्रथा में जितने प्रतिबन्धों का उल्लेख है, वे सभी आज नाममात्र के रह गये हैं। आज विभिन्न जातियों के लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं, परस्पर विवाह–सम्बन्ध स्थापित करते हैं और इच्छानुसार किसी भी पे"ो को अपनाते हैं। इतना ही नहीं, आज समाज में ऊँच–नीच का संस्तरण जाति के आधार पर नहीं अपितु धन, ि"ाक्षा व अन्य वैयक्तिक योग्यताओं पर आधारित है। वास्तविकता तो यह है कि आधुनिक नवीन परिस्थितियों ने जाति–प्रथा के परम्परागत स्वरूप को बदल दिया है। साथ ही, राजनीति में जाति का महत्व बहुत बढ़ गया है अर्थात् आज जाति का राजनीतिकरण हो रहा है।

(5) **आर्थिक संगठन में परिवर्तन**–विज्ञान के आविष्कार, प्रौद्योगिकी, औद्योगीकरण और प्रजातंत्रवाद ने भारतीय सामाजिक संगठन के आर्थिक पक्ष को भी महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित किया है। भारतीय सामाजिक संगठन में यदि एक ओर उद्योगवाद और पूंजीवाद का भरपूर विकास हुआ है तो दूसरी ओर बेकारी, निर्धनता और मंहगाई ने जनता की कमर ही तोड़ दी है। यद्यपि ग्रामोद्योगों का पतन हुआ

है, परन्तु अधिक तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन के कारण दे"ावासियों के जीवन का स्तर नि"चत रूप से पहले से कहीं अधिक उच्च देखने को मिल रहा है।

(6) **धार्मिक जीवन में परिवर्तन**–आज विज्ञान का युग है। यह सर्वविदित है कि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के विरोधी हैं। इस रूप में भारतीय संगठन, जो धर्म–प्रधान रहा है, विज्ञान की प्रगति से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। वास्तविकता तो यह है कि वैज्ञानिक आविष्कारों के साथ–साथ धार्मिक कट्टरता में कमी आई है। और तो और धर्म से सर्वाधिक प्रभावित ग्रामीण भी आज धर्म से विमुख होते जा रहे हैं। पहले ग्रामवासी धर्म, पूजा–पाठ इत्यादि को जीवन का एक अभिन्न अंग मानते थे, परन्तु आज उनके दृष्टिकोण में अन्तर आ गया है। अतः स्पष्ट है कि भारतीय समाज में धर्म का प्रभाव निरन्तर घट रहा है।

(7) **सांस्कृतिक जीवन में परिवर्तन**–भारतीय समाज के सांस्कृतिक जीवन में भी हमें आज अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। इस सम्बन्ध में वि"ोषकर पा"चात्य संस्कृति के कुछ प्रभावों का उल्लेख किया जा सकता है। पि"चम सभ्यता व संस्कृति के प्रभाव के कारण स्त्रियां पढ़ने लिखने लगी हैं और नौकरी भी करती हैं। साथ ही प्रेम–विवाह भी काफी मात्रा में हो रहे हैं तथा विवाहोपरान्त विवाह–विच्छेदों की संख्या की क्रम"ाः बढ़ रही है। पर्दा–प्रथा लगभग समाप्त सी हो गई है और विवाह अब पा"चात्य तरीकों से सम्पन्न होने लगे हैं। इतना ही नहीं, दे"ा में रहन–सहन व वे"ाभूषा पर भी पा"चात्य संस्कृति का प्रभाव स्पष्ट रूप से देखने को मिलता है। स्त्री–पुरूष पा"चात्य जीवन शैली में जीने के आदी हो गए हैं, इसलिए आज भारतीय संस्कृति को पा"चात्य संस्कृति से अत्यधिक प्रभावित कहा जा सकता है।

(8) **अन्य महत्वपूर्ण परिवर्तन**–इन परिवर्तनों के अतिरिक्त भारतीय सामाजिक संगठन में अन्य अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों ने भी जन्म लिया है। आश्रम व्यवस्था, कर्म का सिद्धान्त, पुरूषार्थ और संस्कार जो भारतीय समाज के आधार स्तम्भ थे, आज कोरे आद"ार्ा बनकर रह गये हैं। इसी प्रकार गांव–पंचायतों में ''पंच परमे"वर'' की धारणा विलुप्त हो गई है। आज इस समाज में अपराध, व्याभिचार, भ्रष्टाचार, झूठ व धोखाधड़ी आदि का कहीं अधिक बोलबाला है। वि"ोषकर ग्रामीण समाज का यदि इस सम्बन्ध में वि"लेषण किया जाए तो स्पष्ट होगा कि नैतिकता के दृष्टिकोण से ग्रामों का स्तर कहीं अधिक गिर गया है।

उपर्युक्त वर्णन से भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में हो रहे कुछ प्रमुख परिवर्तनों की प्रकृति बहुत कुछ स्पष्ट हो जाती है। वास्तव में किसी भी सामाजिक संरचना में होने वाले परिवर्तनों को पूर्णतया स्पष्ट नहीं किया जा सकता क्योंकि परिवर्तन की प्रक्रिया तो निरन्तर चलती ही रहती है। इतना सब कुछ होते हुए भी यह नि"चत है कि भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना इस समय अभूतपूर्व परिवर्तनों से गुजर रही है। कुछ समाज"ाास्त्रियों ने भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में आ रहे परिवर्तनों का अपने शब्दों में उल्लेख किया है। कुछ विचार प्रस्तुत हैं –

एस0 सी0 दुबे के अनुसार भारतीय ग्रामीण संरचना में होने वाले परिवर्तन :

1. धार्मिक दृष्टिकोण (Religious outlook) समाप्त होता जा रहा है और इसके विपरीत सांसारिक दृष्टिकोण पनपता जा रहा है। अर्थ के महत्व में बृद्धि हो रही है।
2. जाति–प्रथा निर्बल होती जा रही है और सामाजिक संस्तरण का आधार आर्थिक होता जा रहा है।
3 सामाजिक संस्तरण का जातिगत आधार लुप्त होता जा रहा है और उसके स्थान पर धन, ि"ाक्षा, क्षमता, योग्यता आदि को अधिक महत्व दिया जा रहा है।
4– जातीय कठोरता कम हो रही है और इसके प्रतिबन्ध अब टूट रहे हैं। जाति में विवाह तो अभी भी प्रचलित है।
5– व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण अब जाति के आधार पर नहीं, वरन् गुणों एवं योग्यता के आधार पर होता है।
6– ग्रामीण समुदायों के उच्च वर्गों ने पा"चात्य व आधुनिक जीवन–प्रतिमानों को अपना लिया है और निम्न वर्ग की जनता उच्च वर्ग का अनुकरण करने लगी है।

ए0 आर0 देसाई के अनुसार भारतीय ग्रामीण संरचना में होने वाले परिवर्तन :

1. सामूहिकता के स्थान पर व्यक्तिवादिता व वैयक्तिक प्रतिस्पर्धा बढ़ रही है।
2. व्यक्तिगत स्वामित्व की समाप्ति।
3. अब बाजार अर्थव्यवस्था का विकास होता जा रहा है।
4. म"ाीनीकरण के प्रभाव से कुटीर उद्योग धन्धे नष्ट हो रहे हैं।
5. कुटीर उद्योगों के नष्ट होने से दस्तकार बेकार हो रहे हैं और भूमिहीन मजदूरों की संख्या में वृद्धि हो रही है।
6. पारिवारिक सत्ता का ह्रास हो रहा है और संयुक्त परिवार का स्थान छोटे परिवार लेते जा रहे हैं।

8.11 बोध प्र"न–02

---

1. ग्रामीण सामाजिक संरचना का अर्थ स्पष्ट कीजिये।
2. ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रमुख इकाईयां कौन सी हैं ?
3. ग्रामीण सामाजिक संरचना किस सीमा तक परिवर्तित हुई है ?
4. ग्राम अध्ययन की प्रकृति स्पष्ट कीजिए।

8.12 सारां"ा

इस इकाई में हमने कुछ महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर ज्ञानार्जन किया, यथा–सामाजिक संरचना किसे कहते हैं ? ग्रामीण सामाजिक संरचना किसे कहते हैं ? ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रमुख निर्माणक इकाईयां कौन सी हैं ? भारत में अब तक हुए ग्राम अध्ययनों से क्या निष्कर्ष सामने आये हैं ? व भारतीय ग्रामीण सामाजिक

संरचना में आ रहे वर्तमान परिवर्तन कौन–कौन से हैं ? ज्ञात हुआ कि किसी समाज की बाहरी रूपरेखा को उस समाज की सामाजिक संरचना कहा जाता है। समाज की आन्तरिक संरचना सामाजिक व्यवस्था कहलाती है। सामाजिक संरचना के प्रमुख विचारक टॉलकट पारसन्स , एस0 एफ0 नैडेल, कार्ल मैनहीम व रेडक्लिफ ब्राउन आदि हैं।

भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना की प्रमुख इकाईयां परिवार, नातेदारी, जाति, पंचायत, मूल्य संरचना व धर्म आदि हैं। भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना कृषि प्रधान है और आज भी इस समाज में आर्थिक साधनों व धन संचय का इतना अधिक महत्व नहीं है, जितना कि परम्परागत मूल्यों व आद"ार्ों के अनुपालन का । भारत में एस0 सी0 दुबे, एम0 एन0 श्रीनिवास, बृजराज चौहान, इरावती कर्वे, आन्द्रे बिताई व मैकिम मेरियट प्रमुख ग्रामीण समाज"ाास्त्री रहे हैं जिन्होंने भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना का वृहद् अध्ययन किया है।

यह भी स्पष्ट हुआ कि भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना परिवर्तन"ाील है। वर्तमान में हम देख रहे हैं कि संयुक्त परिवार विघटित हुए हैं, विवाह के स्वरूप में परिवर्तन आया है, जाति के बन्धन ि"ाथिल हुए हैं और सांस्कृतिक व आर्थिक जीवन में परिवर्तन आ रहे हैं।

8.13 **प्रयुक्त** शब्दावली

सामाजिक संरचना : प्रत्येक समाज की रचना अनेक अंगों से मिलकर होती है। ये सभी अंग मिलकर जिस ढांचे का व्यवस्थित तरीके से निर्माण करते हैं, समाज के उसी ढांचे को सामाजिक संरचना कहते हैं।

ग्रामीण सामाजिक संरचना : किसी गांव में परिवार, नातेदारी समूह, संस्थाओं, सत्ता, शक्ति, धर्म, जाति, ि"ाक्षा और अर्थ व्यवस्था के आधार पर जो बाहरी ढांचा दिखाई पड़ता है, उसे ही ग्रामीण सामाजिक संरचना कहते हैं।

8.14 **अभ्यास** प्र"न

---

1 सामाजिक संरचना के प्रमुख विद्वान हैं–

(क) एस0 एफ0 नैडेल (ख) रेडक्लिफ ब्राउन

(ग) हरबर्ट स्पेन्सर (घ) उपरोक्त सभी

2 सामाजिक संरचना एक अखण्ड इकाई नहीं है, यह कथन है–

(क) सत्य (ख) असत्य

(ग) भ्रामक (घ) अवैज्ञानिक

3 'रूरल प्रोफाइल्स' पुस्तक के लेखक हैं–

(क) रामकृष्ण मुकर्जी (ख) राधा कमल मुकर्जी

(ग) ए0 आर0 देसाई (घ) डी0 एन0 मजूमदार

4 ग्रामीण सामाजिक संरचना की सबसे महत्वपूर्ण इकाई है–

(क) जाति व जनजाति (ख) नातेदारी
(ग) गांव की बसावट (घ) ये सभी

5 गांव में सामाजिक संस्तरण का प्रमुख आधार है–
(क) ि"ाक्षा (ख) व्यवसाय
(ग) जाति (घ) इनमें से कोई नहीं

6 'भारतीय समाज"ाास्त्रीय चिन्तन' पुस्तक के लेखक हैं–
(क) एम0 एन0 श्रीनिवास (ख) एस0 सी0 दुबे
(ग) के0 एल0 "ार्मा (घ) बी0 के0 नागला

7 'इण्डियन विलेज' पुस्तक के लेखक हैं–
(क) ए0 आर0 देसाई (ख) एस0 सी0 दुबे
(ग) मैकिम मेरियट (घ) एम0 एन0 श्रीनिवास

8 'विलेज इण्डिया' पुस्तक के सम्पादक हैं–
(क) राम कृष्ण मुकर्जी (ख) इरावती कर्वे
(ग) मैकिम मेरियट (घ) इनमें से कोई नहीं

9 मैकिम मेरियट के अध्ययन में सम्मिलित गांव कौन सा है–
(क) तंजौर (ख) कि"ानगढ़ी
(ग) राणावतों की सादड़ी (घ) शमीरपेट

10 एस0 सी0 दुबे के अध्ययन में कौन सा गांव सम्मिलित था–
(क) भोजपुर (ख) शमीरपेट
(ग) रामपुर (ग) तंजौर

8.15 अभ्यास प्र"नों के उत्तर

---

1 (घ) उपरोक्त सभी 2 (क) सत्य 3 (घ) डी0 एन0 मजूमदार 4 (घ) ये सभी 5 (ग) जाति 6 (घ) बी0 के0 नांगला 7 (ख) एस0 सी0 दुबे 8 (ग) मैकिम मेरियट 9 (ख) कि"ानगढ़ी 10 (ख) शमीरपेट।

8.16 निबन्धात्मक प्र"न

1– सामाजिक संरचना से आप क्या समझते हैं ? सामाजिक संरचना की प्रमुख वि"ोषताओं को स्पष्ट कीजिऐ।

2– ग्रामीण सामाजिक संरचना की अवधारणा को इसकी निर्माणक इकाईयों के आधार पर स्पष्ट कीजिए।

3– भारत में ग्रामीण सामाजिक संरचना सम्बन्धी कुछ महत्वपूर्ण अध्ययनों को प्रस्तुत कीजिए।

4– भारतीय ग्रामीण सामाजिक संरचना में आ रहे वर्तमान परिवर्तनों को सामने लाइये।

8.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

बैते, आंद्रे, 'कास्ट, क्लास एंड पावर : चैंजिंग पैटर्न ऑफ स्ट्रेटिफिके"ान इन तंजौर विलेज' (1965), यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया, यू0एस0ए0।
चौहान, बी0 आर0, ' भारत में ग्रामीण समाज' (1988), ए0 सी0 ब्रदर्स, उदयपुर।
दोषी, एस0 एल0 एण्ड पी0 सी0 जैन, 'रूरल सो"ायोलॉजी' (1999), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
दुबे, एस0 सी0 , 'भारतीय ग्राम (अनु0 : योगे"ा अटल, 1996), वाणी प्रका"ान, नई दिल्ली।
दुबे, एस0 सी0, 'इण्डियन चेंजिंग विलेजेज' (1958), लंदन : रूट्ज एण्ड कीगन पाल।
कर्वे इरावती एंड दामले, य"ावन्त भाष्कर, 'ग्रुप रिले"ांस इन विलेज कम्युनिटी' (1963), मोनोग्राफ सीरीज 24, पुणे, डेक्कन कॉलेज।
मजूमदार, डी0 एन0, 'कास्ट एण्ड कम्युनिके"ान इन एन इण्डियन विलेज' (1958), ए"ाया पब्लि"िांग हाउस, बॉम्बे।
मेरियट, मैकिम, ' विलेज इण्डिया' (1961), ए"ाया पब्लि"िांग हाउस, बॉम्बे।
नागला, बी0 के0, ' भारतीय समाज"ाास्त्रीय चिन्तन' (2015), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
रेडफील्ड, रॉबर्ट, 'लघु समुदाय' (1973), राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, जयपुर।
यादव, रामगणे"ा (सम्पादक), 'भारतीय समाज"ाास्त्र के अग्रणी चिन्तक' (2014), ओरियंट ब्लैकस्वान, हैदराबाद।

8.18 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

आहूजा, राम, 'भारतीय समाज' (2004), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
देसाई, ए0 आर0, 'भारतीय ग्रामीण समाज"ाास्त्र' (1997), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
मुकर्जी, आर0 एन0, 'समकालीन उच्चतर समाज"ाास्त्रीय सिद्धान्त' (2002), विवेक प्रका"ान, दिल्ली।
सिंह, योगेन्द्र, 'मॉडर्नाइजे"ान ऑफ इण्डियन ट्रेडि"ान' (1994), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
श्रीवास्तव, ए0 आर0 एन0, 'भारतीय समाज' (2002) के0 के0 पब्लिके"ान्स, इलाहाबाद।

इकाई 9 ग्रामीण सामाजिक संस्थाऐं–परिवार, नातेदारी और विवाह
Rural Social Institutions- Family, Kinship and Marriage

इकाई की रूपरेखा

9.1 उद्दे"य

9.2 प्रस्तावना

9.3 सामाजिक संस्था का अर्थ व परिभाषायें

9.3.1. संस्था के आव"यक तत्व या वि"ोषतायें

9.3.2. संस्थाओं के प्रकार

9.3.3 संस्थाओं के सामाजिक प्रकार्य या महत्व

9.4 बोध प्र"न–01

9.5 भारतीय ग्रामीण सामाजिक संस्थायें

9.6 ग्रामीण परिवार

9.6.1 ग्रामीण परिवार की परिभाषायें

9.6.2 ग्रामीण परिवार की वि"ोषतायें

9.6.3 ग्रामीण परिवार के कार्य

9.7 ग्रामीण परिवार में परिवर्तन

9.8 बोध प्र"न–02

9.9 नातेदारी

9.9.1 नातेदारी का अर्थ व परिभाषायें

9.9.2 नातेदारी के भेद

9.9.3 नातेदारी की श्रेणियाँ

9.9.4 भारत में नातेदारी व्यवस्था

9.10 ग्रामीण सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्व

9.11 बोध प्र"न–03

9.12 ग्रामीण विवाह

9.12.1 विवाह का अर्थ व परिभाषायें

9.12.2 ग्रामीण विवाह के उद्दे"य

9.12.3 ग्रामीण विवाह सम्बन्धी निषेध

9.12.4 ग्रामीण विवाह के प्रकार

9.12.5 ग्रामीण विवाह का संस्थात्मक महत्व

9.12.6 ग्रामीण विवाह की समस्यायें।

9.13 बोध प्र"न–04

9.14 सारां"ा

9.15 प्रयुक्त शब्दावली

9.16 अभ्यास प्र"न

9.17 अभ्यास प्र"नों के उत्तर

9.18 निबन्धात्मक प्र"न

9.19 सन्दर्भ ग्रथ सूची

9.20 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

9.1 उद्दे"य

इस इकाई के अध्ययन के प"चात आप यह जान सकेंगे कि–

–सामाजिक संस्था की सम्पूर्ण अवधारणा क्या है ?
– भारतीय ग्रामीण सामाजिक संस्थायें कौन–कौन सी हैं ?
– ग्रामीण परिवार से क्या अभिप्राय है ?
– ग्रामीण परिवार के प्रकार्य कौन–कौन से हैं ?
– ग्रामीण परिवार में कौन–कौन से परिवर्तन आ रहे हैं ?
– ग्रामीण समाज में नातेदारी से क्या अभिप्राय है ?
– ग्रामीण सामाजिक संरचना में नातेदारी का क्या महत्व है ?
– ग्रामीण विवाह किसे कहते हैं ?
– ग्रामीण विवाह के क्या उद्दे"य हैं ?

– ग्रामीण विवाह में कौन–कौन से निषेधों का पालन किया जाता है ?
– ग्रामीण समाज में विवाह के कौन से स्वरूप प्रचलित हैं ?
– ग्रामीण समाज में विवाह का क्या महत्व है ?
– ग्रामीण विवाह की समस्यायें कौन सी हैं ?

9.2 प्रस्तावना

कोई भी समाज असम्बद्ध अवधारणा नहीं है। प्रत्येक समाज में कोई न कोई व्यवस्था अव"य ही पायी जाती है। मैकाईवर एंड पेज ने समाज को रीति–रिवाजों और कार्य प्रणालियों की, अधिकार और पारस्परिक सहयोग की, समूह और भागों की, मानव व्यवस्था के नियंत्रणों और स्वाधीनताओं की एक व्यवस्था माना है। समाज के सदस्यों की सामान्य आव"यकताओं की पूर्ति होती रहे। आव"यकता पूर्ति की इन्हीं कार्य प्रणालियों को समाज"ाास्त्र में सामाजिक संस्थायें कहा जाता है। स्पष्ट है कि सामाजिक संस्थाओं के द्वारा मानवीय आव"यकताओं की पूर्ति की जाती है। संस्था का आरम्भ किसी एक अवधारणा या विचार से होता है। अनेक स्तरों से गुजरते हुए जब इस अवधारणा या विचार को एक नि"चित संरचना मिल जाती है, तब इसी को एक संस्था के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है।

जहां तक भारतीय ग्रामीण समाज का प्र"न है, इसमें हमें अनेक सामाजिक संस्थाओं का प्रभाव देखने को मिलता है। परिवार, विवाह, नातेदारी जाति प्रथा, धर्म, गुट, पंचायत, ि"ाक्षा व मनोरंजन ऐसी सामाजिक संस्थायें हैं, जिनके अभाव में ग्रामीण सामाजिक जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ये संस्थायें ग्रामीण जीवन को निरन्तरता प्रदान करती हैं। ये संस्थायें ग्रामीण समाज का मार्गद"ान करती हैं, साथ ही ग्रामीण समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति, अधिकार और दायित्वों का निर्धारण करती हैं।

ग्रामीण सामाजिक संस्थायें सरल प्रकृति की होती हैं। इसमें आडम्बर का कोई स्थान नहीं होता। इन संस्थाओं के अध्ययन के द्वारा ही हम ग्रामीण समाज के व्यवहार को भली भांति समझ सकते हैं। यदि हम यह जानना चाहते हैं कि ग्रामीण समाज अपनी विविध आव"यकताओं की पूर्ति किस प्रकार करता है, उनकी संस्कृति नगरीय संस्कृति से किस प्रकार भिन्न है, ग्रामीण सामाजिक नियंत्रण की स्थिति कैसी है, ग्रामीण सामाजिक परिवर्तनों का वास्तविक स्वरूप क्या है और इन परिवर्तनों के कारण क्या हैं तो हमें ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं का अध्ययन करना ही होगा। इसी उद्दे"य की प्राप्ति के लिये अब हम आगे बढ़ने का प्रयास करेंगे।

9.3 सामाजिक संस्था का अर्थ व परिभाषायें

मनुष्य की आव"यकतायें असंख्य हैं। इनमें से कुछ आव"यकतायें ऐसी होती हैं जो जनकल्याण के लिये या समाज के विकास के लिये आव"यक होती हैं। यदि इन आव"यकताओं की पूर्ति मनमाने ढंग से की जाने लगेगी तो सामाजिक अव्यवस्था उत्पन्न हो सकती है। इसी बात को दृष्टिगत रखते हुए समाज इन आव"यकताओं की पूर्ति के लिये कुछ ऐसे नि"चत साधन या कार्य प्रणालियां नि"चत करता है जो लोगों को मान्य हों। समाज के सदस्य अपनी आव"यकताओं की पूर्ति के लिये इन्हीं साधनों, कार्य विधियों या तरीकों को अपनाते हैं। इस प्रकार ये तरीके, कार्य विधियाँ या साधन पीढ़ी दर पीढ़ी चलते रहते हैं। इन्हीं स्वीकृत विधियों, तरीकों या कार्य प्रणलियों को संस्था कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, संस्था कार्य करने के ढंगों या नियमों की एक व्यवस्था है।

संस्था की परिभाशायें :

मैकाईवर व पेज के अनुसार, 'संस्थायें सामूहिक क्रिया की वि"ोषता व्यक्त करने वाली कार्यप्रणाली के स्थापित स्वरूप अथवा अवस्था को कहते हैं।'

किंग्सले डेविस के अनुसार, 'एक संस्था को किसी एक या अधिक प्रकार्यों के चारों ओर निर्मित्त अन्तर्सम्बन्धित जनरीतियों या लोकाचारों, रूढ़ियों और कानूनों के समुच्चय के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।'

ऑगबर्न व निमकॉफ के अनुसार, 'मानवीय आव"यकताओं की पूर्ति के लिये संगठित व स्थापित प्रणालियाँ ही सामाजिक संस्थायें हैं।

उपरोक्त तीनों परिभाषाओं के वि"लेषण व संस्था के अवधारणात्मक उपबन्ध के आधार पर कहा जा सकता है कि एक सामाजिक संस्था नियमों या कार्य प्रणालियों की उस व्यवस्था का नाम है जो व्यक्तियों को सामाजिक मूल्यों के अनुरूप व्यवहार करना सिखाती है और उन पर अनेक प्रकार से नियंत्रण रखती है।

9.3.1 संस्था के आव"यक तत्व या वि"ोशताऐं

संस्था की कुछ वि"ोषताऐं या तत्व इस प्रकार हैं –

(1) **एक विचार**–संस्था का सर्वप्रथम आव"यक तत्व यह है कि इसमें एक विचार का आना अनिवार्य है। मनुष्य जब किसी आव"यकता की पूर्ति का उपाय सोचने का प्रयत्न करता है तो सबसे पहले उसके मस्तिष्क में एक विचार की उत्पत्ति होती है जो अन्य स्तरों से गुजरकर संस्था का रूप धारण करता है।

(2) **विरासत**–संस्था एक दिन में नहीं बन जाती है, इसके बनने में काफी समय लग जाता है। जब एक विधि या तरीका सामूहिक तौर पर स्वीकृत होता है और

वह पीढ़ी दर पीढ़ी चलता रहता है, तब कहीं वास्तव में संस्था का रूप स्पष्ट होता है।

(3) **वि"ाष्ट उद्दे"य**–संस्था की एक अन्य प्रमुख वि"ोषता एक वि"ाष्ट उद्दे"य है। बिना किसी वि"ाष्ट उद्दे"य के संस्था की कल्पना भी नहीं की जाती। किसी उद्दे"य के होने पर ही उस सम्बन्ध में उपाय सोचे जाते हैं और तब कहीं संस्था बनती है।

(4) **सामूहिक स्वीकृति**–यह भी संस्था की एक अति महत्वपूर्ण वि"ोषता है कि इसको समूह या समाज की स्वीकृति प्राप्त हो। बिना सामुहिक स्वीकृति के संस्था बन ही नहीं सकती।

(5) **नियमों का ढांचा**–संस्था की एक प्रमुख वि"ोषता यह भी है कि प्रत्येक संस्था के पीछे नियमों, कार्य प्रणलियों और व्यवस्थाओं आदि का ढांचा होता है जिससे संस्था की रक्षा की जाती है, उसे कार्य रूप में परिणत भी किया जाता है।

(6) **अधिक स्थायित्व**–चूंकि कोई भी संस्था एक ही दिन में नहीं बन जाती इसी कारण एक दिन में वह नष्ट भी नहीं हो सकती। वास्तव में एक संस्था के निर्माण में कई पीढ़ियों का समय लग जाता है। इस बीच संस्था के साथ अनेक परम्परायें जुड़ जाती हैं। इन परम्पराओं के कारण ही संस्था में अधिक स्थायित्व आ जाता है।

(7) **सामूहिक प्रयत्न**–संस्था किसी एक वि"ोष व्यक्ति पर निर्भर नहीं होती। दूसरे शब्दो में, संस्था का बनना या बिगड़ना किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं होता, इसके लिए सामूहिक प्रयत्नों की आव"यकता होती है।

(8) **प्रतीक**–संस्था का अन्तिम आव"यक तत्व या वि"ोषता यह है कि प्रत्येक संस्था का अपना एक प्रतीक होता है। यह प्रतीक भौतिक या अभौतिक दोनों ही रूप में हो सकता है। जैसे–विवाह संस्था का प्रतीक हिन्दुओं में 'मंगल–कल"ा' या 'मढ़वा' आदि होता है।

9.3.2 संस्थाओं के प्रकार

जब हम अपने वि"ाष्ट हितों के लिए समितियां बनाते हैं तो वहां उसके कार्य–संचालन के लिए कुछ संस्थाऐं भी विकसित हो जाती हैं। मैकाइवर और पेज के अनुसार, 'प्रत्येक समिति का एक संस्थात्मक पक्ष भी होता है जिसके अभाव में कोई भी समिति अपने लक्ष्य की प्राप्ति नहीं कर सकती'। उन्होंने निम्नलिखित तालिका के माध्यम से यह स्पष्ट किया है कि समितियों के साथ–साथ उनसे सम्बन्धित संस्थाएं भी होती हैं।

समिति	सम्बन्धित संस्थाऐं	वि"ोष हित
परिवार	विवाह, घर, उत्तराधिकार	यौन सम्बन्ध, घर, वं"ाावली
महाविद्यालय	व्याख्यान, परीक्षा प्रणाली,	ि"ाक्षण, व्यावसायिक तैयारी

	स्नातकत्व	
व्यापार	हिसाब–किताब की प्रणाली, संस्थापन, अं"ा, पूंजी	लाभ
व्यापारिक संघ (मजदूर संघ)	सामूहिक सौदेबाजी, हड़ताल, धरना	कार्य की द"ाएं
चर्च (गिरिजाघर) (धार्मिक समिति)	सम्प्रदाय, धर्म, भ्रातृत्व, उपासना के तरीके	धार्मिक विकास
राजनीतिक दल	प्राथमिक इकाईयां, राजनीतिक मंच	कार्यालय, "ाक्ति, सरकारी नीति
राज्य	विधान, वैधानिक संहिता, सरकार के स्वरूप	सामाजिक व्यवस्था का सामान्य नियमन

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है कि जहां विभिन्न प्रकार की समितियां पाई जाती हैं, वहां साथ ही विभिन्न प्रकार की संस्थाऐं भी होती हैं। प्रमुख संस्थाओं को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है– (1) सामाजिक संस्थाऐं (2) आर्थिक संस्थाऐं (3) राजनीतिक संस्थाऐं (4) धार्मिक संस्थाऐं (5) शैक्षणिक संस्थाऐं तथा (6) मनोरंजनात्मक संस्थाऐं।

9.3.3 संस्थाओं के सामाजिक प्रकार्य या महत्व

गिलिन और गिलिन के अनुसार, संस्थाओं के सामाजिक कार्य निम्नलिखित रूप में प्रस्तुत किए जा सकते हैं–

(1) **मानव व्यवहारों का नियंत्रक**–संस्थाऐं मानव व्यवहारों के नियंत्रक के रूप में अत्यधिक महत्वपूर्ण रही हैं। चूंकि संस्थाओं को सामूहिक अभिमति प्राप्त होती है, अतः जल्द ही इनका कोई उल्लंघन नहीं कर पाता। उदाहरण के लिए, हिन्दुओं की 'विवाह' संस्था को लिया जा सकता है। हिन्दुओं में आज भी अन्तर्जातीय विवाह प्रचलित नहीं है यद्यपि इनको कानूनी रूप से मान्यता दी गई है। स्पष्ट ही है कि संस्थाऐं मानव व्यवहार पर नियंत्रण रखकर सामाजिक नियंत्रण को अधिक प्रभावी बनाती हैं।

(2) **संस्कृति का वाहक**–संस्थाओं के द्वारा ही मानव संस्कृति एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित होती रहती है। उदाहरण के लिये परिवार से बच्चे को अपने परिवार की संस्कृति के बारे में ज्ञान होता है। यदि परिवार नामक संस्था न होती तो शायद यह सम्भव न होता।

(3) **सामाजिक परिवर्तनों के कारण**–संस्थाओं का निर्माण अनेक प्रथाओं एवं परम्पराओं से होकर आता है, इसलिए उनमें रूढ़िवादिता है। इस रूढ़िवादिता के कारण ही ये परिवर्तित युग की आव"यकताओं को पूरा नहीं कर पातीं। इसलिए इनको बदलने के प्रयत्न किए जाते हैं जिसके फलस्वरूप अनेक सामाजिक परिवर्तन होते हैं।

(4) **व्यक्ति के विकास एवं पगति में बाधक**–संस्थाओं में रूढ़िवादिता होने के कारण यह व्यक्ति के विकास एवं प्रगति में बाधक भी सिद्ध हो सकती हैं। उदाहरण के लिये हिन्दुओं में 'विवाह' संस्था को लिया जा सकता है। इसमें अन्तर्जातीय विवाह का प्रचलन कम है, इसीलिये यह समुदाय या अन्य समुदायों से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाया जिससे राष्ट्रीय एकता भी अपेक्षित मात्रा में नहीं पनप सकी।

(5) **व्यक्ति का कार्य एवं पद प्रदान करना**–संस्था मनुष्यों के कार्य और पद को भी नि"चत करती है। संस्था के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को उसे करना होता है। "िाक्षा संस्थाओं में विभिन्न पद अनेक व्यक्तियों को मिलते हैं, जैसे प्रधानाचार्य , प्रवक्ता, चपरासी आदि।

(6) **सामाजिक अनुकूलन में सहायक**–संस्थाऐं सामाजिक अनुकूलन में भी महत्त्वपूर्ण रूप में सहायक सिद्ध होती हैं। अनेक प्रकार की जटिल परिस्थितियों में अपनी कार्य प्रणालियों, नियमों व व्यवस्थाओं के द्वारा ये सामाजिक अनुकूलन में हमारी सहायता करती हैं।

9.4 बोध प्र"न–01

. संस्था की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।
2. संस्थाओं के प्रकार लिखिये।
3. संस्थाओं का महत्व स्पष्ट कीजिये।

9.5 भारतीय ग्रामीण सामाजिक संस्थायें

भारतीय ग्रामों में हमें विभिन्न सामाजिक संस्थाओं का वर्चस्व देखने को मिलता है। ये संस्थायें भारतीय ग्रामीण जीवन की प्राण वायु हैं। परिवार, विवाह, जाति, धर्म, नातेदारी, व जजमानी व्यवस्था आदि वे सामाजिक संस्थायें हैं जो कम या अधिक प्रभाव के साथ ग्रामीणों की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक व राजनैतिक आव"यकताओं की पूर्ति करती हैं। ये संस्थायें ही ग्रामीण सांस्कृतिक जीवन की रक्षक हैं। ग्रामीण लोगों के व्यवहार में संस्थायें ही अनुरूपता पैदा करती हैं, सामाजिक नियंत्रण बनाये रखती हैं और लोगों का मार्गद"ार्न करती हैं। सामाजिक संस्थायें ही ग्रामीण समाज में व्यक्ति की प्रस्थिति, अधिकार और दायित्वों का निर्धारण करती हैं। इस प्रकार ग्रामीण संस्थायें ग्रामीण सामाजिक जीवन को एक महत्वपूर्ण आधार प्रदान करती हैं। यहां पर ग्रामीण सामाजिक संस्था के रूप में परिवार, नातेदारी व विवाह के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण बातें प्रस्तुत की जायेंगी।

9.6 ग्रामीण परिवार

ग्रामीण परिवार एक ऐसा गृहस्थ समूह है जिसमें माता–पिता, दादा–दादी, चाचा–चाची, भाई–भाभी, चचेरे भाई–बहन तथा अविवाहित भाई–बहन सम्मिलित होते हैं, इस प्रकार ग्रामीण परिवार के सदस्यों का एक सामान्य निवास स्थान होता है, वे एक रसोई का पका भोजन करते हैं तथा सामान्य सम्पत्ति रखते हैं। **के0 एम0 कपाड़िया** ने पीढ़ियों की गहराई को ग्रामीण परिवार (संयुक्त परिवार) का लक्षण माना है। ग्रामीण परिवार की पूरी सत्ता मुखिया में केन्द्रित होती है जिसे परिवार का कर्ता कहा जाता है। कर्ता ही पूरे परिवार के बारे में सभी प्रकार के निर्णय लेता है। इस अर्थ में भारतीय ग्रामीण परिवार को निरंकु"ा सामाजिक संरचना वाला परिवार भी कहा गया है।

9.6.1 ग्रामीण परिवार की परिभाषायें

इरावती कर्वे–'एक संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो एक ही छत के नीचे रहते हैं, जो एक रसोई में पका भोजन करते हैं, जो सामान्य सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं, जो सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा जो परस्पर एक–दूसरे से वि"ोष्ट नातेदारी से सम्बन्धित हैं।'

ए0 आर0 देसाई–'हम उस परिवार को संयुक्त परिवार कहते हैं जिसमें एकाकी परिवार की अपेक्षा अधिक पीढ़ियों (तीन या उससे अधिक) के सदस्य सम्मिलित होते हैं और जो एक–दूसरे से सम्पत्ति, आय और परस्पर अधिकारों तथा कर्तव्यों द्वारा बंधे होते हैं'।

एम0 एन0 श्रीनिवास–'वह गृहस्थ समूह जो प्रारम्भिक परिवार से बड़े होते हैं और जिनमें सामान्यतः दो या दो से अधिक एकाकी परिवार पाए जाते हैं, संयुक्त या विस्तृत परिवार कहलाते हैं।'

इन परिभाषाओं के आधार पर ग्रामीण परिवार या संयुक्त परिवार की एक गृहस्थ समूह के रूप में मौलिक वि"ोषताओं का पता चलता है। ग्रामीण परिवार में रक्त सम्बन्ध व विवाह के आधार पर सदस्यता मिलती है, सदस्यों में सामान्य सम्पत्ति व पारस्परिक अधिकारों एवं कर्तव्यों की भावना पाई जाती है। सदस्य मुख्यतः एक साथ रहते हैं, सम्मिलित रूप से पूजा में भाग लेते हैं तथा एक ही रसोई का भोजन करते हैं परन्तु यह आव"यक नहीं है कि ग्रामीण परिवार के सभी सदस्य एक ही छत के नीचे रहें। अगर कोई सदस्य नौकरी के कारण बाहर रहता है किन्तु पैतृक घर को अपना घर समझता है, सामूहिक पूजा आदि में उपस्थित रहता है, बड़ों के प्रति अपने अधिकारों और कर्तव्यों को समझता है तो वह भी ग्रामीण परिवार या संयुक्त परिवार का ही सदस्य है।

9.6.2 ग्रामीण परिवार की वि"ोषताऐं

ग्रामीण परिवार के अस्तित्व को बनाये रखने में परम्परा, रीति–रिवाज, लोक वि"वास, धर्म और लोक परम्पराओं का महत्वपूर्ण स्थान है। यही कारण है कि ग्रामीण परिवार परम्परा की लीक से आज भी बहुत हटे नहीं हैं। वे अभी भी रूढ़िवादी, परम्परावादी और अन्धवि"वासी हैं। ग्रामीण परिवार की मुख्य वि"ोषताऐं निम्नलिखित हैं–

(1) **कृषि व्यवसाय**–अधिकां"ा ग्रामीण परिवार कृषि व्यवसाय पर निर्भर हैं। उनकी जीविका का मुख्य साधन कृषि है। इसका मुख्य कारण यह भी है कि गांव की सीमाओं में शहरों की तरह अनेक प्रकार के उद्योग और विभिन्न प्रकार के व्यवसाय नहीं है। इसलिए सम्पूर्ण गांव किसी न किसी रूप में कृषि व्यवसाय से जुड़ा होता है।

(2) **अनु"ाासनबद्ध परिवार**–अनु"ाासन ग्रामीण परिवार की एक वि"ोषता है। परिवार के बड़े–बूढ़ों के आदे"ाों के अनुसार ही परिवार के सभी व्यक्ति कार्य करते हैं। परिवार की परम्परा, रीति–रिवाज, धर्म व आद"ार्ा आदि का मान रखा जाता है। नियम समान होने के कारण सभी उनका पालन करते हैं।

(3) **परिवार का महत्व व प्रभाव"ालता**–परिवार के सदस्यों के लिए परिवार का महत्व सर्वश्रेष्ठ है। परिवार को उपेक्षित करके वह कुछ नहीं करना चाहता है भले ही उसकी व्यक्तिगत इच्छा कुछ भी हो। पारिवारिक प्रतिष्ठा में ही वैयक्तिक निष्ठा समाहित होती है। परिवार का प्रत्येक सदस्य इस बात का प्रयत्न करता है कि उसके परिवार का सम्मान यदि समाज में किया जाता है तो उसका आदर व सम्मान स्वतः समाज में बढ़ जाता है।

(4) **परिवार के मुखिया का नियंत्रण**–परिवार में जो बड़ा होता है उसी के आदे"ाों के अनुसार सभी व्यक्ति कार्य करते हैं। यह दादा, पिता अथवा ज्येष्ठ पुत्र हो सकता है अर्थात् जो परिवार में बड़ा है और जीवित है उसका ही नियंत्रण परिवार पर रहता है। वह परिवार के समस्त कार्यों को देखता है। वह परिवार के सदस्यों में उनकी योग्यता और क्षमतानुसार कार्यों को बांटता है। प्रत्येक व्यक्ति की आव"यकता को पूर्ण करने का प्रयास करता है। पारिवारिक लड़ाई झगड़ों का निपटारा करता है। परिवार के मुखिया का परिवार के छोटे बड़े सदस्यों पर पूर्ण नियंत्रण होता है।

(5) **पारस्परिक सहयोग का महत्व**–परिवार के सभी कार्य पारस्परिक सहयोग के आधार पर किये जाते हैं। परिवार के सभी व्यक्तियों में उनकी आयु, क्षमता और योग्यतानुसार कार्यों को बांट दिया जाता है। वे सभी निष्ठापूर्वक अपना कार्य करते हैं। पारिवारिक कठिनाईयों को पारस्परिक सहयोग के द्वारा समाधान करने का प्रयास किया जाता है। कृषि जैसे बहुआयामी कार्यों की पूर्ति परस्पर सहयोग के द्वारा ही सम्पन्न हो सकती है।

(6) **परिवार उत्पादन का केन्द्र है**—ग्रामीण समाज में कृषि मुख्य व्यवसाय है किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वहां कोई और कार्य होते ही नहीं हैं। एक ही परिवार के सदस्य खाली समय में अनेक प्रकार के कार्य करते हैं, जैसे कोई टोकरियां बनाता है, कोई सूत कातता है, कोई रस्सी बांटता है, कोई लकड़ी या अन्य कुटीर उद्योग धंधों का कार्य करता है, इसलिये परिवार उत्पादन का केन्द्र है।

(7) **धर्म और परम्परागत वि"वासों का महत्व**—प्रत्येक ग्रामीण परिवार का अपना अलग—अलग ढंग का धर्म और परम्परायें हैं। ये उसे अपने पूर्वजों से प्राप्त हुई हैं। इनके धार्मिक वि"वास और परम्परायें अपने हैं, जिन्हें किसी भी कीमत पर परिवार के सदस्य त्यागते नहीं हैं। प्रत्येक पवित्र तीज, त्यौहार, पर्व, मेले व ग्रामीण सामूहिक पूजा के समय में भी वे अपने परिवार के वि"वास व नियमों के अनुसार ही कार्य करते हैं। उनका यह अडिग वि"वास है कि यदि इनके नियमों को वे तोड़ते हैं तो उनका अनिष्ट हो सकता है।

9.6.3 ग्रामीण परिवार के कार्य

परिवार मानव समाज की एक मौलिक व आधारभूत इकाई है। परिवार मानव समाज के लिए ऐसे कार्यों को सम्पादित करता रहा है जो सम्भवतया सभ्य समाज के अन्य विकसित संगठनों द्वारा सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। किसी भी समाज की निरन्तरता के लिए परिवार का होना आव"यक है। परिवार के कार्यों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है—

मौलिक एवं प्राथमिक कार्य :

ये कार्य सार्वभौमिक हैं। ये कार्य विभिन्न समाजों और विभिन्न कालों में परिवार द्वारा ही सम्पादित होते हैं। इनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है—

(1) **प्राणि"ाास्त्रीय कार्य**— प्राणि"ाास्त्रीय कार्यों को पुनः निम्न प्रकार विभाजित किया गया है—

—**यौन इच्छाओं की पूर्ति**—परिवार का एक महत्वपूर्ण कार्य यौन इच्छाओं की पूर्ति करना है। विवाह की संस्था द्वारा समाज पति—पत्नी को यौन इच्छाओं की तृप्ति का अधिकार देता है और इस प्रकार यौन सम्बन्धों का नियमन होता रहता है।

—**संतानोत्पादन**—परिवार के द्वारा मानव समाज के अस्तित्व व निरन्तरता को बनाए रखा जा सकता है। परिवार में उत्पन्न सन्तान को समाज मान्यता देता है और इस प्रकार परिवार के द्वारा एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सहारा देती चली जाती है।

—**प्रजातीय तत्वों की निरन्तरता**—परिवार द्वारा मानव अपने वं"ाजों के रूप में अनन्तकाल तक जीवित रहेगा और इस प्रकार प्रजातीय तत्वों की निरन्तरता बनी रहेगी।

(2) **भाारीरिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्य**—"ाारीरिक सुरक्षा सम्बन्धी कार्यों को भी पुनः निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है—

–**सदस्यों की भाारीरिक सुरक्षा**–परिवार के द्वारा बूढ़े, असहाय, रोगी, स्त्री, बच्चों आदि की शारीरिक देख–रेख व सुरक्षा होती रहती है।

–**भोजन का पबन्ध**–परिवार का एक प्रमुख कार्य भोजन की व्यवस्था करना भी है। बिना भोजन के मानव जीवित नहीं रह सकता। स्त्री पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर काम कर रही है ताकि परिवार के सदस्य अच्छे से अच्छा भोजन पा सकें।

–**बच्चों का पालन पोशण**–जन्म के समय से ही बच्चे की देख–रेख, पालन पोषण आदि की व्यवस्था माता–पिता और बड़े–बूढ़ों द्वारा की जाती है। इसलिए परिवार बच्चों के पालन पोषण का प्राथमिक केन्द्र है।

–**निवास का प्रबन्ध**–परिवार द्वारा नि"चत निवास स्थान में सभी सदस्य प्राकृतिक विपदाओं से बचे रहते हैं और अपने सामान सहित सुरक्षित रहते हैं।

–**वस्त्रों का प्रबन्ध**–समाज के स्तर के अनुरूप कपड़ों व वस्त्रों की व्यवस्था करना परिवार का कार्य है। बच्चों को स्कूल की ड्रेस पहनाना भी माता–पिता का उत्तरदायित्व है। परिवार सदस्यों के लिए समाज वि"ोष के अनुसार कपड़ों का प्रबन्ध करता है।

(3) **मनोवैज्ञानिक कार्य**–प्राणि"ाास्त्रीय कार्य के अतिरिक्त परिवार सदस्यों को मानसिक सुरक्षा भी प्रदान करने का कार्य करता है। परिवार में सदस्यों का प्रेम, सहानुभूति, त्याग, धैर्य आदि भावनाऐं देखने को मिलती हैं। परिणामस्वरूप प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको मानसिक रूप से नि"चन्त पाता है। चूंकि परिवार में सदस्यों के सम्बन्ध पूर्ण व घुले–मिले होते हैं इसलिए सदस्य सुख–दुःख आदि में एक दूसरे को अत्यधिक सहयोग देते हैं।

(4) **समाजीकरण का कार्य**–परिवार का प्राथमिक व महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वह बच्चे को सामाजिक प्राणी के रूप में खड़ा कर दे। परिवार एक प्राथमिक एवं मौलिक इकाई है। इसलिए इसमें सदस्यों का आपसी सम्बन्ध आन्तरिक, स्थायी व पूर्ण होता है। ऐसे वातावरण में बच्चा जितना सीख सकता है उतना संसार की अन्य संस्थाओं व समितियों में नहीं सीखा जा सकता है। यही कारण है कि परिवार समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

द्वितीयक कार्य :

ये कार्य प्राथमिक या मौलिक नहीं हैं। समाज वि"ोष के अनुसार इन कार्यों में परिवर्तन होता रहता है। इनका विस्तृत वर्णन नीचे किया जा रहा है।

(1) श**क्षणिक कार्य**–जहां तक द्वितीयक कार्यों का सम्बन्ध है, इनमें शैक्षणिक कार्य परिवार का महत्वपूर्ण कार्य है। स्कूल, कॉलेज, इन्स्टीट्यूट आदि तो f"ाक्षा के औपचारिक साधन हैं परन्तु सबसे पहले बच्चों को अनौपचारिक तौर से f"ाक्षा परिवार की प्राथमिक पाठ"ाला में ही मिलती है। परिवार की पाठ"ाला बच्चे के चरित्र और व्यक्तित्व के निर्माण में अत्यधिक प्रभाव"ाली है।

(2) **आर्थिक कार्य**–आर्थिक कार्यों को निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है–

–**आर्थिक कियाओं का केन्द्र**–कृषि युग तक परिवार आर्थिक कियाओं का केन्द्र रहा है। अधिकतर उत्पादन परिवार के आधार पर होता है और सभी सदस्य पारिवारिक व्यवसाय को मिलकर करते हैं।

–**श्रम विभाजन**–श्रम विभाजन परिवार से प्रारम्भ होता है। परिवार में महिलाओं, बच्चों, पुरूषों व बूढ़ों में श्रम विभाजन पाया जाता है। पुरूष नौकरी, व्यवसाय, कृषि आदि करते हैं तो महिलाऐं घर गृहस्थी के कार्य करती हैं। घर में बड़े बूढ़े सामाजिक कार्यों में पहल करते हैं और बच्चे सबका मनोरंजन करते हैं। इस प्रकार परिवार श्रम–विभाजन की अच्छी खासी व्यवस्था है।

–**आय तथा सम्पत्ति का प्रबन्ध**–परिवार अपनी मासिक आय को उचित ढंग से व्यय करने का प्रबन्ध करता है। इसके अतिरिक्त चल व अचल सम्पत्ति की देखरेख भी परिवार के द्वारा ही होती है।

–**उत्तराधिकार का निर्गमन**–परिवार सम्पत्ति के उत्तराधिकार सम्बन्धी कार्यों की भी देखभाल करता है। परिवार द्वारा यह नि"चत रहता है कि सम्पत्ति का उत्तराधिकारी कौन– कौन होगा। पितृसत्तात्मक परिवार और मातृसत्तात्मक परिवार में उत्तराधिकार की व्यवस्था अलग–अलग होती है।

(3) **सामाजिक कार्य**–सामाजिक कार्यों को निम्न प्रकार विभाजित किया जाता है–

–**स्थिति प्रदान करना**–परिवार व्यक्ति को पारिवारिक स्थिति के अनुरूप पद या सम्मान या स्थिति प्रदान करता है। सभी परिवारों में स्थिति और कार्य पारिवारिक परिस्थितियों के अनुरूप ही होते हैं।

–**मानवीय अनुभवों का पीढ़ी–दर–पीढ़ी पहुंचना**–आज तक के मानवीय अनुभवों को परिवार बच्चों को कुछ ही वर्षों में सिखा देता है। इस प्रकार ये अनुभव पीढ़ी–दर–पीढ़ी अविराम गति से पहुंचते रहते हैं।

–**सामाजिक नियंत्रण**–परिवार भिन्न–भिन्न क्षेत्रों में सदस्यों पर नियंत्रण रखता है और अनु"ाासन की "िाक्षा देता है, परिणामस्वरूप समाज में नियमन बना रहता है।

–**मनोरंजनात्मक कार्य**–परिवार के सदस्य आपस में मिलकर सामूहिक रूप से खेल, टेलीविजन, वीडियो, इंटरनेट, भ्रमण, पर्यटन आदि के माध्यम से मनोरंजन करते रहते हैं। इस प्रकार परिवार मनोरंजन के साधन प्रस्तुत करता है।

–**मानवता का विकास करना**–परिवार में जो कियाऐं होती हैं, वे सब सदस्यों के सामूहिक हित के लिए होती हैं। इस प्रकार व्यक्ति स्वार्थी होने से बचा रहता है और मानवता अथवा मानवीय गुणों को विकसित करता है।

–**व्यवहार का एक नि"चित मापदंड**–परिवार पारिवारिक मान्यताओं के अनुरूप खान–पान, विवाह व व्यवहार सम्बन्धी सम्बन्धों को बनाऐ रखता है और इस प्रकार व्यवहार का एक नि"चित मापदंड कायम रहता है। व्यवहार के इस नि"चित मापदंड के अनुसार ही बच्चा समाज में अनुकूलन करना सीखता है।

(4) **सांस्कृतिक कार्य**–परिवार संस्कृति के मूल तत्वों को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुंचाता रहता है। बच्चे अपने बड़े–बूढ़ों व माता–पिता से सांस्कृतिक

भावनाऐं, परम्पराऐं, मूल्य, आद"र्ा व रीति–रिवाज आदि को पारिवारिक वातावरण में धीरे–धीरे ग्रहण कर लेते हैं।

(5) **धार्मिक कार्य**–परिवार अपने बच्चों को अपने धर्मों के अनुसार पूजा–पाठ, आराधना, इबादत व भक्ति आदि धार्मिक कृत्यों के लिए तैयार करता है जिससे धर्म वि"ोष का महत्व बना रहता है। कुछ भारतीय जनजातियों में धर्म और जादू के द्वारा जीवन की अनेक समस्याओं को सुलझाने का ढंग परिवार में ही सिखा दिया जाता है।

(6) **राजनीतिक कार्य**–बच्चों को राज्य के अनुसार आद"र्ा नागरिक बनाने का सर्वप्रथम कार्य परिवार में ही होता है। **मेजिनी** ने राजनीतिक क्षेत्रों में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका को स्पष्ट करते हुए लिखा है, 'बच्चा माता के चुम्बन और पिता की वीर बांहें (संरक्षण) के मध्य नागरिकता का सर्वश्रेष्ठ पाठ सीखता है।'

(7) **अन्य कार्य**–इसके अतिरिक्त भी समाज वि"ोष के अनुसार परिवार के अन्य कार्य भी हो सकते हैं–मानवता के धर्म को विकसित करना, सभ्यता के मूल तत्वों को बनाए रखना, राष्ट्रीय एकता में सहयोग आदि इसके अन्तर्गत आ जाते हैं।

9.7 ग्रामीण परिवार में परिवर्तन

भारत के सुदूर ग्रामीण अंचलों में सूचना प्रौद्यागिकीय सुविधाओं के कारण ग्रामीण गतिविधियों और विकास प्रक्रिया को नया आयाम और गति मिली है। इस परिवर्तन को परिवार की संरचना, स्वरूप और कार्य प्रणाली में स्पष्टतया देखा जा सकता है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप जहां परिवार में आर्थिक, सामाजिक–सांस्कृतिक और राजनैतिक परिवर्तन हो रहे हैं, वहीं नवीन वैयक्तिक मूल्यों की स्थापनायें भी हो रही हैं। इस प्रकार के परिवर्तन संसार के सभी समाजों के परिवार के ढांचे में सरलता से देखे जा सकते हैं। ग्रामीण समाज में सामान्यतः संयुक्त परिवार ही पाये जाते हैं, उनमें भी अब तीव्रता से परिवर्तन हो रहे हैं। इनके स्थान पर अब केन्द्रीय परिवारों की स्थापना हो रही है।

ग्रामीण परिवार में परिवर्तन के कारण

ग्रामीण परिवार के प्रतिमान और उसकी कार्य पद्धति में जो परिवर्तन हो रहे हैं उनके लिए निम्नलिखित कारकों का महत्वपूर्ण योगदान है–

(1) **औद्योगीकरण**–ग्रामीण समाज के परिवारों का कार्य क्षेत्र अत्यन्त सीमित और परम्परात्मक रहा है। कृषि और कृषि से जुड़े हुए उद्योग–धन्धे ही मुख्यतः ग्रामीण परिवार की जीविका के साधन रहे हैं। नये उद्योगों के विकास ने व्यक्तियों के सम्मुख जीविका के असंख्य विकल्प प्रस्तुत किये हैं। इसलिए वह परिवार के परम्परात्मक बन्धनों और कार्यों को त्यागकर नगरों में नौकरी करने आता है और अन्ततः यहीं बस जाता है। सन 1971–2011 के 40 वर्षों में जहां कृषकों व कृषि श्रमिकों में लगभग 10 प्रति"ात की कमी आई है, वहीं द्वितीयक व तृतीयक व्यवसायों में लगभग 12 प्रति"ात की वृद्धि दर्ज की गई है। यह औद्योगीकरण में वृद्धि का परिणाम है।

(2) **कुटीर उद्योग धन्धों का ह्रास**–ग्रामीण परिवार की आय का मुख्य साधन कृषि है। पर खाली समय में वे कुटीर उद्योग धन्धों के माध्यम से कुछ अतिरिक्त आय भी कर लेते हैं। इसके अतिरिक्त असंख्य ऐसे परिवार हैं जो पीढ़ियों से कुटीर उद्योग धन्धों में ही लगे हैं। यही उनकी जीविका का मुख्य साधन है। व्यापक पैमाने पर उद्योगों के स्थापित होने व उत्पादन प्रक्रिया का म"ाीनीकरण होने से ग्रामीण कुटीर उद्योग नष्ट हो गये हैं। परिणामस्वरूप व्यक्ति फैक्ट्री, मिल, सड़क, रेल एवं कम्प्यूटरीकृत परियोजनाओं में काम करने के लिए महानगर में आने लगा। इससे परिवार में जो परम्परात्मक कार्य की प्रवृति थी, वह समाप्त होने लगी।

(3) **नगरीकरण का प्रभाव**–नगरीय क्षेत्रों की सीमायें बढ़ते–बढ़ते गांवों को अपने आंचल में समेट रही हैं। शहरों की सीमाएं बढ़ने से पहले जो गांव थे, वे अब कस्बे और नगर हो गये हैं। इनका प्रभाव सुदूर ग्रामीण अंचलों पर भी पड़ रहा है। अपनी आजीविका के लिए करोड़ों ग्रामीण नगरों में रहते हैं लेकिन उनका सीधा सम्बन्ध ग्रामीण परिवारों से है। इनकी आदतों, रूचियों, व्यवहार के ढंगों, रहन–सहन और सोच पर नगर का प्रभाव है। इसके प्रभाव को ग्रामीण परिवार पर भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। नगर की इन प्रवृत्तियों ने ग्रामीण परिवार की परम्परात्मक सोच और मानसिकता को बहुत कुछ परिवर्तित कर दिया है।

(4) **यातायतात के साधनों का प्रभाव**–यातायात के साधनों में प्रगति होने से ग्रामीण व्यक्ति नगरों में आकर ि"ाक्षा प्राप्त करने लगे, नौकरी करने लगे या किसी न किसी प्रकार का व्यवसाय करने लगे। नागरिक परिस्थितियाँ यह मांग करती हैं कि यातायात व संचार के साधनों का विकास किया जाये। इसलिए नगर के साथ–साथ डाकघर, टेलीफोन, बस अड्डा, साइबर कैफे, रेलवे स्टे"ान व कोरियर सर्विस आदि का भी विकास होता है और शहर के अन्दर बस, टैक्सी, ऑटो रिक"ाा तथा टैम्पो इत्यादि उपलब होते हैं। इस तरह ग्रामीण परिवार की कार्य पद्धति में काफी परिवर्तन आया है।

(5) **पा"चात्य सभ्यता, संस्कृति और ि"ाक्षा का प्रभाव**– औद्योगीकरण, नगरीकरण और ि"ाक्षा के बढ़ते हुये प्रभाव से ग्रामीण परिवार के व्यक्ति जो महानगरों में कार्य करते हैं गांव से भी जुड़े हैं। इनके नगरीय व्यक्तित्व का प्रभाव ग्रामीण परिवार पर सरलता से देखा जा सकता है। रेडीमेड कपड़े व आधुनिक खान–पान, यातायात के उन्नत साधनों का प्रयोग तथा मनोरंजन की सामग्री इन सभी का ग्रामवासियों पर असर पड़ता है। परम्पराओं और रूढ़ियों के बन्धन अब ढीले पड़ रहे हैं। ग्रामीण परिवारों में आज नगर को देखा जा सकता है। ये परिवर्तन के द्योतक हैं।

(6) **स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन**–ि"ाक्षा और रोजगार के समान अवसर उपलब्ध होने के कारण स्त्रियां अब अपने अधिकारों के प्रति पहले से अधिक जागरूक हो गई हैं। गृहस्थी को अपने ढंग से चलाने की ललक में अब स्त्रियां संयुक्त परिवार की अपेक्षा अलग रहना पसन्द करती हैं। बड़े पैमाने पर वह काम–काज तथा रोजगार के अवसरों के लिए घर से बाहर निकल रही हैं। वे अपनी

आर्थिक–सामाजिक स्थिति को शक्ति"ाली बनाने के लिए प्रयत्न"ाील हैं। इस प्रवृत्ति ने स्त्रियों की परम्परात्मक पारिवारिक स्थिति को परिवर्तित करने में सहायता दी है।

(7) **निर्धनता और बेकारी**–ग्रामीण परिवार के प्रतिमान में जो टूटन आयी है और जो उनमें परिवर्तन हो रहे हैं उसकी पृष्ठभूमि में वहां की निर्धनता और बेकारी भी है जिससे परे"ाान और दुखी होकर व्यक्ति गांव छोड़ रहा है। गांव की मान्यताओं को त्याग रहा है। ग्रामीण परम्परायें उसके परिवार का पेट नहीं भरतीं और न उसके शरीर को ढकती हैं। अन्ततः उसके पास एकमात्र विकल्प यह ही रह जाता है कि गांव छोड़ो और नगर चलो। आजीविका के साधन के साथ साथ जीवन की अधिकतम सुविधायें नगरों में हैं । गांव में व्यक्ति अभावों का आविष्कारक है। यही कारण है कि ग्रामीण परिवार टूट रहे हैं।

(8) **राजनैतिक चेतना का प्रसार**–राजनैतिक जागरूकता ग्रामीण अंचलों में तीव्रता से विकसित हो रही है। चुनाव की पद्धति ने व्यक्ति को अधिकार और कर्तव्यों को समझने की समझ दी है। आर्थिक–सामाजिक प्रगति और लोकतंत्रीय पद्धति ने व्यक्ति को प्रगति"ाील बनाया है। ग्रामीण सरकारी योजनाओं ने ग्रामीण समाज की आर्थिक–सामाजिक व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन उत्पन्न किए हैं।

.8 बोध प्र"न–02

1– ग्रामीण परिवार से आप क्या समझते हैं ?
2– ग्रामीण परिवार के प्रकार्यों को विस्तार से समझाइये।
3– ग्रामीण परिवारों में आ रहे परिवर्तनों को स्पष्ट कीजिये।

9.9 नातेदारी

हम निःसंकोच इस बात को स्वीकार कर सकते हैं कि मानव समाज में जितना महत्वपूर्ण स्थान परिवार व विवाह का है, उतना ही महत्वपूर्ण स्थान नातेदारी का है। परिवार, विवाह व नातेदारी मिलकर सम्पूर्ण मानव जीवन का नियमन करते हैं, उसे निरन्तरता, सुरक्षा व सामाजिक पहचान प्रदान करते हैं। विवाह से परिवार और विवाह सम्बन्धी नातेदारी का जन्म होता है। परिवार से नातेदारी का विस्तार होता है। ग्रामीण समाज में नातेदारी व्यवस्था का महत्व तुलनात्मक रूप से अधिक देखा जा सकता है क्योंकि नातेदारी सामाजिक सम्बन्धों पर आधारित होती है और सामाजिक सम्बन्धों का सुदृढ़ रूप ग्रामीण समाज में ही अधिक स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है।

चूंकि नातेदारी मानव"ाास्त्रीय अध्ययन का विषय रहा है, इसीलिये इस विषय पर अधिकारपूर्वक लिखने वाले अधिकतर विद्वान मानव"ाास्त्री ही रहे हैं, जैसे कि ए0 आर0 रेडक्लिफ ब्राउन, बोनिसला मैलिनॉस्की, डी0 एन0 मजूमदार, लुईस हेनरी मॉर्गन, ईवान्स प्रिचार्ड, मुरडॉक व क्लाउड लेवी स्ट्रॉस आदि। किन्तु समाज"ाास्त्रियों का योगदान भी कम नहीं रहा है। जैसे कि के0 एम0 कापड़िया (हिन्दु

किर्न"ाप–1947), इरावती कर्वे (किर्न"ाप आर्गेनाइजे"ान इन इण्डिया–1953) व शोभिता जैन (परिवार, विवाह और नातेदारी–1996) आदि। ऐसे ही अनेक महत्वपूर्ण समाज"ाास्त्रीय अध्ययनों ने नातेदारी को ग्रामीण समाज"ाास्त्र की विषय सामग्री बनाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है।

9.9.1 नातेदारी का अर्थ व परिभाशायें

विवाह और परिवार के आधार पर मनुष्य के सामाजिक सम्बन्धों की जो व्यवस्था हमें दिखाई देती है, उसे ही नातेदारी कहते हैं । ये सम्बन्ध समाज द्वारा मान्यता प्राप्त होते हैं।

रेडक्लिक ब्राउन के अनुसार, 'नातेदारी सामाजिक उद्दे"यों के लिये स्वीकृत वं"ा सम्बन्ध है, जो कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है।' एस0 सी0 दुबे के अनुसार , 'मानव समाज में जन्म या विवाह के आधार पर परिवारों के सदस्य सम्बन्धों व व्यवहार के दृष्टिकोणों से एक दूसरे के निकट आ जाते हैं, जिससे कुछ सामाजिक सम्बन्धों की रचना होती है। सामाजिक सम्बन्धों की इसी वि"ाष्ट व सुव्यवस्थित सम्बन्ध श्रंखला को नियोजित करने वाली प्रथा को नातेदारी कहा जाता है।'

राम आहूजा के अनुसार, 'प्रस्थितियों और भूमिकाओं और सम्बन्धों की एक ऐसी संचरित व्यवस्था जिसमें नातेदार (प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक व दूरस्थ) जटिल श्रंखलाबद्ध बन्धनों द्वारा परस्पर बंधे रहते हैं।'

उपरोक्त तीनों परिभाषाओं के वि"लेषण के आधार पर सरल शब्दों में यह बात कहने योग्य है कि नातेदारी अधिकारों व दायित्वों की वह व्यवस्था है जो न केवल परिवार के सदस्यों के सम्बन्धों को परिभाषित करती है, बल्कि कई पारिवारिक इकाईयों के सम्बन्धों को भी प्रकट करती है। यह मानव समाज को व्यक्ति और परिवार के माध्यम से जोड़ने की एक सामाजिक व्यवस्था है।

9.9.2 नातेदारी के भद

सामाजिक सम्बन्धों में से सार्वभौमिक और आधारभूत सम्बन्ध वे हैं जो प्रजनन पर आधारित होते हैं। प्रजनन की कामना दो प्रकार के सम्बन्धों को जन्म देती है।

–माता–पिता एवं सन्तानों के बीच तथा भाई–बहिनों के बीच बनने वाले सम्बन्ध–इन्हें हम समरक्ता के सम्बन्ध कहते हैं।

–पति–पत्नी के मध्य बनने वाले एवं इन दोनों के पक्षों के बीच बनने वाले सम्बन्ध, जिन्हें हम विवाह सम्बन्ध कहते हैं। दोनों प्रकार के सम्बन्धों का हम यहां संक्षेप में उल्लेख करेंगे।

–समरक्त सम्बन्ध–प्रजनन के आधार पर उत्पन्न होने वाले सामाजिक सम्बन्धों में से एक प्रकार वह है जो रक्त या समरक्तता के आधार पर बनता है, जैसे माता–पिता एवं सन्तानों के बीच का सम्बन्ध। सन्तानें माता–पिता से वाहकाणु ग्रहण

करती हैं और ऐसी मान्यता है कि उनमें समान रक्त पाया जाता है। इसी प्रकार से भाई–बहिनों में भी रक्त सम्बन्ध होते हैं। एक व्यक्ति के माता–पिता, भाई–बहिन, दादा–दादी, मामा, नाना–नानी, चाचा व बुआ आदि रक्त सम्बन्धी ही हैं, लेकिन रक्त सम्बन्धियों के बीच सदा ही प्राणी"ाास्त्रीय सम्बन्ध होना आव"यक नहीं है। उनके बीच काल्पनिक सम्बन्ध भी हो सकते हैं। इन सम्बन्धों को यदि समाज स्वीकृति दे देता है तो वे वास्तविक सम्बन्धों की तरह ही माने जाते हैं। अतः रक्त सम्बन्धों में जैविकीय तथ्य इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि सामाजिक मान्यता का तथ्य। विभिन्न समाजों में हमें इसके अनेक उदाहरण देखने को मिलेंगे। मले"िाया के ट्रोबियाण्डा द्वीप निवासियों में वास्तविक पिता कभी–कभी अज्ञात होता है, लेकिन परम्परानुसार सन्तान का पिता वही माना जाता है जो उस लड़की से विवाह करता है।

–**विवाह सम्बन्ध**– प्रजनन पर आधारित नातेदारी सम्बन्धों में विवाह सम्बन्ध भी है जो विषम लिंगियों के बीच समाज की स्वीकृति के परिणामस्वरूप स्थापित होता है। केवल पति–पत्नी ही विवाह सम्बन्धी नहीं होते, वरन उन दोनों के परिवारों के अनेक सम्बन्धी भी परस्पर विवाह सम्बन्धी होते हैं जैसे सास, ससुर, ननद, भौजाई, जीजा, साली, साला, बहनोई, साढू, फूफा, भाभी, बहू आदि। इन सम्बन्धों को दो व्यक्तियों के संदर्भ में ही प्रकट किया जाता है जैसे– सास–बहू, ससुर–बहू, पति–पत्नी, जीजा–साली, देवर–भाभी, ननद–भौजाई, साला–बहनोई, मामी–भान्जा, भतीजा–फूफा आदि। सम्बन्धियों के बीच सम्बन्ध का आधार रक्त न होकर विवाह है।

9.9.3 नातेदारी की श्रेणियां

हमारे जितने भी नातेदार हैं उन सबसे हम समान रूप से सम्पर्क, निकटता एवं घनिष्ठता नहीं रखते हैं। कुछ हमारे अधिक निकट हैं तो कुछ दूर। इस निकटता, घनिष्ठता एवं सम्पर्क के आधार पर हम नातेदारों को विभिन्न श्रेणियों में बांट सकते हैं, जैसे प्राथमिक, द्वितीयक, तृतीयक, चतुर्थ एवं पंचम आदि।

मुरडॉक ने नातेदारी की श्रेणियों का गहन अध्ययन किया है।

प्राथमिक सम्बन्धी वे हैं जिनसे हमारा सीधा सम्बन्ध है या जिनके सम्बन्ध को प्रकट करने के लिए कोई और सम्बन्धी बीच में नहीं है। एक परिवार में आठ प्रकार के प्राथमिक सम्बन्धी हो सकते हैं जिनमें सात रक्त से सम्बन्धित और एक विवाह से सम्बन्धित होता है। पिता–पुत्र, पिता–पुत्री, माता–पुत्र, माता–पुत्री, भाई–भाई, भाई–बहिन, बहिन–बहिन ये सभी रक्त सम्बन्धी है। पति–पत्नी का प्राथमिक सम्बन्ध विवाह पर आधारित है।

द्वितीयक सम्बन्धी वे हैं जो उपर्युक्त प्राथमिक सम्बन्धियों के प्राथमिक सम्बन्धी हैं। उदाहरण के लिए, एक व्यक्ति का दादा उसका द्वितीयक सम्बन्धी है क्योंकि दादा से पोते का सम्बन्ध पिता के द्वारा है और पिता तथा पिता के पिता (दादा) आपस में प्राथमिक सम्बन्धी हैं। ये रक्त सम्बन्धी द्वितीयक रि"तेदार हैं। रक्त सम्बन्धी द्वितीयक

रि"तेदारों के और उदाहरण हैं–चाचा– भतीजा, मामा, मामी, नानी आदि। विवाह द्वारा बने नातेदारों में भी द्वितीयक सम्बन्धियों में हम सास–ससुर,साला–बहनोई, साली, देवर–भाभी, आदि को गिन सकते हैं। मरडॉक ने 33 प्रकार के द्वितीयक सम्बन्धियों का उल्लेख किया है।तृतीयक सम्बन्धी वे हैं तो हमारे द्वितीयक सम्बन्धियों के प्राथमिक सम्बन्धी हैं या हमारे प्राथमिक सम्बन्धियों के द्वितीयक सम्बन्धी हैं।

पितामह हमारे तृतीयक सम्बन्धी हैं और पिता के पिता द्वैतीयक सम्बन्धी हैं, अतः दादा के पिता हमारे तृतीयक सम्बन्धी होंगे। इसी तरह से साले का लड़का हमारा तृतीयक सम्बन्धी होगा क्योंकि साला द्वितीयक सम्बन्धी और उसका पुत्र तृतीयक होगा। मरडॉक ने कुल 151 प्रकार के तृतीयक सम्बन्धियों का उल्लेख किया है। इस प्रकार सम्बन्धों की यह श्रंखला हम चतुर्थ, पंचम, 'ाष्ट्म और आगे भी ले जा सकते हैं।

9.9.4 भारत में नातेदारी व्यवस्था

अब हम यहां भारतीय नातेदारी व्यवस्था पर विचार करेंगे। परिवार, विवाह एवं नातेदारी को लेकर भारत के विभिन्न क्षेत्रों में अनेक अध्ययन किये गये हैं, जैसे ए0 सी0 मेयर तथा मदान ने उत्तरी क्षेत्र का, ई0 के0 गफ तथा मैकामेक ने दक्षिणी क्षेत्र का अध्ययन किया है परन्तु ये अध्ययन एक गांव या प्रदे"ा तक ही सीमित है। हाल ही में लीला दुबे ने 'Sociology of Kinship' नामक पुस्तक की रचना की और उसमें विभिन्न अध्ययनों पर टिप्पणी की है। प्रमुख मानव"ाास्त्री इरावती कर्वे ने भौगोलिक क्षेत्र के आधार पर सम्पूर्ण भारत की बन्धुत्व व्यवस्था को चार और भाषायी आधार पर तीन भागों में विभक्त किया है जो निम्नलिखित तालिका द्वारा स्पष्ट होता है–

भौगोलिक आधार

उत्तरी क्षेत्र	मध्य क्षेत्र	दक्षिणी क्षेत्र	पूर्वी क्षेत्र
(हिमांचल सेविन्ध्यांचल तक, सिन्धु,पंजाब, क"मीर,यू0पी0,एम0पी0 बिहार,बंगाल,असम, नेपाल)	(राजस्थान,एम0पी0 उड़ीसा,गुजरात, महाराष्ट्र आदि)	(कर्नाटक,मालावार तेलंगाना,आन्ध्र प्रदे"ा तमिलनाडु,केरल, प"चमी उड़ीसा व दक्षिण बिहार)	(बर्मा,तिब्बत,असम एवं पूर्वी पहाड़ी क्षेत्र)

भाषायी आधार

भारोपीय परिवार	द्रविड़ परिवार	आग्नेय	ए"ियाटिक परिवार
(पंजाबी,सिन्धी,बिहारी,हिन्दी,	(तेलगू,कन्नड़,तमिल,मलयालम,	(मुण्डी,सओरा,संथाली,	

बंगाली,असमी,राजस्थानी, खासी,गडबा,भूमिया,ज्वांग, गुजराती,मराठी,उड़िया एवं कोंकणी)	तुलू,टोडा,कोडागू,कोलामी गोप्डी)	बोडो आदि)

9.10 ग्रामीण सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्व

नातेदारी के सिद्धान्तों को समझ लेने के बाद एक व्यक्ति समाज के अन्य पहलुओं को समझने में भी सक्षम हो जाता है। सरल और आदिम समाजों में नातेदारी एक वास्तविक संस्था है। फर्थ की मान्यता है कि नातेदारी एक ऐसी छड़ है जिस पर एक व्यक्ति जीवन भर निर्भर रहता है, यह अगणित स्थितियों में उसके व्यवहार को नियंत्रित करती है। नातेदारी का अध्ययन न केवल रोमांचक है, अपितु उपयोगी भी है। सामाजिक संरचना में नातेदारी की भूमिका एवं महत्व को हम विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत निम्नलिखित प्रकार से प्रकट कर सकते हैं–

(1) **विवाह एवं परिवार का निर्धारण**–नातेदारी ही यह तय करती है कि एक व्यक्ति के विवाह का क्षेत्र क्या होगा। किस प्रकार का विवाह निषिद्ध है, किसे मान्यता दी गयी है और किसे अधिमान्यता, दूसरे शब्दों में अन्तर्विवाह, बहिर्विवाह, समलिंग सहोदरज एवं विषमलिंग सहोदरज विवाह आदि का निर्धारण नातेदारी के आधार पर ही होता है। परिवार में रक्त एवं विवाह सम्बन्ध पर आधारित सदस्य पाये जाते हैं। दोनों ही प्रकार के सदस्यों को हम नातेदार कहते हैं।

(2) **वं"ा, उत्तराधिकार एवं पदाधिकार का निर्धारण**–नातेदारी वं"ाावली का निर्धारण करती है। वं"ाावली की लम्बाई प्रतिष्ठा का मापदण्ड होती है। परिवार, वं"ा, गोत्र, भ्रातृदल एवं अर्द्ध"ा नातेदारी के ही विस्तृत स्वरूप हैं। भूतकाल के वं"ा सम्बन्धियों का ज्ञान प्राप्त कर व्यक्ति महसूस करता है कि वह इतिहास विहीन नहीं है वरन उसकी भी जड़ें हैं। एक व्यक्ति की सम्पत्ति एवं पद का हस्तान्तरण किन लोगों में होगा, कौन कौन उसके दावेदार होंगे, यह नातेदारी के आधार पर भी तय होता है।

(3) **आर्थिक हितों की सुरक्षा**– मुरडॉक लिखते हैं–नातेदारी समूह एक व्यक्ति नहीं वरन् द्वितीय रक्षा पंक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। जब एक व्यक्ति संकट अथवा कठिनाई में होता है अथवा जब उसे किसी आर्थिक कार्य को या सांस्कृतिक दायित्वों को पूरा करना होता है तब उसे अपने नातेदारों से सहायता मिलती है। संक्षेप में, जब उसे परिवार के बाहर सहायता की आव"यकता हो तब वह अपने विस्तृत नातेदारी समूह की ओर सहायता के लिए निहार सकता है।

(4) **सामाजिक दायित्वों का निर्वाह**–लोवी कहते हैं कि एक रि"तेदार दूसरे रि"तेदार को बिना फल की आ"ाा किये हुए निः"ाुल्क सेवाएं देता है, जबकि उन्हीं सेवाओं के लिए हमें बाह्य व्यक्ति को उसकी कीमत चुकानी होती है। रि"तेदार एक

नैसर्गिक पराम"ार्दाता होता है, वह कठिन परिस्थितियों में एक सहायक एवं युद्ध तथा ि"ाकार की अवस्था में एक साथी होता है। इसी प्रकार से रि"तेदारों की औरतें मिल–जुलकर कृषि कार्य करती हैं, घरेलू कार्यों में मदद तथा एक दूसरे के बालकों का पालन पोषण करती हैं।

(5) **मानसिक सन्तोश**–नातेदारी के मनोभाव एक व्यक्ति को मानसिक सन्तुष्टि प्रदान करते हैं। हमारी औद्योगिक सभ्यता की मांगें हमें अवैयक्तिक, नौकर"ाही वाली विवेकपूर्ण सामाजिक संरचना की ओर अग्रसर करती हैं जिनमें नातेदारी के मनोभाव तर्कसंगत प्रतीत नहीं होते। फिर भी मनुष्य नातेदारी के बन्धनों से मुक्त नहीं हो पाया है। एक व्यक्ति अपने पूर्वजों के चित्र घर में टांगता है, एलबमों का संग्रह करता है, सम्भवतः इसके पीछे सैकड़ों वर्षों के नातेदारी केन्द्रित अनुभवों की खुमारी है। मानवता का इतिहास इस बात का द्योतक है कि एक लम्बी अवधि तक मानव जाति नातेदारों पर आधारित समूहों में रही है। व्यक्ति का स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन सभी कुछ नातेदारों के हाथ में था। नातेदारी विहीन व्यक्ति अपने को बिना सामाजिक प्रतिष्ठा वाला एवं निकृष्ट रूप में मृत व्यक्ति के समान ही मानता था। मनुष्य की एक प्रवृत्ति यह है कि वह अपरिचित से डरता है और परिचित पर वि"वास करता है। रक्त सम्बन्धी हमारे सबसे अधिक परिचित व्यक्ति हैं क्योंकि वे हमारे ही अंग के हिस्से समझे जाते हैं। नातेदारों के बीच अपने को पाकर एक व्यक्ति अपार मानवीय आनन्द, प्रसन्नता और सन्तोष महसूस करता है।

(6) **मानव"ाास्त्रीय ज्ञान का आधार**–मानव"ाास्त्रीय अध्ययन में नातेदारी का ज्ञान एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। प्रारम्भिक मानव"ाास्त्रियों ने अधिकां"ा अध्ययन नातेदारी से ही प्रारम्भ किये थे। मॉर्गन, मैक्लीनन, हेनरीमेन, लोवी, मैलिनॉस्की, रैडक्लिफ ब्राउन, ईवान्स प्रिचार्ड, रिवर्स, सैलिगमे आदि प्रमुख मानव"ाास्त्रियों के अध्ययन एक या एकाधिक जनजातियों की नातेदारी व्यवस्था, परिवार एवं विवाह आदि से सम्बन्धित थे। वे नातेदारी के अध्ययन के आधार पर सामाजिक संरचना को समझाना चाहते थे। साथ ही वे समाज एवं संस्थाओं के विकास में भी रूचि रखते थे। नातेदारी का अध्ययन इस दि"ाा में बहुत सहायक सिद्ध हुआ। अनेक अध्ययनों से यह स्पष्ट हो चुका है कि प्रारम्भिक समाजों में वं"ाानुक्रम समूह की मूलभूत राजनीतिक, धार्मिक, आर्थिक और क्षेत्रीय इकाइयाँ रही हैं।

विभिन्न समाजों में नातेदारी के अध्ययन के महत्व पर प्रका"ा डालते हुए नेल्स ग्रेवर्न ने कुछ कारणों का उल्लेख किया है जिन्होंने मानव"ाास्त्रियों को ऐसे अध्ययन हेतु प्रेरित किया है। वे कारण इस प्रकार हैं–

(1) नातेदारी व्यवस्थाऐं सर्वव्यापी हैं।

(2) सभी मानव समाजों की संरचना में थोड़े बहुत अन्तर के साथ नातेदारी व्यवस्थाऐं हमे"ाा महत्वपूर्ण होती हैं।

(3) मानव"ाास्त्रियों ने जिन समाजों का परम्परागत रूप से अध्ययन किया है, उनमें अधिकतर नातेदारी व्यवस्था सामाजिक संगठन का महत्वपूर्ण सिद्वान्त रहा है।

(4) नातेदारी व्यवस्थाऐं अपेक्षाकृत रूप से अधिक सरलता से स्पष्ट की जा सकती हैं तथा उनका वि"लेषण भी सरलता से समझा जा सकता है।

(5) मानव"ाास्त्र में विभिन्न समाजों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो गया है कि नातेदारी एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है तथा यह संस्था सभ्य समाज की संस्था से भिन्न है। इसने सामाजिक मानव"ाास्त्रियों का ध्यान नातेदारी के अध्ययन की ओर आकृष्ट किया ।

(6) सामाजिक मानव"ाास्त्र के उद्भव से पूर्व अन्य सामाजिक वैज्ञानिकों ने समाज के विभिन्न पक्षों का अध्ययन किया। इन लोगों ने नातेदारी व्यवस्था के अध्ययन की ओर ध्यान नहीं दिया। सामाजिक मानव"ाास्त्रियों ने इस उपेक्षित विषय के अध्ययन के प्रति अपनी रूचि दिखायी।

9.11 बोध प्र"न–03

1– नातेदारी की अवधारणा स्पष्ट कीजिये।
2– ग्रामीण समाज में नातेदारी की भूमिका स्पष्ट कीजिये।

9.12 ग्रामीण विवाह

वैसे तो सम्पूर्ण भारतीय समाज में विवाह संस्था एक गरिमामय व प्रभावपूर्ण स्थान रखती है चाहे वह नगरीय समाज हो या जनजातीय समाज, किन्तु ग्रामीण समाज में विवाह संस्था को सामाजिक रूप से ही नहीं, धार्मिक, सांस्कृतिक व नैतिक रूप से भी सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। विवाह के लिये संविधान–कानून द्वारा एक आयु निर्धारित की गई है, किन्तु सामाजिक मूल्यों व आद"ार्ों द्वारा संचालित होने वाले भारतीय ग्रामीण समाज में शीघ्र विवाह की परम्परा रही है और गांव में स्त्री–पुरूष के युवा होते ही उसके विवाह बन्धन में बंध जाने की अपेक्षा की जाती है। इस अपेक्षा का प्रमुख ध्येय लैंगिक सम्बन्धों को नियमित करना, धार्मिक दायित्वों की पूर्ति करना व घरेलू दायित्वों के प्रति गम्भीरता उत्पन्न करना है। एक ग्रामीण पुरूष के विवाहित होने का यह आ"ाय लगाया जाता है कि अब यह व्यक्ति अपने पूरे परिवार, पड़ोस व नातेदारी सम्बन्धों के निर्वहन के प्रति पूर्णतः गंभीर हो गया है। इसी प्रकार एक ग्रामीण स्त्री के विवाह बंधन में बंध जाने पर यह माना जाने लगता है कि अब वह पूरी एक गृहस्थी व उस गृहस्थी से सम्बन्धित पूरे एक समाज का दायित्व अपने कंधों पर उठा लेगी। कहने का आ"ाय यह है कि भारतीय ग्रामीण समाज में विवाह उत्तरदायित्वों के निर्वहन के प्रति गम्भीरता उत्पन्न करता है, व्यक्ति को एक गम्भीर सामाजिक प्राणी में परिवर्तित कर देता है। विवाह के प"चात एक पुरूष उत्तरदायी पिता, पुत्र या पति व एक स्त्री एक उत्तरदायी माँ, बहू या पत्नी बन जाती है, ऐसा ग्रामीण समाज में माना जाता है।

9.12.1 ग्रामीण विवाह की परिभाषायें

साधारण रूप से कहा जा सकता है कि विवाह एक सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था

है जो एक रूत्री–पुरूष को कुछ वि"ोष नियमों के अन्तर्गत यौन–संतुष्टि के अवसर प्रदान करती है और परिवार में व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों का निर्धारण करती है। लगभग इसी आ"ाय को लेकर विभिन्न विद्वानों ने विवाह संस्था को भिन्न–भिन्न अर्थों में परिभाषित किया है।

वेस्टरमार्क का कथन है कि विवाह को एक या अधिक पुरूषों का एक या अधिक स्त्रियों के साथ होने वाला वह संबंध कहकर परिभाषित किया जा सकता है जो प्रथा अथवा कानून के द्वारा स्वीकृत होता है और जिसमें विवाह से संबंधित दोनों पक्षों और उनसे उत्पन्न होने वाले बच्चों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का समावे"ा होता है। विवाह संबंध जिन प्रथाओं पर आधारित होते हैं, उनका निर्धारण परिवार द्वारा होता है। इस आधार पर वेस्टरमार्क का कथन है कि परिवार ही विवाह का आधार है।

हॉबेल का कथन है, विवाह सामाजिक आद"ाों नियमों की एक समग्रता है जो विवाहित व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों को उनके रक्त संबंधियों और अन्य नातेदारों के प्रति परिभाषित करती है और उन पर नियंत्रण रखती है।

बोगार्ड्स के अनुसार, विवाह स्त्री तथा पुरूष के पारिवारिक जीवन में प्रवे"ा करने की संस्था है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर विवाह संस्था से संबंधित कुछ प्रमुख वि"ोषताओं को वेस्टरमार्क ने इस प्रकार स्पष्ट किया है–

1–विवाह एक सामाजिक संस्था है।

2–यह संस्था प्रमुख रूप से व्यक्ति को यौन संबंधों का अधिकार देती है और व्यक्ति से आ"ाा करती है कि वह कुछ नियमों का पालन करते हुए अपने इस अधिकार का उपयोग करेगा।

3–विवाह तभी मान्य हो सकता है जबकि दोनों पक्षों के बीच विवाह संबंध का निर्धारण किसी प्रथा अथवा कानून के अनुसार हुआ हो।

4–विवाह केवल यौन संबंधों पर ही आधारित नहीं होता बल्कि इसे एक सामाजिक– आर्थिक संस्था भी कहा जा सकता है। यह इस दृष्टिकोण से कि विवाह का प्रभाव पति और पत्नी के संपंति अधिकारों तथा सामाजिक परिस्थिति पर भी पड़ता है।

5–विवाह का कार्य एक व्यक्ति की सामाजिक प्रस्थिति का भी निर्धारण करना है। इस कार्य का महत्व इस बात से स्पष्ट होता है कि सामाजिक व्यवस्था में अवैध रूप से जन्म लेने वाले बच्चों को उतना सम्मान नहीं मिल पाता जितना कि वैध संतानों को प्राप्त होता है।

6–विभिन्न समाजों में विवाह पद्धतियां भिन्न–भिन्न हो सकती हैं जिसका कारण विभिन्न समाजों की प्रथाओं, कानूनों अथवा सांस्कृतिक वि"ोषताओं में भिन्नता का होना है।

9.12.2 ग्रामीण विवाह के उद्दे"य

ग्रामीण विवाह के भी वे ही उद्दे"य हैं जो हिन्दू विवाह के हैं। हिन्दू विवाह को एक धार्मिक संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है जिसका उद्दे"य धर्म, प्रजा और रति का पालन करना है। विवाह के द्वारा व्यक्ति अपनी आध्यात्मिक, सामाजिक एवं भौतिक आव"यकताओं की पूर्ति करता है। हिन्दू विवाह के सम्बन्ध में कापड़िया लिखते हैं, 'धर्म, प्रजा (सन्तति) और रति (आनन्द) हिन्दू विवाह के उद्दे"य माने जाते हैं।' इस परिभाषा से हिन्दू विवाह के तीन उद्दे"य स्पष्ट होते हैं–

(1) धर्म–प्रत्येक ग्रामीण हिन्दू को अपने जीवन काल में अनेक धार्मिक क्रियाऐं और संस्कार सम्पन्न करने होते हैं। इनकी पूर्णता के लिए व्यक्ति का विवाहित होना आव"यक है। अविवाहित व्यक्ति द्वारा सम्पन्न धार्मिक क्रियाऐं अपूर्ण मानी जाती हैं।

(2) **प्रजोत्पत्ति**–हिन्दुओं में सन्तान का अत्यधिक महत्व है। विवाह का दूसरा उद्दे"य सन्तान उत्पन्न करना है। हिन्दुओं में मान्यता है कि पुत्र ही पिता को श्राद्ध, तर्पण और हवन आदि के द्वारा नरक से बचाता है।

(3) **रति**–विवाह का उद्दे"य यौन सुख प्राप्त करना भी है। धर्म"ाास्त्रों में जीवन के चार उद्दे"य–धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष माने गये हैं। विवाह के द्वारा धर्म, अर्थ और काम तीनों की पूर्ति होती है।

इन उद्दे"यों के अतिरिक्त ग्रामीणों में विवाह के कुछ और उद्दे"य भी हैं, जैसे–

(4) **कृशि में सहायता**–गांवों में अधिकां"ा जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। कृषि कार्य में अधिक व्यक्तियों की आव"यकता होती है। गांव में कम आयु में विवाह का प्रचलन इसलिए भी है कि पुत्र के विवाह के कारण घर में बहू आ जाती है और शीघ्र सन्तानोत्पत्ति होने से बच्चे और बहू कृषि कार्य में सहायता देते हैं।

(5) **सामाजिक प्रतिष्ठा**–ग्रामीणों में विवाह एक आव"यक कर्तव्य है। जिस व्यक्ति का विवाह एक लम्बे समय तक नहीं होता, उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा गिर जाती है। अतः सामाजिक प्रतिष्ठा बनाए रखने के लिए भी यहां विवाह आव"यक है।

(6) **प्रसन्नता और मनोरंजन के साधन**–ग्रामीण लोगों में विवाह प्रसन्नता और मनोरंजन का सूचक माना जाता है।

(7) **वं"ा चलाने की लालसा**–ग्रामीणों में विवाह का उद्दे"य अपने वं"ा को चलाने की लालसा भी है। विवाह द्वारा परिवार का निर्माण किया जाता है और पारिवारिकता ग्रामीण सामाजिक जीवन का आधार है।

9.12.3 ग्रामीण विवाह सम्बन्धी निषेध

ग्रामीण लोग विवाह से सम्बन्धित अनेक निषेधों का भी पालन करते हैं, जो इस प्रकार हैं–

(1) **सपिण्ड बहिर्विवाह**–माता की ओर से पांच और पिता की ओर से सात पीढ़ियों के सम्बन्धियों में परस्पर विवाह की मनाही होती है क्योंकि उन्हें सपिण्डी माना गया है।

(2) **गोत्र बहिर्विवाह**–अपनी उत्पत्ति एक ही पूर्वज से मानने वाले सगोत्री होते हैं। अतः वे परस्पर भाई बहन होते हैं और उनमें विवाह करना मना होता है। कई जातियों में अपने गोत्र के अतिरिक्त कुछ अन्य गोत्रों को छोड़कर वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किये जाते हैं।

(3) **जाति अन्तर्विवाह**–ग्रामीणों में कोई भी व्यक्ति अपनी जाति या उपजाति से बाहर विवाह नहीं करता है। वहां अन्तर्जातीय विवाह नहीं होते ।

(4) **गांव बहिर्विवाह**–भारत के कई गांवों में प्रमुखतः पंजाब एवं उत्तरी भारत के गांवों में एक व्यक्ति को अपने ही गांव में विवाह करने की मनाही होती है। यहां तक कि उन गांवों में भी विवाह की मनाही होती है जो विवाह करने वाले के गांव की सीमा को छूते हों। वहां एक कहावत प्रचलित है, 'सीम सीमना भाई–चारा'। दक्षिण भारत के गांवों में इस प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

(5) **अन्य निशेध**–इसके अतिरिक्त प्राचीन समय में सप्रवर विवाह निषेध का भी प्रचलन था। आदिवासी गांवों में एक ही टोटम के सदस्यों में परस्पर विवाह की मनाही होती थी।

9.12.4 ग्रामीण विवाह के प्रकार

भारतीय ग्रामीण समाज में विवाह के निम्नलिखित प्रकार प्रचलित हैं–

(1) **एक विवाह**–पिडिंगटन का कथन है कि 'एक विवाह विवाह का वह स्वरूप है जिसमें किसी एक समय में कोई भी पुरूष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकता।' इससे स्पष्ट होता है कि एक विवाह का अर्थ जीवन में केवल एक बार ही विवाह करना नहीं है बल्कि यह वह नियम है जिसके अन्तर्गत एक पत्नी अथवा एक पति के रहते हुए कोई भी पक्ष दूसरी स्त्री अथवा दूसरे पुरूष से विवाह नहीं कर सकता। एक विवाह प्रत्येक समाज में विवाह का सर्वोत्तम नियम माना जाता है। साधारणतः जिन समाजों में एक विवाह को सर्वोच्च सामाजिक मूल्य के रूप में रेखा जाता है, वहां सभी व्यक्तियों पर यौन के क्षेत्र में कठोर नियंत्रण लगाये जाते हैं। इस पद्धति से किये गये विवाह को तोड़ना अत्यधिक कठिन तो होता ही है, साथ ही ऐसा करना सामाजिक रूप से अनुचित भी समझा जाता है।

(2) **बहुपत्नी विवाह**–बहुपत्नी विवाह वह प्रथा है जिसके अनुसार एक पुरूष अपनी पहली पत्नी के जीवित रहने पर भी अन्य स्त्रियों से विवाह संबंध स्थापित कर सकता है। यद्यपि संसार के सभी समाजों में बहुपत्नी विवाह किसी न किसी रूप में जरूर पाया जाता रहा है, लेकिन सभ्यता के विकास के साथ ही ऐसे विवाहों की संख्या निरंतर कम होती जा रही है। कापड़िया का कथन है कि भारत में वैदिक काल से लेकर 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक ऐसा कोई भी समय नहीं रहा, जबकि यहां बहुपत्नी विवाह का प्रचलन न रहा हो। वि"ोषकर मध्यकाल से लेकर उन्नीसवीं

शताब्दी तक अधिक पत्नियों का होना सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान का विषय भी समझा जाने लगा था। इसके फलस्वरूप हमारे समाज में बहुत से जागीरदार, जमींदार, सम्पन्न व्यक्ति और अभिजात वर्ग के सदस्य एक साथ अनेक स्त्रियों से विवाह करके जीवन व्यतीत करना अच्छा समझते थे।

(3) **बहुपति विवाह**–बहुपति विवाह प्रमुख रूप से जनजातियों के जीवन से ही संबंधित है। माइकेल का कथन है, एक स्त्री द्वारा एक पति के जीवित होते हुये अन्य पुरूषों से भी विवाह करना अथवा एक समय पर दो या दो से अधिक पुरूषों से विवाह करने की स्थिति को हम बहुपत्नी विवाह कहते हैं। लगभग इन्हीं शब्दों में कापड़िया का कथन है, बहुपत्नी विवाह वह संबंध है जिसमें एक स्त्री एक समय में एक से अधिक पुरूषों का वरण कर लेती है अथवा जिसके अन्तर्गत अनेक भाई एक स्त्री का पत्नी के रूप में सम्मिलित रूप से उपभोग करते हैं। वास्तव में बहुपति विवाह की प्रथा आज जनजातियों में ि"क्षा और सांस्कृतिक संपर्क के प्रभाव से निरन्तर कम होती जा रही है।

9.12.5 ग्रामीण विवाह का संस्थात्मक महत्व

विभिन्न समाजों में विवाह के रूप में चाहे कितनी भी भिन्नता क्यों न पायी जाती हो लेकिन एक संस्था के रूप में विवाह सर्वव्यापी है और अपने महत्व के कारण यह सभी समाजों की एक अनिवार्य वि"ोषता है। विवाह का संस्थात्मक महत्व इसके उद्दे"यों तथा कार्यों में निहित है जिसे संक्षेप में निम्नलिखित रूप से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **पारिवारिक जीवन की स्थापना**–यदि हम प्र"न करें कि विवाह की उत्पत्ति क्यों हुई ? तो हमें सरलतापूर्वक ज्ञात हो जाता है कि एक संस्था के रूप में विवाह का महत्व कितना सर्वव्यापी है। बैकोफन और मॉर्गन ने स्पष्ट किया है कि आदिकाल में स्त्री पुरूष के यौनिक संबंध बिलकुल अनियंत्रित थे। तब ऐसे किसी भी नियम का अभाव था जिससे व्यक्तियों के जीवन को नियंत्रण में रखा जा सके। इससे न केवल संघर्ष अपनी चरम सीमा पर पहुंच गये बल्कि बच्चे के पितृत्व का निर्धारण करना भी लगभग असंभव था। इन्हीं परिस्थितियों में विकास की एक लंबी प्रक्रिया के द्वारा विवाह जैसी संस्था की उत्पत्ति हुई तथा इसी के द्वारा व्यक्तियों के पारस्परिक संबंधों को व्यवस्थित किया जा सका।

2. **बच्चों को वैध रूप प्रदान करना**–एक संस्था के रूप में विवाह का संभवतः सबसे महत्वपूर्ण कार्य बच्चों को वैध रूप प्रदान करना है। विवाह की अनुपस्थिति में यदि बच्चे के पितृत्व को ज्ञात न किया जा सके तो इससे बच्चों को समाज में एक सम्मानपूर्ण पद मिलने में ही कठिनाई नहीं होती बल्कि समूह के नैतिक नियम कमजोर पड़ जाते हैं। इससे यौन अनैतिकता में वृद्धि होने की संभावना बनी रहती है। विवाह इस समस्या का समाधान करके बच्चों को वैध रूप प्रदान करता है और उन्हें एक दृढ़ पारिवारिक परंपरा से संबंद्ध करता है।

3. **सामाजिक संबंधों की सुदृढ़ता**–सामाजिक संबंधों की व्यवस्था को प्रभावित करने में भी विवाह संस्था का प्रमुख योगदान रहा है। वैवाहिक संबंधों की पृष्ठभूमि में ही बच्चा कुछ दूसरे व्यक्तियों से अपनी एकरूपता स्थापित करता है। इसका तात्पर्य यह है कि यह संस्था व्यक्ति को अपने रक्त संबंधियों, नातेदारों व दूसरे व्यक्तियों के बीच भेद करना सिखाती है। उचित और अनुचित की यही धारणा बाद में समाज को एक नैतिक व्यवस्था में परिवर्तित कर देती है। यदि विवाह जैसी कोई संस्था समाज में न होती तो संभवतः परिवार का निर्माण ही न होता और यदि अस्थिर प्रकृति के परिवार बन भी जाते तो उसकी कामाचार से रक्षा करना लगभग असंभव हो जाता । इस प्रकार सामाजिक संबंधों की व्यवस्था को दृढ़ बनाने के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस आधार पर हॉबेल का कथन है कि 'विवाह का प्रमुख कार्य व्यक्तियों के संबंधों को उनके रक्त संबंधियों और नातेदारों के प्रति परिभाषित करना तथा उन पर नियंत्रण रखना है।'

4. **व्यक्ति का समाजीकरण**–व्यक्ति के समाजीकरण में भी विवाह संस्था का वि"ोष महत्व है। यह व्यक्ति को अपने से भिन्न विचारधारा, परम्परा और रहन–सहन के व्यक्तियों से अनुकूलन करना सिखाती है। विवाह संस्था व्यक्तियों को व्यक्तिवादिता की संकीर्णता से बाहर निकालकर पारिवारिक कल्याण की भावना को अधिक दृढ़ बनाती है। यह त्याग को बढ़ावा देती है और पारस्परिक कर्तव्य के प्रति निष्ठा उत्पन्न करती है। यही गुण एक मानव प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करते हैं।

5. **संस्कृति का संचरण**–विवाह संस्था का एक प्रमुख कार्य संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचरित करने में सहायता देना और इस प्रकार संस्कृति को स्थायी बनाना है। विवाह की अनुपस्थिति में व्यक्ति के अनुभव पूर्णतः व्यक्तिगत होते हैं। विवाह के द्वारा एक वं"ा परम्परा का निर्माण होता है और सांस्कृतिक वि"ोषताऐं पिता से उसके पुत्र को मिलने से यह लगातार आगामी पीढ़ी को संचरित होती रहती है। इस प्रकार विवाह केवल जैविकीय आधार पर ही महत्वपूर्ण नहीं है बल्कि सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को व्यवस्थित रखने में भी इसका महत्वपूर्ण योगदान है।

6. **यौन संबंधों की नियमबद्धता**–यौनिक संतुष्टि व्यक्ति की जैविकीय आव"यकता है तथा विवाह के बिना इसे संस्थागत रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। विवाह के द्वारा स्त्री–पुरूष के स्वतंत्र संबंधों की संभावना को ही कम नहीं किया जाता बल्कि बच्चों और उनके माता–पिता के संबंध को एक सृदृढ़ आधार प्रदान किया जाता है। यही संबंध व्यक्तिगत तथा सामुदायिक जीवन को संगठित बनाते हैं और सांस्कृतिक विकास के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करते हैं। इस प्रकार विवाह केवल एक संस्था हीं नहीं है बल्कि सभी सामाजिक संस्थाओं में इसका महत्व केन्द्रीय है।

9.12.6 ग्रामीण विवाह की समस्याऐं

(1) **बाल विवाह**–गांवों में छोटे बच्चों का विवाह करवा दिया जाता है। कभी–कभी तो बच्चे इतने छोटे होते हैं कि उन्हें माता–पिता गोद में बैठाकर विवाह कराते हैं। इसके लिए धार्मिक रूढ़िवादिता, अंधवि"वास, अि"ाक्षा, संयुक्त परिवार, कृषि एवं उनकी आर्थिक स्थिति आदि परिस्थितियाँ उत्तरदायी हैं। लम्बे समय तक अविवाहित रहना सामाजिक दृष्टि से अनुचित माना जाता है। ग्रामीणों में गौन की प्रथा पाई जाती है अतः विवाह तो छोटी आयु में कर देते हैं, किन्तु लड़की को विदा युवा होने पर ही किया जाता है।

(2) **कन्या मूल्य**–गांव में जिन जातियों में कन्या मूल्य की प्रथा पाई जाती है, पुरूष को विवाह करने के लिये लड़की के पिता को मूल्य चुकाना होता है। एक पत्नी की मृत्यु हो जाने पर जब 'नाता' करके दूसरी पत्नी लाई जाती है तब भी लड़की के पिता को मूल्य देना होता है। कन्या मूल्य की मांग अधिक होने पर कई बार पुरूषों को कुंआरा ही रहना पड़ता है।

(3) **दहेज**–दहेज वह धन है जो विवाह के अवसर पर कन्या पक्ष द्वारा वर पक्ष को विवाह की आव"यक शर्त के रूप में दिया जाता है। दहेज का प्रचलन गांवों में उच्च जातियों में अधिक है। प्रत्येक व्यक्ति चाहता है कि उसकी लड़की का विवाह उच्च कुल में हो। इसके लिये उसे वर पक्ष को अधिक दहेज देना होता है। गांवों में अधिक दहेज देना और लेना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाता है इसलिए दहेज के अभाव में कई गरीब कन्याओं को योग्य वर प्राप्त नहीं हो पाते हैं।

(4) **विधवा विवाह**–गांवों में उच्च जातियों में विधवाओं को पुनर्विवाह की स्वीकृति नहीं है। यद्यपि विधुरों को पुनर्विवाह की आज्ञा है। वहां बाल विवाह के कारण विधवाओं की संख्या में वृद्धि हुई है। विधवाओं के साथ अनेक अत्याचार होते हैं। किसी भी शुभ कार्य में उनकी उपस्थिति अप"ाकुन मानी जाती है और उन्हें सिर से बाल मुड़वाने पड़ते हैं। हिन्दू विधवा पुनर्विवाह अधिनियम ने विधवा स्त्रियों को विवाह की छूट तो दी है, किन्तु गांव में अब भी ऐसे विवाहों का विरोध पाया जाता है। निम्न जातियों में विधवा विवाह की समस्या नहीं है।

(5) **तलाक की समस्या**–भारतीय धर्म–"ाास्त्रों में विवाह–विच्छेद की स्वीकृति नहीं दी गई है। विवाह को जन्म–जन्मान्तर का सम्बन्ध माना गया है, अतः एक हिन्दू विवाह विच्छेद नहीं कर सकता है। केवल मृत्यु ही पति–पत्नी को पृथक कर सकती है। तलाक के अभाव ने हिन्दूओं के जीवन को घुटन से भर दिया है। पुरूष यदि अत्याचारी, व्यभिचारी, रोगी, अकर्मण्य अथवा क्रूर हो तो भी हिन्दू स्त्री उसे त्याग नहीं सकती और उसे कई बार पति द्वारा किये जाने वाले अनेक अत्याचार भी सहन करने होते हैं। ऐसी स्थिति में स्त्री का जीवन कष्टमय हो जाता है। हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 के द्वारा वि"ोष परिस्थितियों में स्त्री–पुरूषों को विवाह विच्छेद की छूट दी गई है किन्तु ग्रामीण जीवन कानूनों के स्थान पर सामाजिक

मूल्यों व आद"ार्ों से अधिक नियंत्रित व संचालित होता है। अतः आज भी ग्रामीण समाज में विवाह विच्छेद की दर नगण्य है।

9.13 बोध प्र"न– 04

1. ग्रामीण विवाह की अवधारणा पर प्रका"ा डालिये।
2. ग्रामीण विवाह के निषेध कौन से हैं ?
3. ग्रामीण विवाह के प्रकार बताइये।
4. ग्रामीण विवाह की समस्यायें कौन–कौन सी हैं ?

9.14 सारां"ा

हमें भारतीय ग्रामीण समाज में अनेक सामाजिक संस्थाओं का प्रभाव देखने को मिलता है। परिवार, विवाह, नातेदारी, धर्म, जाति, गुट, पंचायत व ि"ाक्षा जैसी सामाजिक संस्थायें ग्रामीण समाज को नियमित, नियंत्रित और संचालित करती हैं। इन सामाजिक संस्थाओं के अभाव में ग्रामीण समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जहां तक परिवार का प्र"न है, ग्रामीण समाज में परिवार का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। भारतीय ग्रामीण समाज संयुक्त परिवार अर्थात बड़े परिवारों के रूप में रहना पसन्द करता है। इससे उसे सामाजिक व आर्थिक सुरक्षा का अनुभव होता है। यद्यपि औद्योगीकरण, नगरीकरण व अन्य अनेक कारणों से भारतीय ग्रामीण परिवारों के स्वरूप में परिवर्तन आया है और बड़े–बड़े परिवारों का स्थान छोटे–छोटे परिवारों (एकाकी परिवारों) ने लेना आरम्भ कर दिया है तथापि परिवार अभी भी भारतीय ग्रामीण समाज की एक बड़ी संस्थात्मक विषे"ाता बने हुए हैं।

जहां तक नातेदारी व्यवस्था का प्र"न है, इसका अध्ययन मूल रूप से दो ही समुदायों के सम्बन्ध में किया जाता है–जनजातीय समाज व ग्रामीण समाज। जनजातीय समाजों के भी केवल उन्हीं हिस्सों में नातेदारी व्यवस्था का महत्व शेष है, जो अभी भी ग्रामीण सामाजिक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। इस प्रकार यह माना जा सकता है कि भारतीय ग्रामीण समाज में सामाजिक संस्था के रूप में नातेदारी व्यवस्था अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखती है। नातेदारी व्यवस्था का महत्व इसके सांस्कृतिक पहलू में ही अधिक व्याप्त है और ग्रामीण समाज का सांस्कृतिक जीवन अत्यन्त समृद्ध होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय ग्रामीण समाज में नातेदारी व्यवस्था की जड़ें अत्यन्त गहरे से व्याप्त हैं और सामाजिक परिवर्तन के इस युग में भी यह व्यवस्था सम्पूर्ण गौरव के साथ विद्यमान है।

चूंकि भारतीय ग्रामीण समाज मूल रूप से हिन्दू समाज के रूप में ही दृष्टिगोचर होता है, इसी कारण ग्रामीण विवाह के रूप में हम हिन्दू विवाह के अध्ययन को ही प्राथमिकता देते हैं। भारतीय गांवों में विवाह के सम्बन्ध में अनेक निषेध प्रचलित हैं और वर्तमान समय में भी इन निषेधों का अक्षर"ाः पालन किया जाता है। ग्रामीण समाज विवाह के मामले में अनेक समस्याओं का सामना भी कर

रहा है जिनमें दहेज प्रथा, बाल विवाह और विवाह विच्छेद की अनुमति न देना प्रमुख हैं। फिर भी ग्रामीण विवाह भारतीय संस्कृति के ध्वज को उठाये हुए है।

9.15 प्रयुक्त शब्दावली

संस्था : संस्था कार्य करने के तरीकों व नियमों की एक व्यवस्था है।

ग्रामीण परिवार : ग्रामीण परिवार एक ऐसा गृहस्थ समूह है, जिसमें अनेक पीढ़ियां सम्मिलित होती हैं। ग्रामीण परिवार के सदस्यों का एक सामान्य निवास स्थान होता है, वे एक रसोई का पका भोजन ग्रहण करते हैं तथा सामान्य सम्पत्ति के स्वामी होते हैं।

नातेदारी : यह अधिकारों व दायित्वों की वह व्यवस्था है जो न केवल परिवार के सदस्यों के सम्बन्धों को परिभाषित करती है, बल्कि कई पारिवारिक इकाईयों के सम्बन्धों को भी प्रकट करती है।

ग्रामीण विवाह : ग्रामीण विवाह एक सामाजिक–सांस्कृतिक संस्था है जो एक स्त्री–पुरूष को कुछ वि"ोष नियमों के अन्तर्गत संतुष्टि के अवसर प्रदान करती है और परिवार में व्यक्ति के सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकारों का निर्धारण करती है।

9.16 अभ्यास प्र"न

1 ग्रामीण समाज में संस्था निर्धारित करती है–
   (क) व्यक्ति की प्रस्थिति (ख) व्यक्ति के अधिकार
   (ग) व्यक्ति के दायित्व (घ) उपरोक्त सभी

2 निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य है–
   (क) ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं की प्रकृति सरल होती है।
   (ख) ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं की प्रकृति जटिल होती है।
   (ग) उपरोक्त दोनों कथन सत्य हैं।
   (घ) उपरोक्त दोनों कथन असत्य हैं।

3 ग्रामीण सामाजिक संस्था है–
   (क) परिवार (ख) जाति
   (ग) नातेदारी (घ) उपरोक्त सभी

4 संस्था का आव"यक तत्व है–
   (क) वि"ाष्ट उद्दे"य (ख) नियमों की व्यवस्था
   (ख) सामूहिक स्वीकृति (घ) उपरोक्त सभी

5 यदि महाविद्यालय एक समिति है तो इससे सम्बन्धित संस्था होगी–
   (क) व्याख्यान (ख) परीक्षा प्रणाली
   (ग) स्नातकत्व (घ) उपरोक्त सभी

7 ग्रामीण परिवार की वि"ोषता है–

(क) कृषि व्यवसाय का होना (ख) परिवार के मुखिया का नियंत्रण
(ग) पारस्परिक सहयोग (घ) उपरोक्त सभी

8 यौन इच्छाओं की पूर्ति ग्रामीण परिवार के प्रकार्यों की किस श्रेणी में आता है–
(क) मनोवैज्ञानिक प्रकार्य (ख) सामाजिक प्रकार्य
(ग) प्राणि"ाास्त्रीय प्रकार्य (घ) उपरोक्त सभी

9 ग्रामीण परिवार में परिवर्तन के लिये उत्तरदायी है–
(क) औद्योगीकरण व नगरीकरण (ख) यातायात के साधनों का विकास
(ग) पा"चात्य संस्कृति का प्रभाव (घ) उपरोक्त सभी

10 'हिन्दू किनि"ाप' पुस्तक के लेखक हैं–
(क) के0 एम0 कापड़िया (ख) पेट्रीि"ाया ओबेराय
(ग) इरावती कर्वे (घ) जी0 एस0 घुरिये

11 किसने कहा है–'नातेदारी सामाजिक उद्दे"यों के लिये स्वीकृत वं"ा सम्बन्ध है जो
कि सामाजिक सम्बन्धों के परम्परात्मक सम्बन्धों का आधार है'–
(क) इरावती कर्वे (ख) रेडक्लिफ ब्राउन
(ग) इवान्स प्रिचार्ड (घ) डी0 एन0 मजूमदार

12 मुरडॉक ने कितने प्रकार के तृतीयक सम्बन्धियों का उल्लेख किया है–
(क) 151 (ख) 251
(ग) 351 (घ) 451

13 'सोि"ायोंलॉजी ऑफ किनि"ाप' पुस्तक के लेखक हैं–
(क) के0 एम0 कापड़िया (ख) इरावती कर्वे
(घ) शोभिता जैन (घ) लीला दुबे

14 ग्रामीण सामाजिक संरचना में नातेदारी का महत्व है–
(क) विवाह एवं परिवार का निर्धारण करने में
(ख) वं"ा एवं उत्तराधिकार का निर्धारण करने में
(ग) सामाजिक दायित्वों का निर्वाह करने में
(घ) उपरोक्त सभी

15 परिवार ही विवाह का आधार है, किसने कहा है–
(क) के0 एम0 कापड़िया (ख) के0 एल0 "ार्मा
(ग) विलियम वाइजर (घ) वेस्टरमार्क

16 किसने कहा है, विवाह स्त्री तथा पुरूष के पारिवारिक जीवन में प्रवे"ा करने की संस्था
है–
(क) शोभिता जैन (ख) के0 एम0 कापड़िया
(ग) बोगार्ड्स (घ) हॉबेल

17 ग्रामीण विवाह सम्बन्धी निषेध है–
(क) सपिण्ड बहिर्विवाह (ख) गोत्र बहिर्विवाह
(ग) जाति अन्तर्विवाह (घ) उपरोक्त सभी।

18 एक विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें कोई भी पुरूष एक से अधिक स्त्रियों से विवाह नहीं कर सकता, किसने कहा है–

(क) वेस्टरमार्क (ख) मजूमदार व मदान

(ग) हॉबेल (घ) पिडिंगटन

19 ग्रामीण विवाह का प्रमुख उद्दे"य है–

(क) व्यक्ति का समाजीकरण करना

(ख) संस्कृति का संचरण

(ग) उपरोक्त दोनों

(घ) उपरोक्त में से कोई नहीं

9.17 अभ्यास प्र"नों के उत्तर

1 घ उपरोक्त सभी 2 क ग्रामीण सामाजिक संस्थाओं की प्रकृति सरल होती है। 3 घ उपरोक्त सभी 4 घ उपरोक्त सभी 5 घ उपरोक्त सभी 6 ग के0 एम0 कापड़िया 7 घ उपरोक्त सभी 8 ग प्राणि"ाास्त्रीय प्रकार्य 9 घ उपरोक्त सभी 10 क के0 एम0 कापड़िया 11 ख रेडक्लिफ ब्राउन 12 क 151 13 घ लीला दुबे 14 घ उपरोक्त सभी 15 घ वेस्टरमार्क 16 ग बोगार्ड्स 17 घ उपरोक्त सभी 18 घ पिडिंगटन 19 ग उपरोक्त दोनों।

9.18 निबन्धात्मक प्र"न

1– ग्रामीण परिवार से आप क्या समझते हैं ? ग्रामीण परिवार के प्रकार्यों को समझाइये।

2– ग्रामीण परिवार की संरचना और प्रकार्यों में आ रहे परिवर्तनों का उल्लेख कीजिये।

3– ग्रामीण समाज में नातेदारी व्यवस्था की भूमिका को स्पष्ट कीजिये

4– ग्रामीण विवाह को स्पष्ट करते हए इसकी समस्याओं पर प्रका"ा डालिये।

9.19 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

–देसाई, आई0 पी0, 'सम आस्पेक्ट्स ऑफ फेमिली इन महुआ' (1964), ए"िाया पब्लि"िांग हाउस, बॉम्बे।

–फॉक्स, रॉबिन, 'किनि"िप एण्ड मैरिज' (1974), पैंग्विन बुक्स, दिल्ली।

–जैन, शोभिता, ' भारत में परिवार, विवाह और नातेदारी' (2010), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।

–कापड़िया, के0 एम0, ' मेरिज एंड फैमिली इन इन्डिया' (1964), ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कलकत्ता।

–कापड़िया, के0 एम0, ' हिन्दू किन"िाप' (1947), पॉपुलर बुक डिपो, बॉम्बे।
–लेविस, ऑस्कर, 'विलेज लाइफ इन नॉदर्न इण्डिया : स्ट्रक्चर इन ए देहली विलेज' (1958), यूनिवर्सिटी ऑफ इलिनॉस प्रेस, उरबाना।
–मेण्डलबाम, डेविड, जी. 'सोसायटी इन इण्डिया' (1970) , यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस, बर्कले।
–मेरियट, मैकिम, 'सो"ाल स्ट्रक्चर एंड चेन्ज इन यू0 पी0 विलेज' इन एम0 एन0 श्रीनिवास (सम्पादक), 'इण्डियन विलेज' (1955), ए"िाया पब्लि"िांग हाउस, बॉम्बे।
–मायर, ए0 सी0, 'कास्ट एण्ड किन"िाप इन सेन्ट्रल इण्डिया' (1960), रूट्ज एण्ड कीगन पॉल, लन्दन।
–मुकर्जी, रामकृष्ण, 'डायनेमिक्स ऑफ ए रूरल सोसायटी' (1957), बर्लिन।
–सिंगर, मिल्टन एंड कोहेन, बी0 एस0 (सम्पादक), 'स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज इन इण्डियन सोसायटी' (1968), एल्डाइन पब्लि"िांग कम्पनी, ि"ाकागो।

9.20 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

–मजूमदार, डी0 एन0, 'सामाजिक मानव"ाास्त्र' (2009), मयूर पेपरबैक्स, दिल्ली।
–मुर्डोक, जे0 पी0, 'सो"ाल स्ट्रक्चर' (1949), मैकमिलन, न्यूयार्क।
–प्रभु, पी0 एच0, 'हिन्दू सो"ाल आर्गेनाइजे"ान' (1954), पॉपुलर बुक डिपो, बॉम्बे।
–शर्मा, के0 एल0, 'इण्डियन सो"ाल स्ट्रक्चर एण्ड चेन्ज' (2006), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।

इकाई 10 ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण : अन्तर्जातीय सम्बन्ध और जजमानी व्यवस्था

Rural Social Stratification: Inter Caste Relations and Jajmani System

इकाई की रूपरेखा

10.1 उद्देश्य
10.2 प्रस्तावना
10.3 सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ व परिभाषाऐं
10.4 सामाजिक स्तरीकरण की सामान्य विशेषताऐं
10.5 ग्रामीण स्तरीकरण के मुख्य आधार
10.6 स्तरीकरण और जाति व्यवस्था
10.7 बोध प्रश्न–01
10.8 भारतीय ग्रामों में अन्तर्जातीय सम्बन्ध
10.9 अन्तर्जातीय सम्बन्धों के आधार
10.10 अन्तर्जातीय सम्बन्धों का स्वरूप
10.11 बोध प्रश्न–02
10.12 जजमानी व्यवस्था
10.13 जजमानी व्यवस्था का अर्थ व परिभाषाऐं
10.14 जजमानी व्यवस्था की विशेषताऐं
10.15 जजमानी व्यवस्था के लाभ
10.16 जजमानी व्यवस्था की हानियां
10.17 जजमानी व्यवस्था के विघटन के कारण
10.18 बोध प्रश्न–03
10.19 सारांश
10.20 प्रयुक्त शब्दावली
10.21 अभ्यास प्रश्न
10.22 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
10.23 निबन्धात्मक प्रश्न
10.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
10.25 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

10.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप यह जान सकेंगे कि–

–सामाजिक स्तरीकरण किसे कहते हैं ?

–भारतीय ग्रामीण स्तरीकरण के मुख्य आधार क्या हैं ?
–भारतीय ग्रामों में अन्तर्जातीय सम्बन्धों के आधार कौन–कौन से हैं ?
–जजमानी व्यवस्था क्या है ?
–जजमानी व्यवस्था के लाभ व हानियां कौन–कौन सी हैं ?
–भारतवर्ष में जजमानी व्यवस्था के विघटन के कारण कौन से हैं ?

ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण :

किसी भी समाज को समझने के लिए यह आव"यक है कि हम सर्वप्रथम उसकी सामाजिक संरचना को जानने का प्रयास करें। यह ज्ञात करने की आव"यकता है कि अमुक समाज में किस प्रकार के वर्ग, जाति और श्रेणियां हैं ? इनके आधार पर समाज किस रूप में विभाजित है ? जिस प्रकार नगर अनेक वर्ग व जाति में विभाजित है उसी प्रकार समाज भी विभाजित हैं। वर्गीकरण के मुख्य आधार आर्थिक और सामाजिक स्थितियां हैं। इन्हीं पर आश्रित हैं असंख्य बन्द और खुले वर्ग। इन वर्गों को सरलता से एक दूसरे से पृथक किया जा सकता है।

ग्रामीण समाज का खुले और बन्द वर्ग दोनों के ही आधार पर अध्ययन किया जा सकता है। इनकी ग्रामीण संरचना में अपनी पृथक वि"ोषताएं भी हैं। ग्रामीण समाज में ऊँच–नीच की भावना भी सामाजिक स्तरीकण को द"र्ाती है जहाँ धर्म और परम्पराओं के आधार पर कुछ व्यक्तियों और जातियों को काफी ऊँचा स्थान प्राप्त है और असंख्य जातियों को काफी नीचा। आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से अनेक प्रकार के परिवर्तन ग्रामीण समाज में घटित हो रहे हैं जो सामाजिक स्तरीकरण को प्रभावित कर रहे हैं। गांव के हरिजन विधायक की स्थिति जाति के आधार पर अब न हेय रही है और न अपमानजनक। सभी जाति और वर्ग के व्यक्ति उसके पास जाते हैं। इस तरह ऊँच–नीच की भावना के आधार पर जो वर्ग व जातियां ग्रामीण समाज में परम्परात्मक रूप से चली आ रही थीं उनमें परिवर्तन आया है। यादव, कटियार, सचान आदि जातियों की आर्थिक–सामाजिक स्थितियों में अनेक परिवर्तन हो रहे हैं। ये ग्रामीण संरचना में नये वर्ग और नवीन स्तरीकण के आधार को द"र्ाते हैं।

10.2 प्रस्तावना

किसी भी समाज की सामाजिक संरचना को समझने में स्तरीकरण की अवधारणा महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। नगरीय समाज की तुलना में ग्रामीण समाज में स्तरीकरण का महत्व और अधिक है। वि"ोषकर जातीय आधार पर ग्रामीण सामाजिक स्तरीकरण अत्यन्त प्रभाव"ाली दिखाई देता है। सामाजिक परिवर्तन के इस दौर में भी भारतीय ग्रामीण समाज में बन्द स्तरीकरण का महत्व बहुत अधिक है। भारतीय ग्रामीण स्तरीकरण के मुख्य आधार सामाजिक, आर्थिक, सम्पत्तिगत व व्यावसायिक हैं। स्तरीकरण के आधार पर ही भारतीय ग्रामों में अन्तर्जातीय सम्बन्ध निर्धारित होते हैं। प्रत्येक गांव में जातीय संस्तरण पाया जाता है और दिलचस्प पहलू यह है कि

किसी गांव में जिस जाति के सदस्यों की संख्या अधिक होती है, उस गांव में उसी जाति का वर्चस्व पाया जाता है और वह जाति प्रभु जाति कहलाती है, भले ही जातीय संस्तरण में उसे निचला स्थान ही क्यों न प्राप्त हो। भारतीय ग्रामों में, जजमानी व्यवस्था सामाजिक स्तरीकरण व इसके आधार पर निर्मित्त हेने वाले अन्तर्जातीय सम्बन्धों का उत्कृष्ट उदाहरण है। जातीय आधार पर एक भारतीय ग्राम में विभिन्न लोगों के मध्य किस प्रकार सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल विकसित होता है, इसे जजमानी व्यवस्था भली भांति समझती है। प्रस्तुत इकाई में इसी तथ्य को समझने का प्रयास किया गया है।

10.3 सामाजिक स्तरीकरण का अर्थ व परिभाषाऐं

,आरम्भ में व्यक्ति ने अपनी योग्यता, क्षमता, कु"ालता एवं बुद्धि के आधार पर कार्यों को चुना। इन कार्यों के बदले समाज ने इन्हें कुछ अधिकार, पद और प्रतिष्ठा प्रदान की। विभिन्न कार्यों से विभिन्न व्यक्तियों को जो सुविधायें, सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई उसने समाज में इन्हें एक सामाजिक स्थिति और स्तर भी प्रदान किया। इस तरह समाज में विभिन्न कार्यों को करने वाले व्यक्तियों के विभिन्न समूह बन गए जिससे समाज में अनेक प्रकार की सामाजिक स्थितियों का बोध होने लगा। प्रत्येक समूह के कार्य करने का ढंग दूसरे से भिन्न था। इसलिए एक समूह के समान कार्य करने वालों का कालान्तर में एक वर्ग बन गया। स्तर की विभिन्नता और भेद ही आगे चलकर स्तरीकरण के मुख्य आधार बन गए। इस प्रकार स्तरीकरण का जन्म विभिन्न समूहों, संगठनों और वर्गों के बनने से हुआ। इस तरह यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

अनेक विद्वानों ने स्तरीकरण के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त किए है। पी0 गिसवर्ट का मत है कि 'सामाजिक स्तरीकरण समाज का उन समूहों अथवा वर्गों में स्थायी विभाजन है जो परस्पर श्रेष्ठता और अधीनता के सम्बन्धों में संलग्न होते हैं।'

मेलविन का मत है कि 'स्तरीकरण विभेदीकरण एवं मूल्य निर्धारण के संयोग का परिणाम है। वास्तव में स्तरीकरण के किसी भी व्यवस्था के कार्य में परिणत होने के लिए कम से कम चार मुख्य प्रक्रियाऐं हैं–विभेदीकरण, श्रेणीकरण, मूल्यांकन और पुरस्कार।'

टालकट पारसन्स स्तरीकरण की व्याख्या करते हुये लिखते हैं कि 'मानवीय व्यक्तियों के भेदीय वर्ग जो एक वि"ोष सामाजिक व्यवस्था का निर्माण करते हैं, एक नि"चत महत्वपूर्ण सामाजिक सम्मान के रूप में उनका व्यवहार उच्च एवं निम्न की भावना से परस्पर संबंधित होता है।'

सोरोकिन ने कहा है कि 'सामाजिक स्तरीकरण का तात्पर्य है, एक जनसंख्या वि"ोष का एक दूसरे के ऊपर, ऊँच–नीच के स्तरणात्मक वर्गों में विभेदीकरण। इसकी अभिव्यक्ति उच्चतर एवं निम्नतर स्तरों के विद्यमान होने के माध्यम से होती है।'

10.4 सामाजिक स्तरीकरण की सामान्य वि"ोषताऐं

उपरोक्त परिभाषाओं की व्याख्या और वि"लेषण करने के प"चात् हमें स्तरीकरण की निम्नलिखित सामान्य वि"ोषताऐं देखने को मिलती हैं–

1–सामाजिक स्तरीकरण सार्वभौमिक है।

2–स्तरीकरण जटिल समाज के परस्पर सम्बन्धों को विभाजित करने का एक सरल तरीका है।

3–स्तरीकरण सामाजिक विभिन्नताओं के फलस्वरूप तीव्रता से विभिन्न स्वरूपों में उत्पन्न होता है।

4–स्तरीकरण के आधार कई हो सकते हैं, जैसे आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, प्रजातीय एवं f"ाक्षा आदि।

5–स्तरीकरण विभिन्न वर्गों को निम्न एवं उच्च के स्तरण में विभाजित करता है।

6–एक ही कार्य क्षेत्र में कार्य करने वाले व्यक्तियों को अनेक उप–स्थितियों एवं स्तरों में विभाजित किया जा सकता है। जैसे ऑफिस में अधिकारी, लेखाधिकारी, बाबू एवं चपरासी आदि।

7–समय के अनुसार स्तरीकरण की कसौटियों में भिन्नता आती है।

8–प्रत्येक दे"ा में स्तरीकरण के आधार सामान्य न होकर भिन्न होते हैं।

9–औद्योगिक और वैज्ञानिक प्रगति ने स्तरीकरण के नये आधारों को भी जन्म दिया है।

10–आधुनिक संसार में गति"ाीलता की उन्नति से परम्परात्मक संरचना में लचीलापन आया है। इसने एक संस्था के व्यक्तियों को नवीन स्तर एवं स्थितियाँ प्रदान की हैं।

10.5 ग्रामीण स्तरीकरण के मुख्य आधार

ग्रामीण स्तरीकरण के मुख्य आधारों को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है–

(1) **सामाजिक आधार**–ग्रामीण समाज में स्तरीकरण का आधार वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था है। वर्ण व्यवस्था सवर्ण हिन्दुओं को चार वर्णों–ब्राह्मण, क्षत्रीय, वै"य और शूद्र में विभाजित करती है। इनमें परस्पर ऊँच–नीच की भावना और पर्याप्त सामाजिक दूरी भी है। इनकी सामाजिक प्रतिष्ठा और सम्मान में भी परस्पर बहुत दूरी है। इसमें ब्राह्मण सर्वोच्च स्थान पर हैं तो शूद्र निम्नतम स्थान पर। जाति व्यवस्था भारतीय गांवों की मुख्य वि"ोषता है। संपूर्ण ग्रामीण संरचना जातीय व्यवस्था पर आधारित है। संपूर्ण ग्रामीण समाज का कार्य विभिन्न जातियों के द्वारा पूर्ण किया जाता है। जो जितना महत्वपूर्ण कार्य करता है उसकी समाज में उतनी ही प्रतिष्ठा होती है और उसका उतना ही सम्मान किया जाता है।

(2) **आर्थिक आधार**–ग्रामीण समाज में भी धन के आधार पर अनेक वर्ग देखने को मिलते हैं जैसे धनी वर्ग, मध्यम धनी वर्ग, निर्धन वर्ग और दरिद्र वर्ग। गांव में जमींदार वर्ग वह धनी वर्ग है जिसके पास काफी जमीन है। दो समय का भोजन भी जिन्हें बहुत कठिनाई से मिलता है वे निर्धन वर्ग में आते हैं। यह वर्ग ग्रामीण समाज में सबसे अधिक है। मध्यम धनी और मध्यम वर्ग के व्यक्ति नाम–मात्र को हैं।

(3) **सम्पत्ति आधार**–ग्रामीण समाज में सम्पत्ति का मुख्य आधार भूमि है। इस आधार पर ग्रामीण समाज में अनेक वर्ग पाये जाते हैं–जमींदार, छोटे–मोटे भू–स्वामी, भूमिहीन श्रमिक खुदका"ती, बन्धुआ श्रमिक, बटाई पर कार्य करने वाले श्रमिक। जमींदारी प्रथा समाप्त होने के प"चात कृषि व्यवस्था में अनेक परिवर्तन देखे ज रहे हैं फिर भी धनाड्य जमींदारों का अभी भी ग्रामीण समाज पर दबदबा है। उनकी प्रतिष्ठा व सम्मान अभी भी अत्यधिक है।

(4) **व्यावसायिक आधार**–ग्रामीण समाज में व्यवसाय की दृष्टि से भी एक परम्परात्मक ढांचा देखने को मिलता है। इस ढांचे में भी ऊँच–नींच की पर्याप्त भावना देखने को मिलती है। यह भावना ही ग्रामीण व्यक्तियों में सम्मान और सामाजिक दूरी को बनाए हुए है। सर्वश्रेष्ठ वर्ग में पुरोहित, पंडित, धनी कृषक वर्ग, महाजन, दुकानदार, नौकरीपे"ाा, दस्तकार आदि व्यक्ति आते हैं। इनमें भी व्यावसायिक दृष्टि से जो धनी हैं और जो नहीं हैं उनमें काफी दूरी है। इसी तरह व्यवसाय की दृष्टि से अनेक प्रकार के व्यवसाय ग्रामीण अंचलों में देखे जा सकते हैं। फिर भी गांव में सामाजिक स्तरीकरण का मुख्य आधार जाति व्यवस्था है।

10.6 स्तरीकरण एवं जाति व्यवस्था

ग्रामीण संरचना में वर्ग संस्तरण मुख्यतः परम्परात्मक जाति व्यवस्था पर आधारित है। ग्रामीण जगत में विभिन्न कार्यों को करने वाले भिन्न–भिन्न जाति के सदस्य हैं। जातियों का एक वर्ग भू स्वामी तो दूसरा वर्ग भूमिहीन श्रमिक है। जातियों के आधार पर कुछ जातियां व्यवसाय करती हैं तो कुछ का"तकारी और कुछ विभिन्न प्रकार के कार्य करती हैं। इन सभी का एक वर्ग है और ये जातियों पर आधारित है।

(1) **उच्च जातियाँ**–सामान्यतः उच्च जातियों का अर्थ है जो शूद्र न हों। जैसे ब्राह्मण, क्षत्रीय और वै"य। किन्तु ग्रामीण क्षेत्र में असंख्य जातियों को आज पृथक–पृथक खानों में रखना अत्यन्त कठिन है क्योंकि अनेक ऐसी जातियां हैं जिन्हें आप वर्ण व्यवस्था के किसी भी खाने में नहीं रख सकते हैं। इसका मुख्य कारण है कि वर्ण मात्र चार हैं और जातियां हजारों हैं। समय के साथ शूद्र का अर्थ परिवर्तित होता गया है। अनेक ऐसी जातियां जो पहले शूद्र वर्ग में रखी जाती थीं अब पिछड़े वर्ग की जातियां कहलाती हैं। ग्रामीण क्षेत्र में उच्च–जातियों की एक लम्बी कड़ी है। ब्राह्मण भू स्वामी और कर्म कांडियों को उच्चतम स्थान प्रप्त होता है किन्तु साथ ही साथ वै"य, राजपूत, जाट, यादव, कटियार व सचान आदि जो आर्थिक दृष्टि से सुदृढ़ हैं उच्च जातियों के समकक्ष मानी जाती हैं। इस आधार पर हम यह कह सकते हैं कि स्तरीकरण का वर्ण और जातिगत आधार परिवर्तित हो गया है। ये

जातियां सम्पत्ति, ि"ाक्षा व सामाजिक सम्मान आदि के आधार पर अपने को उच्च जाति की समझती हैं। आज ग्रामीण क्षेत्र के ि"ाक्षित व्यक्ति ये कहने में संकोच नहीं करते कि व्यक्ति जन्म से नहीं कर्म से बड़ा होता है। जन्म का सिद्धान्त अन्धवि"वास और धर्म की रूढ़िवादिता के कारण विकसित हुआ और पनपा था। आधुनिक औद्योगिक और वैज्ञानिक युग में जातिगत और वर्णगत स्तरीकरण की परम्परात्मक मान्यताऐं परिवर्तित हो रही हैं।

(2) **हरिजन जातियाँ और स्तरीकरण**–हरिजन जातियों की एक श्रेणी निर्धारित कर दी गई है। इसमें वे ही जातियाँ आती हैं जो अस्पृ"यता अधिनियम, 1955 के बनने से पूर्व अछूतों के वर्ग में आती थीं। इसमें मूलतः मेहतर, चमार, डोम आदि सम्मिलित किए जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्र में भंगी और मृत प"ाुओं को उठाना, उनकी खाल उतारना आदि के कार्य करने वालों को अछूत कहा जाता है। अस्पृ"यता कानून बन जाने के प"चात् भी ग्रामीण क्षेत्र की उच्च जातियां आज भी हरिजन को हरिजन ही मानती हैं पर ि"ाक्षित और धनी वर्ग के व्यक्तियों की सोच में काफी परिवर्तन देखने को मिलता है। भारत सरकार हरिजनों को अनेक प्रकार की सुविधायें दे रही है जिससे इनकी आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक स्थिति में काफी परिवर्तन हो रहे हैं। ग्रामीण क्षेत्र में जातिगत भावना आज भी बहुत सबल है। इसलिए जितने परिवर्तन की आ"ाा की जाती है उतनी तीव्रता से हरिजन और सवर्णों के सम्बन्ध में बदलाव नहीं आया है। आज भी इनमें ऊँच–नीच की भावना विद्यमान है। यहाँ पर मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूँ कि यहाँ पर हरिजन, चमार व भंगी आदि शब्दों का प्रयोग केवल अतीत में प्रचलित शब्दावली का उल्लेख करने मात्र के लिए हुआ है। लेखक का इस शब्दावली में बिल्कुल वि"वास नहीं है।

(3) **पिछड़ी हुई जातियाँ और स्तरीकरण**–जातिगत स्तरीकरण का एक आधार पिछड़ी हुई जातियां भी है। मुख्यतः इसमें वे जातियाँ जाती हैं जो आर्थिक रूप से निर्धन हैं और छोटे छोटे कार्य करके अपनी जीविका अर्जित करती हैं। इन पिछड़ी हुई जातियों के नाम भी उनके काम पर पड़ गए हैं। जैसे धोबी, चमार, लुहार, सुनार, बढ़ई, कुम्हार, नाई, तेली, काछी, जुलाहे आदि। अपने वि"ोष कार्यों के लिये ग्रामीण समाज में इनकी वि"ोष स्थिति है। इनकी उपेक्षा करना इतना सरल नहीं है क्योंकि इनके अभाव में इनके कार्यों को कोई दूसरा नहीं कर सकता है। पिछड़ी हुई जातियों के व्यक्तियों को भी रूढिवादी ग्रामीण हरिजन श्रेणी में ही रखता है।

यहां पर यह कहना उचित होगा कि जातिगत स्तरीकरण का जहां एक ओर परम्परात्मक और धार्मिक आधार ग्रामीण अंचलों में विद्यमान है, वहीं सरकारी स्तर पर जातियों को विभिन्न श्रेणियों में विभाजित कर एक सरकारी जातिगत स्तरीकरण का स्वरूप भी उत्पन्न हुआ है, जैसे हरिजन जातियाँ, पिछड़ी हुई जातियाँ एवं जन–जातियाँ। इस तरह स्तरीकरण एक तरफ जातिगत है तो दूसरी तरफ वर्णगत भी है। ग्रामीण संरचना में इन दोनों को ही स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। वैसे सुनार, चमार, धोबी, तेली आदि जातियाँ भी हैं पर इनका एक वर्ग भी है जो गांव में अपना ही कार्य करता है।

10.7 बोध प्र"न–01

1. स्तरीकरण की अवधारणा को स्पष्ट कीजिए।
2. ग्रामीण स्तरीकरण के मुख्य आधार क्या हैं ?
3. स्तरीकरण और जाति व्यवस्था के अन्तर्सम्बन्ध को स्पष्ट कीजिए।

10.8 भारतीय ग्रामों में अन्तर्जातीय सम्बन्ध

'मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है', इस सत्य के प्रति अरस्तू ने बहुत पहले ही हमारा ध्यान आकर्षित किया था। अपने इस स्वभाव के कारण ही मनुष्य दूसरों के साथ रहना पसन्द करता है और इसलिये सुखी और सम्मानित व्यक्ति भी दूसरों के साथ रहते हैं। इसका एक दूसरा कारण यह है कि सामाजिक प्राणी के रूप में अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिये मनुष्य को जिन–जिन चीजों की आव"यकता होती है, उन समस्त आव"यकताओं की पूर्ति वह स्वयं कर पाता है और इसीलिये बाध्य होकर दूसरे के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित करना ही पड़ता है। हम जानते हैं कि जाति प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक जाति का एक नि"चत कार्य या पे"ाा होता है और इस प्रकार जाति कुछ नि"चत सेवाओं को दूसरों को प्रदान कर सकती है जिनको उन सेवाओं की आव"यकता होती है, वे स्वतः ही अपना सम्बन्ध उससे स्थापित कर लेते हैं। इस प्रकार एक जाति का सम्बन्ध दूसरी जाति से स्थापित हो जाता है। इसी प्रकार कुछ सामाजिक नियम भी कुछ जातियों के साथ सामाजिक सम्बन्धों को प्रोत्साहित करते हैं और कुछ के साथ दूरी बनाये रखने को कहते हैं। उदाहरणार्थ जातीय नियम यह है कि एक ब्राह्मण का शूद्र के साथ खाने–पीने का सम्बन्ध स्थापित नहीं हो सकता है, क्योंकि प्रमुख संस्कारों जैसे मुण्डन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार व विवाह संस्कार आदि के समय नाई की सेवा की ब्राह्मण को भी आव"यकता होती है। विभिन्न जातियों के बीच का पारस्परिक सम्बन्ध इसी प्रकार अनेक आधारों पर स्थापित व नियमित होता है।

10.9 अन्तर्जातीय सम्बन्धों के आधार

अन्तर्जातीय सम्बन्ध स्थापित होने के कुछ नि"चत आधार होते हैं जिन्हें कि हम इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं–

(1) अन्तर्जातीय सम्बन्धों का प्रथम आधार सामाजिक आव"यकता है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, प्रत्येक जाति के सदस्यों की कुछ सामाजिक आव"यकतायें होती हैं और उन सभी आव"यकताओं की पूर्ति चूंकि वे स्वयं नहीं कर सकते, अतः उनके लिये यह आव"यक हो जाता है कि वे दूसरी जातियों से अपना सम्बन्ध स्थापित करें।

(2) अन्तर्जातीय सम्बन्धों का दूसरा आधार आर्थिक कार्यों का बंटवारा है। जाति प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक जाति के लिये आर्थिक कार्यों का एक नि"चत क्षेत्र होता है और उस क्षेत्र से सम्बन्धित सेवाओं को प्राप्त करने के लिये अन्य जातियों को उससे सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, जूता सिलाई से सम्बन्धित सेवा प्राप्त करने के लिये अन्य सभी जातियों को चर्मकार से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है।

(3) अन्तर्जातीय सम्बन्धों का एक और आधार अपनी जातीय स्थिति के सम्बन्ध में जागरूकता है। जातीय संरचना में प्रत्येक जाति की एक नि"चत स्थिति होती है और उस स्थिति के सम्बन्ध में वह जागरूक या सचेत रहता है। इसका परिणाम होता है कि प्रत्येक जाति अपनी आव"यकताओं की पूर्ति के लिये दूसरी जातियों से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हुये भी अपनी स्थिति के सम्बन्ध में सजग रहती है। उदाहरणार्थ एक ब्राह्मण इस सम्बन्ध में जागरूक है कि पूजा आदि से सम्बन्धित कार्यों के लिये उसका स्थान सर्वोच्च है और अन्य लोग उस कार्य के लिये उस पर निर्भर हैं। अतः पूजा कार्य के लिये वह दूसरों का निमंत्रण स्वीकार करता है और इस भांति उसका सम्बन्ध अन्य जातियों के साथ स्थापित हो जाता है।

(4) **संस्कारात्मक अन्तःनिर्भरता**–अन्तर्जातीय सम्बन्धों का एक और आधार है। हिन्दू जीवन पथ के अनेक संस्कार हैं और इनका फैलाव जन्म से लेकर मृत्यु तक होता है। इन संस्कारों की विधि तय करने के लिये प्रत्येक जाति को कुछ अन्य जातियों का सहयोग आव"यक होता है। उदाहरणार्थ, मुण्डन या यज्ञोपवीत संस्कार के समय न केवल ब्राह्मण की अपितु नाई की सेवाओं की भी आव"यकता होती है। इसी प्रकार संस्कारात्मक पूजा आदि के समय फूल–माला आदि के लिये माली की सेवायें आव"यक हैं। इस प्रकार से संस्कारात्मक प्रयोजनों की पूर्ति के लिये विभिन्न जातियों को एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। इस रूप में भी अन्तःसम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं।

(5) **मानसिक सुरक्षा**–अन्तर्जातीय सम्बन्ध का एक और उल्लेखनीय आधार मानसिक सुरक्षा है। विभिन्न जातियां एक ही समाज के विभिन्न अंग होती हैं। अतः समाज के अंग के रूप में कोई भी जाति अपने को औरों से पूर्णतः पृथक नहीं रख सकती और न ही ऐसा करना सम्भव है। पारस्परिक सम्बन्ध किसी एक जाति के लिये नही अपितु सभी जातियों के लिये बहुत बड़ा सहारा बन जाता है और कोई भी व्यक्ति अपने को पूर्णतः अलग नहीं कर पाता। इस प्रकार अन्तर्जातीय सम्बन्ध एक सहयोगी आधार को पनपाता है जिस पर सभी को एक मानसिक सुरक्षा का आभास होता है। परन्तु इन अन्तर्जातीय सम्बन्धों का यह तात्पर्य कदापि नहीं है कि सभी जातियां एक सामान्य स्तर पर आ जाती हैं। विभिन्न जातियों में पारस्परिक सम्बन्ध होते हुए भी उनमें ऊँच–नीच का संस्तरण बना ही रहता है। किसी समाज में जब आर्थिक क्रियाओं, धार्मिक कृत्यों आदि के आधार पर विभिन्न जातियों की प्रदत्त स्थितियों का निर्धारण होता है तो विभिन्न जातियों के अन्तर्सम्बन्धों में भी ऊँच–नीच का संस्तरण उत्पन्न होता है।

10.10 अन्तर्जातीय सम्बन्धों का स्वरूप

अन्तर्जातीय सम्बन्धों की अभिव्यक्ति हमें वास्तव में भारतीय ग्रामीण समुदायों में ही देखने को मिलती है। अतः गांव की पृष्ठभूमि में ही हम अन्तर्जातीय सम्बन्धों की विवचेना यहां प्रस्तुत करेंगे। भारतीय ग्रामों में जो अन्तर्जातीय सम्बन्ध देखने को मिलते हैं उनकी अभिव्यक्ति निम्नलिखित रूप में होती है।

(1) **आर्थिक अन्तःनिर्भरता और अन्तर्जातीय सम्बन्ध**–जाति व्यवस्था के अन्तर्गत विभिन्न जातियों में आर्थिक पे"ाों का एक बंटवारा हमें परम्परागत रूप में देखने को मिलता है। एक जाति एक ही प्रकार का निर्"चत पे"ाा करती है, पर उस पे"ो से ही उसकी समस्त आर्थिक आव"यकताओं की पूर्ति नहीं होती। अन्य आर्थिक आव"यकताओं की पूर्ति के लिये उसे अन्य जातियों पर निर्भर रहना पड़ता है। यह आर्थिक अन्तःनिर्भरता अन्तर्जातीय सम्बन्धों को पनपाती और अभिव्यक्त भी करती है। उदाहरणार्थ, कृषि कार्य में लगी जातियों को कृषि के औजार तथा अन्य चीजों के लिये बढ़ई, लोहार, चमार आदि की सेवाओं पर निर्भर रहना पड़ता है, खेतों में काम करने वाले अन्य श्रमिक भी अन्य जातियों के ही सदस्य होते हैं पर इन सबकी सेवा पर कृषि की सफलता निर्भर करती है। अतः इस निर्भरता के आधार पर कृषि कार्य करने वाली जातियों के सम्बन्ध उन बढ़ई, लोहार, चर्मकार तथा कृषि श्रमिकों से स्थापित हो जाते हैं जो कि अपनी सेवाओं को बेचते हैं। दूसरी ओर इन सेवाओं के बदले में उन्हें नकद या वस्तु के रूप में पारिश्रमिक मिलता है उसी से उनका तथा उनके बीबी बच्चों का पालन पोषण सम्भव होता है अर्थात् सेवा बेचने वाली जातियां भी अपनी आर्थिक आव"यकताओं की पूर्ति या जीविकोपार्जन के लिये उन जातियों पर निर्भर व उनसे सम्बन्धित हो जाती हैं जिन्हें कि वे अपनी सेवायें बेचती हैं। इसी प्रकार नाई, धोबी, माली, तेली, मेहतर आदि भी अपनी–अपनी सेवाओं को उन्हें प्रदान करते या बेचते हैं जिन्हें कि उनकी आव"यकता होती है और उसके बदले में नकद धन या वस्तु प्राप्त करता है। जब यही सेवा देने और लेने की प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है तो जजमानी व्यवस्था का विकास होता है। 'जजमान' (सेवा लेने वाला) और 'प्रजा' (बेचने वाला) के मध्य भिन्न जातियों के होते हुये भी एक दूसरे के साथ आर्थिक अन्तःनिर्भरता के आधार पर सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं और यह सम्बन्ध कई पीढ़ियों तक बने रह सकते हैं और रहते भी हैं। जजमानी व्यवस्था अन्तर्जातीय सम्बन्धों की अति उज्जवल अभिव्यक्ति है। यहां इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि जजमानी व्यवस्था विभिन्न जातियों के बीच जो सेवा–सम्बन्ध पनपाती है वह केवल सेवा लेने और देने तक ही सीमित न रहकर जजमान और प्रजा दोनों के परिवारों को एक दूसरे के समस्त सुख–दुख का साथ बना देती है और उनका सम्बन्ध घनिष्ठ, आन्तरिक, सहयोगी तथा कई पीढ़ियों तक बना रहने वाला होता है।

परन्तु इस आर्थिक अन्तःनिर्भरता का अर्थ यही नहीं कि जातीय संरचना में जाति या उपजातियों की स्थिति बदल जाती है। धोबी नाई के कपड़ों को धोता है, पर

धोबी की सामाजिक स्थिति नाई से नीची ही बनी रहती है। ब्राह्मण एक वै"य के यहां पूजा पाठ करके अपनी जीविका का पालन करता है, पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि वै"य जजमान होने के नाते ब्राह्मण प्रजा की स्थिति से ऊँचा उठ जायेगा या ब्राह्मण की स्थिति वै"य से नीचे गिर जायेगी। सेवा के क्षेत्र को छोड़कर अन्य सामाजिक क्रियाओं के क्षेत्र में निम्न जातियों के सदस्य अपने को उच्च जातियों से अलग पाते हैं और वहां सामाजिक सम्बन्धों में परम्परागत दूरी बनी रहती है। जहां एक ओर नगरों में यह परम्परागत दूरी कम हो रही है, वहीं दूसरी ओर जजमानी व्यवस्था से अन्तर्जातीय सम्बन्ध टूटते भी जा रहे हैं।

नगरों में विभिन्न जातियों का एक अच्छा सा जमघट होता है और उनमें से अनेक लोग अपने अपने क्षेत्र में कुछ नि"चित कार्यों को करते हैं और उन कार्यों से लाभ उठाने वालों के साथ स्वभावतः ही उनका सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। गांवों में भी बहुत कुछ इसी भांति की स्थिति छोटे पैमाने पर देखने को मिलती है। छोटे–मोटे डॉक्टर, वैद्य, हकीम और व्यापारी आदि बाहर से आकर गांव में बस जाते हैं। साथ ही पड़ोसी गांव के कुछ वि"ोषज्ञ अपनी सेवाओं को बेचने के लिये गांव में आ बसते हैं। इन दोनों श्रेणियों के व्यक्ति विभिन्न जातियों के होते हैं, और अपनी सेवाओं को प्रदान करने के दौरान उनका सम्बन्ध गांव के लोगों के साथ (जो स्वयं भी अलग अलग जाति के होते हैं) स्थापित हो जाता है। इस प्रकार आर्थिक अन्तःनिर्भरता अन्तर्जातीय सम्बन्धों को न केवल पनपाती है, अपितु उसे मजबूत भी करती है।

(2) **जातीय संस्तरण और अन्तर्जातीय सम्बन्ध**–जातीय संस्तरण अन्तर्जातीय सम्बन्धों की प्रकृति, स्वरूप तथा सीमाओं को निर्धारित करने में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। परम्परागत जातीय संस्तरण में एक ऊँच–नीच का चढ़ाव–उतार है और उसके अनुसार सर्वोच्च स्थिति ब्राह्मण की है और उसके बाद क्रम"ाः क्षत्रिय, वै"य तथा शूद्रों का स्थान है। चढ़ाव–उतार की यह स्थिति विभिन्न जातियों में ऊँच–नीच की भावना को पनपा देती है और यह ऊँच–नीच की भावना विभिन्न जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों को न केवल नि"चित करती है अपितु उन्हें सीमित भी करती है। इसका कारण यह है कि ऊँच–नीच की स्थिति के बारे में प्रत्येक जाति पर्याप्त सचेत है। उसकी वह सचेतना अन्य जाति के साथ सम्बन्ध स्थापित करते समय एक महत्वपूर्ण आधार बन जाती है। यही कारण है कि एक मेहतर या चमार का भी इस उच्च जातीय संरचना में स्थान नीचे है। यह बात ग्रामीण समुदायों में पाये जाने वाले अन्तर्जातीय सम्बन्धों पर वि"ोष रूप से लागू होती है। नगरों की अधिक जनसंख्या होने के कारण कोई किसी को व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता, न ही पहचानता, साथ ही नगरों में विभिन्न जातियों को स्कूल कॉलेज, दफ्तर, मिल, कारखाना आदि में साथ–साथ काम करने और उठने बैठने तथा मिलने–मिलाने के अधिक अवसर मिलते हैं, राजनैतिक व सामाजिक अधिकारों के सम्बन्ध में उनकी अधिक सचेतता तथा ज्ञान–विज्ञान के साथ उनका अधिक निकट सम्बन्ध उन्हें अन्तर्जातीय सम्बन्धों को अधिक घनिष्ठ बनाने तथा परम्परागत प्रतिबन्धों की अवहेलना करने का अधिक मौका देते हैं। इतना ही नहीं अनेक जातियों ने आधुनिक समय में अपनी जातीय

स्थिति को पर्याप्त ऊँचा उठा लिया है और इस प्रकार उनका सम्बन्ध अन्य जातियों के साथ अधिक घनिष्ठ हो गया है। उदाहरणार्थ परम्परात्मक रूप से कायस्थों की स्थिति ब्राह्मण या क्षत्रियों से नीचे ही थी, पर मुसलमान शासक वर्गों के साथ उनका निकट का सम्बन्ध होने के कारण प्र"ाासन सम्बन्धी कार्यों से वे सम्बद्ध रहे और इस प्रकार अपनी स्थिति को ऊंचा उठाने में सफल रहे। फलतः उच्च जातियों के साथ उनका सम्बन्ध निरन्तर बढ़ता ही जा रहा है। इसी प्रकार राजस्थान में क्षत्रियों का सदा से ही प्रभुत्व रहा है जिसके कारण अन्य उच्च जातियों के साथ उनका सम्बन्ध भी निकट बना हुआ है। भारत के लगभग सभी गांवों में सेवा जातियों जैसे लोहार, कुम्हार, धोबी, नाई आदि के जातीय स्तर में कोई खास परिवर्तन नहीं हो पाया है, इस कारण उच्च जातियों के साथ उनका सम्बन्ध केवल उनके द्वारा की जाने वाली वि"ोष्ट सेवाओं के लेन–देन तक ही सीमित है। स्वच्छक का स्तर भी सर्वत्र पहले जैसा ही है और अन्य जातियों के साथ उनका सम्बन्ध वास्तव में बहुत ही सीमित है। नगरों में निम्न जातियों के सदस्य जो पढ़–लिख गये हैं और जो कि विभिन्न प्रतिष्ठानों, दफ्तरों और प्र"ाासनिक क्षेत्रों में कार्य कर रहे हैं, अन्य जातियों के साथ अधिक घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने में सफल हुये हैं।

इस सम्बन्ध में एक और बात को स्पष्ट कर देना आव"यक होगा–एक भारतीय गांव में यदि किसी जाति–वि"ोष की सदस्य संख्या अधिक है तो वहां उस जाति का प्रभुत्व अधिक होता है, चाहे जातीय संस्तरण में उस जाति का स्थान नीचे ही क्यों न हो। जिस गांव में क्षत्रिय या ठाकुरों की संख्या अधिक होगी, वहां उनका प्रभुत्व भी ज्यादा होगा और उच्च जातियों तक के साथ उनका सम्बन्ध भी उसी प्रभुत्व को अभिव्यक्त करता है। उसी प्रकार जाटव लोगों का, अधिक संख्या में होने के कारण, जहां प्रभुत्व है वहां अन्य जातियों के साथ उनका सम्बन्ध रोबदाब का ही होता है, चाहे अन्य जातियां जाटवों से नीची हों या ऊँची । ऐसी स्थिति में उनके उपर उच्च जातियों द्वारा लादे गये प्रतिबन्धों के उत्तर में घोर विरोध होता है, संघर्ष होता है, लाठियां चलती हैं और सिर फूटते हैं। संक्षेप में, ऐसी परिस्थितियों में अन्तर्जातीय सम्बन्ध तनावपूर्ण, यहां तक कि संघर्षपूर्ण भी हो सकते हैं।

(3) **धार्मिक कृत्यों के द्वारा स्थापित अन्तर्जातीय सम्बन्ध**–धार्मिक कृत्यों (संस्कारों एवं त्यौहारों) के माध्यम से अन्तर्जातीय सम्बन्धों की स्थापना होती है। जन्म से लेकर मृत्यु तक एक हिन्दू को अनेक प्रकार के संस्कारों को करना होता है और उन संस्कारों को विधिवत करने के लिये अन्य कुछ वि"ोष्ट जातियों की सेवा ग्रहण करनी ही पड़ती है। इन सेवाओं को लेने और देने के दौरान विभिन्न जातियों में पारस्परिक सम्बन्ध पनप जाता है। उदाहरणार्थ, जन्म संस्कार को ही लीजिए। ग्रामों में नाइन दाई का भी काम कर सकती है। नाई का काम घर–घर जाकर नवजात ि"ा"ाु के जन्म की सूचना देना होता है। जच्चा–बच्चा को तेल मालि"ा करना, उबटन लगाना, नहलाना आदि नाइन का काम है। 'ढोली' लोग नाचते–गाते हैं, जबकि धोबी का कार्य प्रसव–वस्त्रों को धोना है। ब्राह्मण का कार्य बच्चे की जन्म कुण्डली बनाना, पूजन–हवन आदि करना है। इन सेवाओं के बदले इन सभी लोगों को नकद या वस्तु के रूप में भी कुछ मिलता है। इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है

कि इन सब सेवाओं के माध्यम से विभिन्न जातियों के बीच आपसी सम्बन्ध पनप जाते हैं।

इसी प्रकार विवाह संस्कार के माध्यम से भी विभिन्न जातियों के बीच सम्बन्ध स्थापित हो जाते हैं। कुम्हार का कार्य मिट्टी के बर्तनों को बनाकर बेचना और अपने चाक को उस अवसर पर पूजने देना होता है। नाई का काम निमंत्रण देना, घर के साथ व्यक्तिगत–सेवक के रूप में हर मौके पर उपस्थित रहना, पण्डित जी की सहायता करना, थाल–पकवानों को सजाना इत्यादि है। जिस प्रकार नाई वर के साथ रहता है, उसी प्रकार नाइन कन्या व वधू के साथ रहती है। ढोली और उसकी पत्नी नाचते गाते हैं। उसी प्रकार कहार, धीमर, माली आदि भी अपनी–अपनी सेवायें प्रदान करते हैं। पंडित जी का स्थान सर्वोच्च होता है, क्योंकि वे ही विवाह संस्कार के सर्वप्रमुख अंग से सम्बन्धित कार्यों को करते हैं। विवाह करवाना उन्हीं का काम है। इसी प्रकार अन्य संस्कारों के अवसर पर भी नाई, माली, कुम्हार, पण्डित जी आदि अपनी–अपनी जो सेवायें प्रदान करते हैं उनके कारण अन्तर्जातीय सम्बन्ध पनपते हैं।

पर्वों तथा त्योहारों के सम्बन्ध में भी यही बात कही जा सकती है। होली त्योहार में ऊंची व नीची सभी जातियों के लोग भाग लेते हैं। होली का दहन पुरोहित के द्वारा होता है। माली पूजा हेतु फूल–मालायें लाता है। दीपावली पर कुम्हार मिट्टी के खिलौने, दीपक आदि बनाता है।

अतः स्पष्ट है कि संस्कार, त्यौहार आदि के अवसर पर प्रत्येक जाति या उपजाति का एक वि"ाष्ट सेवा के आधार पर, अपना एक अलग महत्व होता है और उस महत्व को सभी को स्वीकार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ, नाई का काम माली से नहीं लिया जा सकता, माली का काम नाई नहीं कर सकता एवं ढोली लोग पुरोहित का स्थान कदापि ग्रहण नहीं कर सकते। प्रत्येक का अपने–अपने क्षेत्र में इसीलिये अलग–अलग महत्व है और उसी के कारण उनका सम्बन्ध विभिन्न जातियों के साथ स्थापित हो जाता है।

(4) **जातिवाद और अन्तर्जातीय सम्बन्ध**–सामाजिक सम्बन्ध केवल सहयोगपूर्ण ही नहीं तनावपूर्ण भी हो सकता है। जातिवाद उसी तनावपूर्ण अन्तर्जातीय सम्बन्धों को अभिव्यक्त करता है। जातिवाद वह संकुचित मनोभाव है, जो कि एक जाति के सदस्यों को केवल अपनी ही जाति की भलाई की चिन्ता करने को प्रेरित करता है, चाहे उससे दूसरी जातियों को नुकसान भले ही हो। इस प्रकार जातिवाद से प्रेरित होकर एक जाति दूसरी जाति को पछाड़ देने का निरन्तर प्रयत्न करती है और इस प्रकार दूसरों के साथ प्रतियोगितामूलक सम्बन्ध पनपा लेती है। यह खुला संघर्ष तो नहीं होता, पर अप्रत्यक्ष तौर पर विभिन्न जातियों के बीच जो सम्बन्ध पनप जाता है वह सहयोगी जीवन के लिये घातक सिद्ध होता है।

(5) **अन्तर्जातीय संघर्श एवं प्रभुत्व के संदर्भ में अन्तर्जातीय सम्बन्ध**–एम0 एन0 श्रीनिवास के अध्ययन से यह पता चलता है कि अन्तर्जातीय संघर्ष व प्रभुत्व भी विभिन्न जातियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों की एक वि"ाष्ट अभिव्यक्ति है। अन्तर्जातीय संघर्ष व प्रभुत्व चार आधारों पर पनप सकता है–

(अ) **संख्या भाक्ति** अन्तर्जातीय संघर्ष और प्रभुत्व का प्रथम आधार है, जिस समुदाय में जिस जाति के लोग अधिक संख्या में हैं, वहां वह दूसरी जाति पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने का प्रयत्न करती है। कहीं–कहीं तो प्रत्यक्ष व परोक्ष तौर पर अल्पसंख्यक जातियों को नाना प्रकार के अत्याचारों का ि"ाकार बनना पड़ता है। हो सकता है इसका विरोध अल्पसंख्यक जातियों के द्वारा किया जाये, इसका परिणाम खुला संघर्ष होता है। एस० सी० दुबे के अनुसार ये सब स्थिति उसी अवस्था में संभव है, जबकि संख्या शक्ति सम्पन्न जाति में एकता हो।

(ब) **आर्थिक व राजनैतिक भाक्ति** भी अन्तर्जातीय संघर्ष को पनपा सकती है। जिस जाति के लोगों के हाथों में आर्थिक–राजनैतिक शक्ति होती है वे दूसरी जातियों पर प्रभुत्व स्थापित करना चाहते हैं, आर्थिक व राजनैतिक तौर पर उनका शोषण करते हैं एवं उन्हें डरा धमका कर चुनाव के समय में उनसे वोट लेते हैं। इसमें भी कभी–कभी संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है और विरोधी जातियों के बीच खूब डटकर लाठी व बन्दूक चलती है। पर यदि प्रभुता सम्पन्न जाति में स्वयं ही फूट व दलबन्दी है तो वह स्वतः ही निर्बल हो जाती है और अन्य जातियों पर उसका नियंत्रण ढीला पड़ जाता है।

(स) **धार्मिक कृत्यों या जन्म के आधार पर उच्च सामाजिक स्थिति** भी अन्तर्जातीय सम्बन्धों को संघर्षपूर्ण बना सकती है उदाहरणार्थ, धर्म व संस्कारों के क्षेत्र में ब्राह्मणों की स्थिति सर्वोच्च है। उस सर्वोच्च स्थिति का दुरूपयोग ब्राह्मण जाति के सदस्य कर सकते हैं और निम्न जाति के प्रति उनका व्यवहार बहुत खराब हो सकता है। निम्न जातियों के द्वारा इस प्रकार के दुर्व्यवहार के विरोध में आवाज उठायी जा सकती है और उस स्थिति में संघर्ष खड़ा हो सकता है।

(द) **पा"चात्य ि"ाक्षा** प्राप्त करने की सुविधा एक जाति के सदस्यों को वि"ोष रूप से प्राप्त हो सकती है और उस ि"ाक्षा को प्राप्त कर लेने के फलस्वरूप व्यवसाय के कुछ क्षेत्रों में उनका एकाधिकार हो सकता है। इससे अन्य जातियों के सदस्यों के मन में असंतोष की भावना पनप सकती है जो कि अन्त तक संघर्ष का रूप धारण कर ले। साथ ही ि"ाक्षा ि"ाक्षित और अि"ाक्षित जातियों के बीच एक खाई की सृष्टि कर सकती है, जो कि किसी भी समय उग्र रूप धारण कर सकती है।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि आधुनिक भारत में नगरों तथा उद्योग धन्धों का विकास, ि"ाक्षा का विस्तार, अन्तर्जातीय विवाह, राजनैतिक चेतना की उत्तरोत्तर जागृति आदि कारकों ने अन्तर्जातीय सम्बन्धों को एक नवीन रूप दिया है और वह नवीन रूप प्रजातांत्रिक समानता के सिद्धान्तों पर आधारित है। जहां एक ओर ऊँच–नीच की खाई पटती जा रही है, वहीं सेवाओं के आधार पर अन्तःसम्बन्ध और अधिक दूर का एवं यांत्रिक होता जा रहा है। यह अच्छा है या बुरा यह प्र"न दूसरा है, पर इस प्रक्रिया को रोका नहीं जा सकता।

10.11 बोध प्र"न–02

---

1. भारतीय ग्रामों में अन्तर्जातीय सम्बन्धों के आधार स्पष्ट कीजिए।

2. अन्तर्जातीय सम्बन्धों के स्वरूप बताइये।

_____

_____

10.12 जजमानी व्यवस्था

जाति प्रथा में अन्तर्निहित श्रम–विभाजन या पे"ाों के विभाजन का सिद्धान्त जजमानी व्यवस्था की उत्पत्ति का आधार है। जाति–प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक जाति किसी वि"ोष्ट पे"ो को अपना परम्परागत पे"ा मानती है। इन पे"ाों से सम्बन्धित सेवाओं के द्वारा ही एक जाति का सम्पर्क दूसरी जाति से स्थापित हो जाता है, क्योंकि ग्रामीण समुदाय में प्रत्येक जाति अन्य सभी जातियों के लिये कुछ न कुछ सेवायें करती है और उन सेवाओं के बदले में उसे परम्रागत तरीकों से पारितोषिक मिल जाता है। इस प्रकार विभिन्न जातियों के पारस्परिक प्रकार्यात्मक सम्बन्धों की एक अभिव्यक्ति जजमानी व्यवस्था है।

_____

10.13 जजमानी व्यवस्था का अर्थ व परिभाषाऐं

जाति प्रथा के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति हर तरह के कार्यों को नहीं कर सकता है। उसका तो अपना एक नि"चत पे"ा होता है, अतः उसे अपनी अन्य आव"यकताओं की पूर्ति के लिए दूसरों से सेवायें प्राप्त करनी होती हैं। इस प्रकार सेवा प्राप्त करने से सेवा लेने और सेवा देने वाले व्यक्तियों के बीच जो प्रकार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है और वे परस्पर जिस ढंग से एक सूत्र में बंध जाते हैं उसे जजमानी व्यवस्था कहते हैं। इस व्यवस्था के अन्तर्गत जो सेवा प्रदान करता है वह प्रजा कहलाता है और यह प्रजा जिसको अपनी सेवायें प्रदान करती है वह उसक प्रजा का जजमान कहलाता है। दूसरे शब्दों में इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक जाति के सदस्य के कुछ अपने जजमान होते हैं जिन्हें कि वह एक वि"ोष्ट सेवा प्रदान करता है, जैसे ब्राह्मण पुरोहितों का काम करता है, धोबी कपड़े धोता है या नाई बाल बनाता है। इन ब्राह्मण, धोबी या नाई के कुछ परिवार बंधे होते हैं जिन परिवारों को वे अपनी–अपनी सेवायें आज से नहीं पु"तों से प्रदान करते आ रहे हैं। जजमानी व्यवस्था में इन परिवारों को (अर्थात अपने जजमानों को) अपनी सेवायें प्रदान करने का 'प्रजा' को एक पु"तैनी अधिकार मिल जाता है और प्रत्येक व्यक्ति इस वि"ोष व्यक्ति से ही पुरोहित, नाई या धोबी की सेवायें ग्रहण करता है क्योंकि बहुत दिनों से ऐसा ही होता आ रहा है। इन पुरोहित, धोबी या नाई से पहले इनके पिता इन्हीं परिवारों के लिये कार्य करते थे और उनके मरने के बाद उनका लड़का उन्हीं के लिये काम करता रहेगा। सेवायें प्रत्यक्ष और पारिवारिक स्तर पर होती थीं, इसलिये कोई व्यक्ति अन्य व्यक्तियों से किसी प्रकार भी नाता नहीं तोड़ सकता था। इसका कारण यह है कि एक व्यक्ति या परिवार विवाह, भोजन, सुरक्षा व संस्कार आदि विषयों के लिये अपनी जाति पर निर्भर रहता है पर अधिकतर दैनिक व आर्थिक

कार्यों व सेवाओं के लिये उसे अन्य जातियों पर या अपनी प्रजाओं पर निर्भर रहना पड़ता है। इस प्रकार जजमानी व्यवस्था हिन्दू समाज की सभी जातियों को एक सूत्र में बांधने की एक व्यवस्था बन जाती है। अतः स्पष्ट है कि विभिन्न जाति के सदस्यों से सेवा ग्रहण करने वाला परिवार या उसका कर्ता सेवा करने वाले का अर्थात 'प्रजा' का जिसे गांव वाले 'परजा' या 'परजन' कहते हैं जजमान कहलाता है और विभिन्न जातियों के सदस्यों के बीच इस सेवा प्रदान करने और ग्रहण करने की प्रथा से उत्पन्न सम्बन्ध प्रतिमान को जजमानी व्यवस्था कहते हैं। जजमान इस प्रकार की सेवाओं के लिये प्रजा को अनाज और कभी–कभी कुछ नकद देता है। सेवा करने वालों को त्यौहार, विवाह आदि के अवसर पर वि"ोष भेंट, कपड़ा, रूपया आदि भी मिलता रहता है और इन पर प्रजा का एक तरह का अधिकार सा होता है और इसलिये न मिलने पर ''मीठा झगड़ा'' भी होता है। जजमान अपनी प्रजा के हितों का ख्याल रखता है और उस पर कोई वि"ोष विपदा आ पड़ने पर या प्रजा की लड़की की शादी ब्याह आदि के अवसर पर उसकी सहायता करता है। उसी प्रकार प्रजा भी अपने जजमान के सुख–दुःख में सम्मिलित होने को सदा तत्पर रहती है। इस प्रकार जजमानी व्यवस्था को विभिन्न जातियों के सदस्यों में पाये जाने वाले प्रकार्यात्मक सम्बन्धों तथा पारस्परिक कर्तव्य–बोध की एक प्रणाली कह कर परिभाषित किया जा सकता है। निम्नलिखित विवेचना से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी–

जजमानी व्यवस्था को परिभाषित करते हुये आस्कर लेविस ने लिखा है, 'इस व्यवस्था के अन्तर्गत एक गांव के प्रत्येक समूह से यह आ"ाा की जाती है कि वह दूसरी जातियों के परिवारों को कुछ नि"चित सेवायें प्रदान करें।'

के0 एल0 शर्मा के अनुसार जजमानी व्यवस्था विभिन्न जातियों के सदस्यों के पारस्परिक उदग्र सम्बन्धों का द्योतक है जिसके अन्तर्गत प्रत्येक जाति ग्रामीण समुदाय में रहने वाली सब जातियों के लिये कुछ न कुछ सेवायें प्रदान करती है और उनके बदले में परम्परात्मक तरीकों से उन्हें पारितोषिक मिल जाता है। इस प्रकार जजमानी व्यवस्था हिन्दू समाज की सब जातियों को एक सूत्र में बांधे रखने की एक प्रणाली है।

जजमान शब्द संस्कृत के 'यजमान' से लिया गया है। यजमान का अर्थ यज्ञ करने वाले से था। क्रम"ाः यह शब्द उन सभी के लिये प्रयोग किया जाने लगा जो कि सेवा के रूप में किसी से कोई भी काम कराते थे। इस सेवा प्रदान करने और सेवा ग्रहण करने के आधार पर जो सम्बन्ध व्यवस्था विभिन्न जातियों के सदस्यों के बीच पनपती है और पु"तैनी तौर पर पीढ़ी–दर–पीढ़ी कायम रहती है, उसे जजमानी व्यवस्था कहते हैं।

10.14 जजमानी व्यवस्था की वि"ोषतायें

सामाजिक जीवन में विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच अनेक प्रकार के सम्बन्ध पाये जाते हैं। जजमानी व्यवस्था भी एक वि"िाष्ट प्रकार के सम्बन्ध प्रतिमान की द्योतक

है। यह वि"ोष्ट इस अर्थ में है कि इसकी अपनी कुछ वि"ोषतायें हैं जो इस प्रकार हैं–

(1) **उदग्र सम्बन्ध व्यवस्था**–जो सम्बन्ध एक ही जाति के विभिन्न व्यक्तियों के बीच पाया जाता है उसे क्षैतिज सम्बन्ध (Horizontal relation) कहते हैं पर ऊँची और नीची जाति के पारस्परिक सम्बन्धों को उदग्र सम्बन्ध (Vertical relation) माना जाता है। जजमानी व्यवस्था में जजमान तथा परजन के बीच उदग्र सम्बन्ध पाया जाता है क्योंकि इसके अन्तर्गत एक जाति के सदस्य दूसरी जाति के सदस्यों को अपनी सेवायें प्रदान करते हैं और उन्हीं सेवाओं के आधार पर सब जातियां एक सूत्र में बंध जाती हैं। उदहरणार्थ, जिस प्रकार मेहतर का जजमान ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वै"य हो सकता है उसी प्रकार ब्राह्मण, नाई, धोबी आदि के भी जजमान अलग अलग जाति के लोग हो सकते हैं। अतः स्पष्ट है कि जजमानी व्यवस्था उदग्र सम्बन्ध का सूचक है।

(2) **बहुत कुछ स्थायी सम्बन्ध**–प्रजा और जजमान के बीच का सम्बन्ध बहुत ही स्थायी होता है। के० एल० शर्मा ने लिखा है कि जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत सेवायें चूंकि प्रत्यक्ष और पारिवारिक स्तर पर होती हैं इस कारण कोई भी व्यक्ति अन्य जातियों से किसी प्रकार भी नाता नहीं तोड़ सकता है। यह इसलिये कि अधिकतर दैनिक व आर्थिक आव"यकताओं की पूर्ति के लिये इस प्रकार के सम्बन्धों को बनाये रखना बहुत जरूरी है। इसीलिये कोई भी जजमान अपनी प्रजाओं से सम्बन्ध तब तक नहीं तोड़ सकता जब तक वह कोई ऐसा काम या अपराध न करे तो क्षमायोग्य ही न हो। उसी प्रकार प्रजा भी अपने जजमान के साधारणतया छोड़ना नहीं चाहती है। यहां तक कि यदि किसी प्रजा को गांव छोड़कर चला जाना ही पड़ता है तो वह अपनी जगह अपने ही परिवार या नाते रि"तेदार को सेवा प्रदान करने के लिये नियुक्त करके जाता है जिससे कि जजमान के साथ उसके सम्बन्ध की निरन्तरता बनी रहे। कभी कभी अपने जजमानी अधिकार को प्रजा बेच भी देती है। इन्द्र दत्त सिंह के अध्ययन से पता चलता है कि एक भंगी अपने जजमानी अधिकारों को 200 रूपयों तक में बेच सकता है पर साधारणतया ऐसा नहीं होता है क्योंकि जजमानी अधिकारों को छोड़ना, हजारी के अनुसार जन्मसिद्ध अधिकारों को छोड़ने के समान है। इसका कारण यह है कि इससे केवल आर्थिक हानि ही नहीं होती बल्कि सामाजिक मर्यादा और स्थिति को भी धक्का लगता है। इसीलिये कभी–कभी तो प्रजा को जजमान न त्यागने के सम्बन्ध में उसकी बिरादरी तक उस पर दबाव डालती है। इसी तरह जजमान पर भी प्रत्यक्ष रूप से या अप्रत्यक्ष रूप से दबाव डाला जाता है कि वह अपनी प्रजा को काम से अलग न करे। यदि एक जजमान एक प्रजा को काम से अलग कर देता है तो कोई भी दूसरी प्रजा उस जजमान का काम नहीं करेगी। यदि कोई काम करने को राजी भी होता है तो जाति पंचायत उसे ऐसा करने नहीं देती है। एस० सी० दुबे ने इसी परिस्थिति का उल्लेख करते हुये लिखा है कि एक किसान के लिये यह संभव नहीं है कि वह अपने परिवार को सेवा प्रदान करने वाले एक परिवार को हटा सके और उसके स्थान पर किसी दूसरे परिवार की सेवाओं को ग्रहण कर सके। उदाहरणार्थ 'अ' नामक एक

नाई 'ब' नामक कृषक के परिवार से सम्बन्धित है। यदि किसी कारण 'ब' 'अ' की सेवाओं से असंतुष्ट हो जाये और उसके स्थान पर किसी अन्य व्यक्ति से सेवा कराना चाहे तब भी वह 'अ' को किसी प्रकार काम से अलग नहीं कर सकता। 'ब' के लिये 'अ' को काम से अलग करना कोई मुि"कल नहीं, मुि"कल तो है उसके स्थान पर किसी अन्य से सेवा ग्रहण करना। सेवा करने वाले इस प्रकार के प्रत्येक जाति की एक पंचायत होती है और अपनी उस जाति पंचायत द्वारा दण्ड मिलने के भय से कोई भी अन्य व्यक्ति उसके स्थान पर काम करना नहीं चाहेगा। यह स्थिति भी जजमानी सम्बन्धों को बहुत कुछ स्थाई बना देती है।

(3) **पीढी दर पीढ़ी एक परम्परागत व्यवस्था**–जजमानी व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें कि सेवा लेने और सेवा देने की प्रक्रिया पीढ़ी दर पीढ़ी चलती रहती है। जिस परिवार को आज एक धोबी अपनी सेवायें प्रदान कर रहा है, उसमें धोबी का काम उसके पिता भी करते थे और आगे उसकी मृत्यु के प"चात उसका लड़का उस परिवार को धोबी की सेवा प्रदान करता रहेगा। इस प्रकार जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत सेवा प्रदान करने का अधिकार पिता से पुत्र को हस्तान्तरित होता रहता है। **ऑस्कर लेक्सि** ने लिखा है, कुछ भी हो, जजमानी अधिकार को जो एक व्यक्ति को कुछ परिवारों से सम्बन्धित कर देता है, इस प्रकार की सम्पत्ति के रूप में माना जा सकता है जो पिता से पुत्र को मिलती रहती है।

रेड्डी ने भी लिखा है कि 'जजमतानी कार्य का अधिकारी किसी भी अन्य प्रकार की सम्पत्ति के समान हो जाता है। वह पिता से पुत्र को मिलता है और भाई–भाई के अलग हो जाने पर वह अधिकार भाइयों में बराबर बांट दिया जाता है। परिवार में केवल एक पुत्री ही होती है तो उसमें उस लड़की के पिता को उसके (लड़की के) पिता के अधिकार मिल जाते हैं।' स्मरण रहे कि ये जजमानी अधिकार एक ही जाति के सभी परिवारों को एक समान प्राप्त नहीं होते हैं। उदाहरणार्थ, एक नाई के पास पांच जजमान परिवार हो सकते हैं जबकि दूसरा एक नाई 25 परिवारों को अपनी सेवा प्रदान कर सकता है। परन्तु यदि एक परिवार के सब भाई अलग अलग हो जाते हैं तो उन भाइयों में जजमान परिवार बंट जाने से प्रत्येक भाई के हिस्से में जजमानी काम कम होता जाता है, यदि जजमान का परिवार भी उसी गति से बंटता और बिखरता जाये।

(4) **इनाम देने की एक परम्परागत व्यवस्था**–सेवाओं के बदले में प्रजाओं को इनाम देने का एक परम्परागत तरीका जजमानी व्यवस्था में होता है। जजमानी व्यवस्था में नकद मजदूरी देने का रिवाज नहीं होता और न जजमान व प्रजा के बीच पूंजीवादी अर्थ व्यवस्था में पाये जाने वाला मालिक और कर्मचारी जैसा सम्बन्ध होता है। जजमान व प्रजा अपने को मालिक व कर्मचारी से कहीं अधिक निकट सम्बन्ध के कारण व हर दुःख सुख के अवसर पर उस सुख या दुःख को बांटकर निभाने का प्रयत्न करते हैं। जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत पारितोषण नकद में नहीं अपितु किस्म में दिया जाता है। प्रजा को अनाज आदि खाने–पीने की चीजें उसकी सेवाओं के बदले में मिलती रहती हैं। साथ ही समय समय पर वि शेषकर तीज त्यौहारों में या शादी, जनेऊ, मुण्डन आदि के अवसरों पर कपड़े और

कुछ नकद बख्शी"ा या 'निछावर' आदि मिलते रहते हैं। प्रजा की लड़की की शादी, किसी सदस्य की मृत्यु, दुर्घटना आदि के अवसर पर भी जजमान हर तरह से उसे मदद करने का प्रत्यन्त करता है। जजमान अपनी प्रजा के रहने की व्यवस्था भी कर सकता है और कभी–कभी काम करने के औजार और कच्चा माल भी देता है। लेविस के अनुसार रामपुर जिले के गांवों में जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत अलग–अलग प्रकार की प्रजाओं को उनकी सेवाओं के बदले में भिन्न–भिन्न मात्रा में अनाज तथा चीजें दी जाती रही हैं, जैसा कि निम्नांकित तालिका से स्पष्ट होगा–

प्रजा	सेवा का रूप	सेवा के बदले मिले हुये अधिकार
1. खटिक (बढ़ई)	कृषि के औजारों की मरम्मत	साल में एक मन अनाज और बुवाई के मौसम पर ढाई सेर अनाज।
2. लोहार	कृषि के औजारों की मरम्मत	उपरोक्त
3. कुम्हार	मिट्टी के बर्तन देना और विवाह आदि में हल्के काम करना।	बर्तनों के मूल्य के बराबर अनाज पुत्र–पुत्री के विवाह के अवसर पर स्थिति और सामर्थ्य के अनुसार अनाज
4. हज्जाम या नाई	बाल बनाना, दाड़ी बनाना और विवाह आदि पर परम्परागत सेवायें करना	हर कटाई पर जितना भी अनाज वह स्वयं उठा सकता है उतना अनाज। विवाह आदि के अवसर पर अतिरिक्त अनाज।
5. स्वच्छक	उपले बनाना, कूड़ा हटाना।	दिन में दो बार खाना। हर एक कटाई पर जितना भी अनाज वह स्वयं ले जा सकता है, उतना अनाज और विवाह आदि के अवसर पर अतिरिक्त अनाज।
6. चर्मकार	खेती के काम में सहायता, बेगार या मरे जानवरों को हटाना	उपज का कुछ भाग और मरे जानवरों की खालें।

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट है कि जजमानी कार्य के बदले अनाज आदि का ही प्रचलन है और यह अनाज आदि प्रजा के लिये गुजर बसर के लिये पर्याप्त होता है। इसीलिये रूपये–पैसों की अपेक्षा सेवाओं के बदले में अनाज लेना ही वे अधिक पसन्द करते हैं।

(5) **प्रजाओं का विभिन्न कार्य क्षेत्र**–जजमानी व्यवस्था में सभी प्रजाओं का कार्य क्षेत्र एक सा नहीं होता अपितु उनकी सेवाओं की प्रकृति के अनुसार यह क्षेत्र कम या अधिक विस्तृत होता है। उदाहरणार्थ, जजमान को अधिक से अधिक सप्ताह

में एक या दो बार नाई की जरूरत पड़ती है। इसलिये एक नाई एक से अधिक गांव का काम भी कर सकता है। उसी तरह एक बनिया अपने गांव में दस–बीस मील तक के क्षेत्र में लेन–देन का काम करता है। एक प्रजा का कार्य–क्षेत्र कितना होगा यह स्थानीय परिस्थितियों, प्रजा की कु"ालता तथा उसके द्वारा की जाने वाली सेवा के महत्व व मांग पर निर्भर करता है।

10.15 जजमानी व्यवस्था के लाभ

जजमानी व्यवस्था भारतीय ग्रामीण समुदाय की एक उल्लेखनीय प्रथा है जो कि सम्पूर्ण भारत में देखने को मिलती है, यद्यपि इस व्यवस्था में स्थानीय अन्तर अव"य ही देखने को मिलते हैं। अखिल भारतीय स्तर पर यह प्रथा इसी कारण प्रचलित है क्योंकि इसके अपने कुछ लाभ हैं–

(1) **आर्थिक सुरक्षा**–जजमानी व्यवस्था से प्रमुख लाभ यह है कि इसमें प्रत्येक जाति की आर्थिक सुरक्षा है। वह अपनी सेवाओं को अपने जजमानों को प्रदान करता है और उसके बदले में उसे इतना अनाज व कपड़ा आदि मिल जाता है कि वह अपनी तथा बाल बच्चों का भरण–पोषण सरलता से कर सकता है। उसे बेरोजगारी की स्थिति का सामना शायद ही करना पड़ता है क्योंकि जजमानों के परिवारों को सेवायें प्रदान करने का उसे एक पु"तैनी अधिकार प्राप्त हो जाता है और यह अधिकार अन्य सम्पत्ति की भांति पिता से पुत्र को हस्तान्तरित होता रहता है। एक गरीब प्रजा भी मरते समय शांति से मरती है क्योंकि वह जानती है कि वह अपने बाल बच्चों के लिये कोई धन–सम्पत्ति न सही, फिर भी उसी के समान जजमानी को छोड़े जा रहा है और ये जजमान उसके बाल–बच्चों का उतना ही ध्यान रखेंगे जितना कि वह स्वयं उसका करते थे। आर्थिक दृष्टिकोण से यह कितनी बड़ी सुरक्षा है शायद यह बतलाने की आव"यकता नहीं है।

(2) **सामाजिक बीमा**–जजमानी व्यवस्था एक प्रकार का सामाजिक बीमा भी है, क्योंकि इसके अन्तर्गत बीमारी, दुर्घटना, जन्म, मृत्यु और विवाह आदि के अवसरों पर प्रजा को अपने जजमानों से आव"यक सहयोग और सहायता मिलती रहती है। अनेक परिवारों में इस प्रकार के परम्परागत नियम होते हैं कि जजमान के रूप में वह परिवार अपने प्रजा की लड़की के विवाह के अवसर पर कितनी और किस रूप में मदद करेगा। परिवार के सदस्य इस अलिखित परम्परागत पारिवारिक नियम का नियमपूर्वक पालन करने में संकोच नहीं करते। उसी प्रकार अन्य आव"यकता पड़ने पर जजमान प्रजा के लिये एक बहुत बड़ा भरोसा होता है। दूसरी ओर प्रजा भी अपने जजमान के लिये मर–मिटने को सदा तैयार रहती है।

(3) **न्यूनतम व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा**–जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की सम्भावनायें बहुत ही कम होती हैं क्योंकि प्रत्येक जजमान नि"चित रूप से बंटे होते हैं और जजमानी अधिकार नि"चित तौर पर ही पिता से पुत्र को मिल जाता है। प्रत्येक जाति की एक जाति पंचायत होती है और वह जजमानों के बंटवारों को नियंत्रित करती रहती है। यदि एक जजमान किसी प्रजा

को काम से हटाकर दूसरे किसी को उसके स्थान पर रखना चाहता है तो वह ऐसा इसलिये नहीं कर पाता है क्योंकि पंचायत के डर से अन्य कोई व्यक्ति उस निकाले हुये प्रजा के स्थान पर काम करने को राजी न होगा। अतः किसी भी प्रजा को यह डर नहीं होता कि उसकी रोजी को उसकी ही जाति का अन्य सदस्य जजमान से कह सुनकर उससे छीन लेगा। अतः प्रतिस्पर्धा वि"ोषकर अनुचित प्रतिस्पर्धा की सम्भावना न के बराबर होती है। इसलिये जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत व्यवसाय की सुरक्षा होती है और किसी भी प्रजा को बेरोजगार हो जाने का डर नहीं होता।

(4) **पारस्परिक उत्तरदायित्पूर्ण व्यवस्था**—जजमानी व्यवस्था जातीय तनाव तथा जातिवाद के विकास पर रोक लगाती है और विभिन्न ऊँची—नीची जातियों में पारस्परिक उत्तरदायित्वपूर्ण सम्बन्धों को पनपाती है। जजमानी व्यवस्था सेवा ग्रहण करने और प्रदान करने की प्रक्रिया को इस प्रकार चालू रखती है कि सभी जातियां एक प्रकार्यात्मक सूत्र में बंध जाती हैं और उनमें से प्रत्येक को अपनी—अपनी दैनिक व आर्थिक आव"यकताओं की पूर्ति के लिये एक दूसरे पर निर्भर रहना पड़ता है। जजमान यदि प्रजा से काम लेता है तो उसके पेट का भी ख्याल रखता है और उसके बदले में प्रजा भी जजमान के समस्त सुख—दुःख को बांट लेने के लिये सदा तैयार रहती है। यदि जजमान प्रजा के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझता है तो प्रजा भी जजमान के प्रति अपने उत्तरदायित्व को निष्ठापूर्वक निभाने में किसी से पीछे नहीं रहती है। इस प्रकार पारस्परिक उत्तरदायित्व जजमानी व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण आधार बन जाता है।

(5) **शान्ति और सन्तोश**—वाइजर ने लिखा है कि जजमानी व्यवस्था एक ऐसी व्यवस्था है जो कि गांव वालों को शान्ति और संतोष प्रदान करती है। यह व्यवस्था एक ओर आर्थिक सुरक्षा तथा न्यूनतम व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा की सम्भावना को उत्पन्न करके तनावपूर्ण स्थितियों को दूर हटाती है और दूसरी ओर जजमान प्रजा के बीच व्यक्तिगत या पारिवारिक प्रगाढ़ सम्बन्धों को अपनाकर उनके लिये शान्ति व सन्तोष का साम्राज्य बनाती है। जजमानी व्यवस्था के अन्तर्गत प्रजा के बच्चों को नौकरी की चिन्ता नहीं होती है, बड़े होने पर उनका काम पहले से ही नि"चित होता है। उसी प्रकार जजमान को भी विभिन्न प्रकार की सेवाओं के लिये नित्य नये प्रयोग करने की आव"यकता नहीं होती है। पीढ़ी दर पीढ़ी आव"यक सेवायें उसके परिवार के सदस्यों को मिलती रहती हैं। इस प्रकार जजमानी व्यवस्था दोनों ही पक्षों के लिये शान्ति व सन्तोष का एक स्रोत बन जाती है।

10.16 जजमानी व्यवस्था की हानियाँ

यह सच है कि जजमानी व्यवस्था के कई गुण हैं, पर यह भी झूठ नहीं है कि इस व्यवस्था की हानियां भी उल्लेखनीय हैं। निम्नलिखित विवेचना से यह बात और भी स्पष्ट हो जायेगी—

(1) **आर्थिक शोषण**—जजमानी व्यवस्था का सबसे उल्लेखनीय दोष यह है कि इस व्यवस्था के कारण जजमान को अपनी प्रजाओं का आर्थिक शोषण करने का

खूब अवसर मिल जाता है। जजमान यह जानते हैं कि प्रजा अपने परिवार के साथ उन पर निर्भर है और सेवा प्रदान करने के अलावा जीवन–निर्वाह का और कोई रास्ता उसके लिये खुला नहीं है। वे इस असहायपन का खूब फायदा उठाते हैं। प्रजा को अपने जजमान को खु"ा रखने के लिये समय–बेसमय खूब काम करना पड़ता है और उसके बदले में जो कुछ मिलता है उससे उनका और उनके बीबी बच्चों का पेट भी नहीं भरता है। लेविस ने लिखा है कि रामपुर के अध्ययन से हम एक पूर्णतया भिन्न निष्कर्ष निकालते हैं और वह यह कि जजमान और कमीन (प्रजा) का सम्बन्ध वास्तव में जजमान द्वारा कमीनों के शोषण का द्योतक है।

रेड्डी भी इसी विचार का समर्थन करते हुये लिखते हैं कि जजमान तो हर प्रकार से फायदा उठाता है जबकि परजन का गिड़गिड़ाना तक प्रभावहीन ही बनकर रह जाता है और उसकी दर्दभरी आवाज जजमान के कानों तक शायद ही पहुंचती है।

(2) **दुर्व्यहार**–परजन का न केवल आर्थिक शोषण होता है अपितु उन्हें जजमान द्वारा किये गये दुर्व्यवहार एवं अत्याचार का भी ि"ाकार बनना पड़ता है। रेड्डी ने लिखा है कि ऐसी स्थिति उस समय वि"ोषकर उत्पन्न होती है जबकि दो या दो से अधिक जजमान एक ही समय पर परजन की सेवाओं की मांग करते हैं। उन सबको एक साथ ही एक ही समय पर संतुष्ट करना परजन के लिये सम्भव नहीं होता है। जिस किसी को भी सेवा मिलने में तनिक भी देर हो जाती है वही गुस्सा हो जाता है, परजन को बुरा भला कहता है और उसके साथ दुर्व्यवहार करता है। कभी–कभी जजमान के साथ परजन को मार भी खानी पड़ती है। धक्के मारकर घर से बाहर निकाल देना, दो चार हाथ रसीद कर देना, यहां तक कि जूता फेंककर मारना भी असम्भव नहीं होता। ठीक समय पर सेवा प्रदान न करने, जजमान के घर पहुँच न सकने पर कभी कभी तो जजमान इतना नाराज हो जाते हैं कि वे शीघ्र ही एक जत्था एकत्रित करते और परजन को मारते–पीटते घसीटकर ले जाते हैं या घायल अवस्था में रास्ते पर ही फेंक आते हैं।

(3) **कृषि श्रमिकों को समस्या**–जो प्रजा अपने जजमान के खेत में काम करती है वह तो दासता की बेड़ी में सदा के लिये बंध जाती है। कहा जाता है कि कृषि श्रमिकों की दासता के लिये जितने कारण महत्वपूर्ण हैं उनमें जजमानी व्यवस्था सर्वप्रमुख है। चूंकि जजमानी व्यवस्था कुछ न कुछ आज भी प्रचलित है, अतः कृषि श्रमिकों की दासता अब भी बनी हुई है। यह आज के भारत के आर्थिक जीवन व व्यवस्था पर सबसे बड़ा कलंक है। यह समस्या दे"ा के उन भागों में अधिक है जहां हरिजन तथा अन्य निम्न जातियों के लोग अधिक निवास करते हैं। मध्य प्रदे"ा, उड़ीसा, तमिलनाडु व आन्ध्रप्रदे"ा आदि राज्यों में यह समस्या गम्भीर है। निर्धन व भूमिहीन परजन थोड़े से ऋण के बदले में भूमि अथवा सम्पत्ति पास न होने के कारण अपने जजमान (महाजन) के पास सदा के लिये अपने तथा अपनी स्त्री–बच्चों के श्रम और स्वतंत्रता को गिरवी रख देते हैं और यह दासता पीढ़ी दर पीढ़ी चलती है। पट्टाभि सीतारमैया ने उनकी हृदयस्प"ार्ी अवस्थाओं का चित्रण करते हुये कहा है 'बेचारा कृषि श्रमिक अपना दिन मिट्टी और कीचड़ में गुजारता है, वह आधे पेट

भूखा रहकर काम करता है, धूप, आंधी और तूफान में भी उसको आराम नहीं मिलता और इतना सब सहने के बाद भी उसके पास इतनी भूमि नहीं होती जिस पर वह अपना मकान बना सके। वह धान तो उगाता है पर स्वयं भूखा मरता है। वह दूध देने वाली गायों को चराता है, लेकिन स्वयं जौ और पानी के अतिरिक्त कोई अन्य वस्तु नहीं पीता है। वह हमारे गोदामों को अन्न से भरता है, परन्तु स्वयं पूरे साल भोजन की भीख मांगता है। वही कुओं को खोदता है परन्तु उसके पानी को छू नहीं सकता। वह तालाबों की सफाई करता है, परन्तु जिन दिनों उनमें पानी भरा रहता है उसको तालाब से दूर रहना पड़ता है। वह उन लोगों का, जो उसके शरीर का खून चूसकर उसके श्रम का शोषण करके धनी और समृद्धि"ाली बन गये हैं, स्थायी लकड़हारा तथा पानी खींचने वाला दास है।

10.17 जजमानी व्यवस्था के विघटन के कारण

अन्तर्जातीय सम्बन्धों पर आधारित जजमानी अवस्था का आज भारत में वह रूप नहीं रहा जो पहले था। यह घीरे धीरे क्षीण होती आई है और निरन्तर हो रही है। स्वतंत्रता प्राप्ति के प"चात तो इसमें विघटन और भी अधिक तेजी से हुआ, लेन–देन की बात वह नहीं रही जो पहले थी। परस्पर सेवा सहायता सम्बन्ध भी f"ाथित हो गये हैं। अनेक सेवक जातियों ने वर्तमान परिस्थिति में अपने ''जजमान' छोड़ भी दिये हैं। न पहले जैसा स्नेह रहा और न ही श्रद्धा। मोटे तौर पर इस व्यवस्था के विघटन के निम्नलिखित कारण हैं–

(1) **मुद्रा व सिक्कों का प्रभाव**–जजमानी व्यवस्था का प्रमुख आधार 'सेवा के बदले वस्तु' थी। अपने कर्म व श्रम के बदले सेवक जातियां अपने जजमान से अनाज, कपड़ा और अन्य वस्तुयें प्राप्त करती थीं। पहले मुद्रा का प्रचलन नहीं था, परन्तु आज मुद्रा का प्रचलन है और गांव में लोग अपने 'जजमान' से अपनी सेवा के बदले नकद भुगतान चाहते हैं। गांवों में क्योंकि द्रव्य का अधिक प्रयोग है और लोग नकदी नहीं पाते इसलिये जजमानी व्यवस्था का विघटन हो रहा है।

(2) **जनसंख्या में वृद्धि**–भारतवर्ष में आज पहले की अपेक्षा जनसंख्या बहुत अधिक बढ़ गई है। गांवों में भूमि तो उतनी ही है, उस पर खाने वाले बढ़ गये हैं। दबाव बढ़ गया है। सेवक जातियों को जजमान उनका अधिकार कहां से दें ? इस कारण अनेक सेवक जातियां असंतुष्ट होकर काम छोड़ रही हैं। इससे जजमानी व्यवस्था का पतन हो रहा है।

(3) **यातायात के साधनों में वद्धि**–पहले यातायात के साधन बहुत सीमित थे। लोग अपने ही गांव या क्षेत्र में रहते थे, वहीं रहकर अपनी आव"यकताओं की पूर्ति करते थे। तब जजमानी व्यवस्था अपने स्वस्थ रूप में थी। आज यातायतात के साधन बढ़ गये हैं। लोग अपनी बढ़ी हुई आव"यकताओं की पूर्ति हेतु शहरों में आ बसे हैं। इधर गांव में अत्यधिक जनसंख्या के कारण सेवक जातियों को अपने जजमान से आ"ानुकूल पारितोषिक नहीं प्राप्त हो पाता। वे असंतुष्ट होकर सेवा

कार्य छोड़ देती हैं और नगरों में बस जाती हैं। ऐसी परिस्थितियों में जजमानी व्यवस्था का ह्रास एक स्वाभाविक बात है।

(4) **िाक्षा का प्रसार**–पहले की अपेक्षा आज अधिक लोग ि"ाक्षित होने लगे हैं, चाहे ग्राम हो या नगर, सभी क्षेत्रों में आज ि"ाक्षा में वृद्धि हुई है। लोगों का अन्धवि"वासों से नाता टूटता जा रहा है। पढ़े–लिखे लोग आज पैतृक व्यवसाय को क्यों करें ? क्योंकि जजमानी व्यवस्था पैतृक व्यवसाय पर आधारित है इसलिये इसका विघटन भी स्वाभाविक है।

(5) **संस्कृतिकरण की प्रकिया**–आज गांवों में निम्न जातियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है। उनकी अनेक निर्योग्यताओं में आज परिवर्तन आया है जिससे उनकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधरी है। सरकार भी उनके कल्याण हेतु बहुत कुछ कर रही है। निम्न जातियां स्वयं अपनी द"ाा सुधारने के दृष्टिकोण से सजग हैं। उन्होंने अपने पैतृक व्यवसाय को छोड़ दिया है और नगरों में जाकर अन्य जाति के व्यवसायों को अपनाना आरम्भ कर दिया है। इसी प्रकिया को एम० एन० श्रीनिवास ने संस्कृतिकरण कहा है। अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Social Change in Modern India' में आपने स्पष्ट किया है कि जब निम्न हिन्दू जाति, जनजाति या अन्य समूह अपने से उच्च जाति जैसा व्यवहार करता है, अपने रीति–रिवाज ,कर्मकाण्ड और विचारधारा इत्यादि को बदलने लगता है और अपनी स्थिति को उच्च प्रद"ार्ित करता है तो इस प्रकिया को संस्कृतिकरण कहा जाता है। इस प्रकिया के परिणामस्वरूप निम्न जातियों ने घृणित व्यवसायों और बेगारी को बिलकुल छोड़ दिया है। यही कारण है जजमानी व्यवस्था के निघटन का।

(6) **समानता की भावना**–भारतवर्ष ने स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही अपने संविधान के माध्यम से सभी को 'समानता' प्रदान की है, चाहे वह किसी भी धर्म, जाति या लिंग का हो। अब सेवक जातियों से बेगार नहीं ली जा सकती, उनका शोषण भी नहीं किया जा सकता। आज सभी समान हैं और निम्न जातियों को भी वे सभी अधिकार प्राप्त हैं जो उच्च जातियों के हैं। यही कारण है कि आज जाति पंचायत के अधिकारों को भी चुनौती दी गई है। परिणाम–स्वरूप जजमानी व्यवस्था का विघटन हो रहा है।

(7) **नवीन मूल्यों का प्रभाव**–आज पुराने मूल्य ि"ाथिल होने लगे हैं और नये मूल्य उन्हें ढकने लगे हैं। पुराने मूल्यों के अनुसार जातियों को निजी महत्व प्रदत्त था, वि"ाष्ट परिवार के लिये वि"ाष्ट जाति ही नि"चत थी जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी उसी परिवार की सेवा करती थी परन्तु आज संस्कार अधिक से अधिक संक्षिप्त होते जा रहे हैं। समय पड़ने पर किराये की जातियां लाई जाती हैं। केवल संस्कार की औपचारिकताओं को निभाने के लिये ब्राह्मणों को अपने जजमानों से पहले जैसी न तो प्रतिष्ठा मिलती है और न ही श्रद्धा। उन्हें दान–पुण्य करने में भी लोग संकोच करते हैं। यह जजमानी व्यवस्था का विघटन ही है।

अन्त में यह कहा जा सकता है कि जजमानी व्यवस्था का विघटन अव"य हो रहा है, उसके रूप में परिवर्तन हो रहा है परन्तु यह कहना कि भारतीय ग्रामों से यह व्यवस्था बिलकुल ही समाप्त हो गई है, गलत है। इसकी जड़ें इतनी गहरी हो

गई हैं कि आज भी भारतीय ग्रामों में जजमानी व्यवस्था एक महत्वपूर्ण वि"ोषता के रूप में विद्यमान है।

10.18 बोध प्र"न–03

1. जजमानी व्यवस्था की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. जजमानी व्यवस्था के लाभ बताइये।
3. जजमानी व्यवस्था के विघटन के क्या कारण रहे ?

10.19 सारां"ा

सामाजिक स्तरीकरण भारतीय ग्रामीण समाज के अध्ययन की एक महत्वपूर्ण अवधारणा है। भारतीय गांवों में जातीय आधार पर दृष्टिगोचर होने वाला स्तरीकरण व्यावसायिक भिन्नता व उससे उत्पन्न होने वाली सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था को निकट से देखने का प्रयास करता है। इस इकाई में हमें यह ज्ञात हुआ कि भारतीय ग्रामीण स्तरीकरण के आधार सामाजिक, आर्थिक, सम्पत्तिगत व व्यावसायिक हैं। स्पष्ट हुआ है कि स्तरीकरण के आधार पर ही गांवों में अन्तर्जातीय सम्बन्ध विकसित होते हैं।

इस इकाई में मूल रूप से यह देखने का प्रयास किया गया कि जजमानी व्यवस्था किस प्रकार भारतीय ग्रामीण समाज में पाये जाने वाले स्तरीकृत अन्तर्जातीय सम्बन्धों को प्रदर्"ित करती है। ज्ञात हुआ कि विभिन्न जातियों के पारस्परिक प्रकार्यात्मक सम्बन्धों की एक अभिव्यक्ति जजमानी व्यवस्था है। जहां एक ओर यह व्यवस्था आर्थिक सुरक्षा व सामाजिक बीमा जैसे लाभ ग्रामीण समाज को प्रदान करती थी, वहीं दूसरी ओर यह व्यवस्था आर्थिक शोषण की एक सामाजिक व्यवस्था भी थी। यही कारण है कि जैसे–जैसे भारतीय ग्रामीण समाज में मुद्रा का प्रचलन हुआ व ि"ाक्षा का प्रसार हुआ, जजमानी व्यवस्था अपना अस्तित्व खो बैठी। वर्तमान में भारत वर्ष में जजमानी व्यवस्था का अस्तित्व समाप्त हो चुका है, किन्तु यहां पर हमें एक बात अव"य ही माननी पड़ेगी कि गांवों में अभी भी सामाजिक सम्बन्धों का मिजाज जजमानी व्यवस्था की याद दिलाता है।

10.20 प्रयुक्त शब्दावली

सामाजिक स्तरीकरण–सामाजिक स्तरीकरण किसी समाज का विभिन्न समूहों या वर्गों में स्थायी विभाजन है, जो परस्पर श्रेष्ठता और अधीनता के सम्बन्धों में संलग्न होते हैं।

जजमानी व्यवस्था–ग्रामीण समाजों में सेवा प्रदान करने और सेवा ग्रहण करने के आधार पर विभिन्न जातियों के मध्य जो सम्बन्ध व्यवस्था विकसित होती है और पीढ़ी दर पीढ़ी कायम रहती है, जजमानी व्यवस्था कहलाती है।

10.21 अभ्यास प्र"न

1. सामाजिक स्तरीकरण समाज का ऊँच व नीच के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजन है, यह कथन है–
   (क) सत्य (ख) असत्य
   (ग) अस्पष्ट (घ) पता नहीं
2. भारतीय ग्रामों में सामाजिक स्तरीकरण का आधार है–
   (क) सामाजिक (ख) आर्थिक
   (ग) व्यावसायिक (घ) ये सभी
3. अन्तर्जातीय सम्बन्धों के स्थापित होने का आधार है–
   (क) सामाजिक आव"यकता (ख) आर्थिक कार्यों का बंटवारा
   (ग) जातीय स्थिति (घ) ये सभी
4 'दि हिन्दू जजमानी सिस्टम' पुस्तक के लेखक हैं–
   (क) एस0 सी0 दुबे (ख) एम0 एन0 श्रीनिवास
   (ग) विलियम वाईजर (ग) मैकिम मेरियट
5 'फंक्"ानल रिले"ांस ऑफ लोहार्स इन ए नॉर्थ इण्डियन विलेज' के लेखक हैं–
   (क) जी0 एस0 घुरिये (ख) एन0 एस0 रेड्डी
   (ग) एम0 एन0 श्रीनिवास (घ) मैकिम मेरियट
6 'जजमानी व्यवस्था के निर्वहन में संस्कारों की व्यवस्था गौण हो जाती थी' यह कथन है–
   (क) सत्य (ख) असत्य
   (ग) अस्पष्ट (घ) कह नहीं सकते।
7 मद्रास में जजमानी व्यवस्था को कहा जाता था–
   (क) बाड़ा बलूटे (ख) मिरासी
   (ग) अद्दे (घ) इनमें से कोई नहीं
8 जजमानी व्यवस्था में सेवादाता को कहा गया है–
   (क) परजन (ख) प्रजा
   (ग) पवनी (घ) ये सभी
9 जजमानी व्यवस्था का दोष था–
   (क) शोषण (ख) मानसिक सुरक्षा
   (ग) सामाजिक सुरक्षा (घ) इनमें से कोई नहीं।
10 जजमानी व्यवस्था के विघटन का मुख्य कारण रहा–
   (क) ग्रामीण जनसंख्या में बृद्धि (ख) द्रव्यीकरण का प्रभाव
   (ग) औद्योगिक व प्रोद्योगिक विकास (घ) ये सभी

10.22 अभ्यास प्र"नों के उत्तर

1. (क) सत्य 2 (घ) ये सभी 3 (घ) ये सभी 4 (ग) विलियम वाईजर 5 (ख) एन0 एस0 रेड्डी 6 (ख) असत्य 7 (ख) मिरासी 8 (घ) ये सभी 9 (क) शोषण 10 (घ) ये सभी।

10.23 निबन्धात्मक प्र"न

1. भारतीय ग्रामीण समाज में पाये जाने वाले सामाजिक स्तरीकरण को विस्तार से समझाइये।
2. भारतीय जजमानी व्यवस्था के लाभों से अवगत करायें।
3. जजमानी व्यवस्था से आप क्या समझते हैं ? इसके विघटन के मुख्य कारण कौन–कौन से हैं ? समझाइये।

10.24 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

–चौहान, बी0 आर0, 'भारत में ग्रामीण समाज' (1988), ए0 सी0 ब्रदर्स, उदयपुर।
–दोषी, एस0 एल0 एण्ड पी0 सी0 जैन, 'रूरल सोि"ायोलॉजी' (1999), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
–दुबे, एस0 सी0, 'भारतीय ग्राम (अनु0 : योगे"ा अटल, 1996), वाणी प्रका"ान, नई दिल्ली।
–शर्मा, के0 एल0, 'सो"ाल स्ट्रेटिफिके"ान इन इण्डिया' (1997), सेज पब्लिके"ान्स, दिल्ली।
–वाईजर, डब्लू0 एच0, 'दि हिन्दू जजमानी सिस्टम' (1936), लखनऊ पब्लि"िांग हाउस, लखनऊ।

10.25 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

–आहूजा, राम, 'भारतीय समाज' (2004), रावत पब्लिके"ान्स, जयपुर।
–अग्रवाल, जी0 के0 एवं एस0 एस0 पाण्डेय, 'ग्रामीण समाज"ाास्त्र' (2004), साहित्य भवन पब्लि"ार्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा0लि0, आगरा।

इकाई 11 प्रभु जाति और ग्रामीण गुट
(Dominant Caste and Rural Factions)

इकाई की रूपरेखा

11.1 उद्देश्य
11.2 प्रस्तावना
11.3 प्रभु जाति की अवधारणा
11.4 प्रभु जाति की विशेषताऐं
11.5 प्रभु जाति की अवधारणा की आलोचना
11.6 बोध प्रश्न–01
11.7 गुट का अर्थ
11.8 गुट के स्थायित्व के कारक
11.9 गुट समाज की प्रकृति
11.10 भारतीय ग्राम–गुट समाज के रूप में
11.11 बोध प्रश्न–02
11.12 सारांश
11.13 प्रयुक्त शब्दावली
11.14 अभ्यास प्रश्न
11.15 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
11.16 निबन्धात्मक प्रश्न
11.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
11.18 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

11.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आय यह जान सकेंगे कि–
–प्रभु जाति किसे कहते हैं ?
–प्रभु जाति की विशेषताऐं कौन सी हैं ?
–ग्रामीण गुट की अवधारणा क्या है ?
–गुट समाज की प्रकृति कैसी है ?
–भारतीय ग्राम, गुट समाज के रूप में कैसे प्रतीत होते हैं ?

प्रभु जाति : ग्रामीण भारत में सामाजिक स्तरीकरण का मुख्य आधार जाति–प्रथा है। यहां विभिन्न जातियां जजमानी प्रथा द्वारा आर्थिक रूप से एक–दूसरे पर निर्भर रही हैं। निम्न और उच्च जातियों के पारस्परिक सम्बन्ध भू–स्वामी और काश्तकार, मालिक और सेवक, साहूकार और ऋण लेने वाले आदि के रूप में भी पाये जाते हैं।

जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों, ग्रामीण एकता या ग्रामीण सामाजिक संरचना को समझने के लिए प्रभु जाति की अवधारणा को स्पष्ट करना आव"यक है।

सन 1959 में एम० एन० श्रीनिवास ने मैसूर के रामपुरा गांव के अध्ययन के दौरान प्रभु जाति की अवधारणा को विकसित किया। इस अवधारणा का प्रयोग विभिन्न विद्वानों ने अपने अध्ययन में किया है और इसके सहारे उन्हें गांव के राजनैतिक संगठन, अन्तर्जातीय संघर्ष तथा सम्बन्ध एवं प्रभुत्व को समझने में सहायता मिली है। दुबे और मजूमदार ने इस अवधारणा का प्रयोग कर उसकी उपादेयता का परीक्षण किया है। वस्तुतः भारत के ग्रामीण जीवन में आज जो नवीन संरचनात्मक प्रतिमान विकसित हुए हैं, उन्हें प्रभु जाति की अवधारणा के आधार पर सरलतापूर्वक समझा जा सकता है।

11.2 प्रस्तावना

ग्रामीण समाज"ाास्त्र की अनेक महत्वपूर्ण अवधारणाओं में से दो हैं–प्रभु जाति व ग्रामीण गुट। इन दोनों अवधारणाओं का संयुक्त रूप से अध्ययन किया जाता है। ग्रामीण समाज"ाास्त्र के अनेक लेखकों का यह मत रहा है कि ग्रामीण सामाजिक संरचना को समुचित रूप से समझने के लिए उन समूहों की प्रकृति को समझना भी आव"यक है जो ग्रामीण शक्ति संरचना के परम्परागत स्वरूपों में होने वाले परिवर्तनों को स्पष्ट करते हैं। प्रभु जाति व ग्रामीण गुट ऐसे दो समूह हैं। एम0 एन0 श्रीनिवास द्वारा सन 1959 में मैसूर के रामपुरा गांव के अध्ययन के प"चात प्रतिपादित की गई प्रभु जाति की अवधारणा ग्रामीण सामाजिक संरचना को न केवल एक नवीन दृष्टिकोण से स्पष्ट करती है, बल्कि इसके आधार पर जाति व्यवस्था से सम्बन्धित संरचनात्मक परिवर्तन का भी एक नवीन स्वरूप स्पष्ट होता है। इसके बाद से अनेक ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों ने ग्रामीण अन्तर्जातीय सम्बन्धों, ग्रामीण नेतृत्व के स्वरूपों, जातीय तनाव, ग्रामीण शक्ति संरचना और ग्रामीण गुट जैसे महत्वपूर्ण विषयो को स्पष्ट करने के लिए इस अवधारणा का व्यापक रूप से प्रयोग किया है। भारतीय ग्रामीण समाज में आ रहे संरचनात्मक परिवर्तनों को प्रभु जाति की अवधारणा के आधार पर समझना अत्यन्त आसान है। साथ ही इस इकाई में यह भी स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि जातीय संस्तरण पर आधारित परम्परागत ग्रामीण गुट समाज अब किस प्रकार नवीन परिवे"ा ग्रहण कर रहा है।

11.3 प्रभु जाति की अवधारणा

जाति व्यवस्था से सम्बन्धित संरचनात्मक परिवर्तन का एक नवीन दृष्टिकोण प्रभु जाति की अवधारणा है। प्रभु जाति की अवधारणा गांव की राजनैतिक व्यवस्था, शक्ति एवं न्याय व्यवस्था और प्रभुत्व को समझने में भी योगदान देती है। प्रभु जाति के लिए अन्य अनेक शब्दों का भी प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रभावी जाति, प्रबल

जाति, प्रभुता सम्पन्न जाति आदि अधिक प्रचलित शब्द हैं। यह सभी एक ग्रामीण समुदाय के अन्तर्गत किसी ऐसे जाति समूह का बोध कराते हैं जिसने गांव में पारस्परिक सम्बन्धों तथा ग्रामीण एकता को एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है। प्रभु जाति की अवधारणा को स्पष्ट करते हुये एम० एन० श्रीनिवास ने लिखा है कि 'एक जाति को प्रभु जाति तब कहा जाता है जब वह संख्यात्मक आधार पर किसी गांव अथवा स्थानीय क्षेत्र में शक्ति"ाली हो तथा आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से अपने प्रभाव का प्रबल रूप से प्रयोग करती हो, यह आव"यक नहीं है कि परम्परागत जातीय संस्तरण में वह सर्वोच्च जाति के रूप में ही हो।'

इसका तात्पर्य यह है कि किसी जाति को प्रभु जाति अथवा प्रबल जाति केवल तभी कहा जा सकता है जब उसके सदस्य संख्या में इतने अधिक हों कि वे गांव की अन्य जातियों पर अपना प्रभुत्व रख सकते हों तथा एक प्रभाव"ाली आर्थिक और राजनैतिक इकाई के रूप में कार्य कर सकते हों। यदि ऐसे बड़े और शक्ति"ाली जाति समूह का स्थान सम्पूर्ण जाति व्यवस्था में बहुत निम्न नहीं होता है तो वह सरलता से एक प्रबल अथवा प्रभु जाति के रूप में परिवर्तित हो जाता है। वास्तव में प्रभु जाति की अवधारणा को समझते समय सबसे महत्वपूर्ण प्र"न यह उत्पन्न होता है कि गांव में 'प्रभुता' का आधार क्या है, अथवा वे कौन सी वि"ोषताऐं हैं जिनके आधार पर किसी जाति समूह को प्रभु जाति कहा जा सकता है।

11.4 प्रभु जाति की वि"ोषताऐं

प्रभु जाति की अवधारणा के आधार पर इसकी कुछ प्रमुख वि"ोषताऐं परिलक्षित होती हैं जिन्हें निम्नवत प्रस्तुत किया जा सकता है–

(1) **जनसंख्यात्मक भाक्ति**–जाति का सर्वप्रथम आधार उसकी संख्यात्मक शक्ति है। गांव में जिस जाति समूह को समर्थन प्रदान करने वाले व्यक्ति अधिक संख्या में होते हैं उसका स्वाभाविक रूप से अन्य जातियों पर प्रभुत्व स्थापित होने लगता है। इलिएट ने अपने अध्ययन के द्वारा प्रभु जाति के निर्धारण में जनसंख्यात्मक शक्ति को महत्वपूर्ण मानते हुये यह स्पष्ट किया है कि प्रभु जाति की राजनैतिक शक्ति उसकी संख्या के अनुसार ही निर्धारित होती है। अधिक जनसंख्या का सम्बन्ध अधिक संख्या में अनुसरण करने वालों से है तथा अनुसरण करने वालों की संख्या ही किसी समूह के राजनैतिक प्रभुत्व का निर्धारण करती है।

के0 एल0 शर्मा ने सबलपुरा गांव का अध्ययन करके बताया कि यहां यद्यपि जाट, राजपूत और ब्राह्मण तीन मुख्य जातियां हैं लेकिन इनमें जाट जाति इसलिए प्रभु जाति है क्योंकि इसके सदस्यों की संख्या गांव में सबसे अधिक है। इसी जनसंख्यात्मक शक्ति के कारण जाटों को विभिन्न क्षेत्रों में अपनी शक्ति का विस्तार करने तथा सामाजिक पद प्राप्त करने में सहायता मिलती है।

(2) **जातीय संस्तरण में उच्च स्थिति**–एम० एन० श्रीनिवास के अनुसार प्रभु जाति कहलाने वाली जाति के लिए आव"यक है कि उस जाति का जातीय संस्तरण में भी उच्च स्थान हो। परन्तु आज अनेक अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट हुआ है

कि प्रभु जाति के लिए जातीय संस्तरण में उच्च स्थिति का होना आव"यक नहीं है। उदाहरण के लिए पि"चमी उत्तर प्रदेष के गांवों में जाट, गूजर और अहीर प्रभु जातियां हैं। इसी प्रकार पूर्वी उत्तर प्रदे"ा के गाजीपुर जिले में कुछ ग्रामों के अध्ययन से यह ज्ञात हुआ कि यहां अहीर और कु"ावाहा (कोइरी) जाति के लोग प्रभु जाति के रूप में हैं। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि परम्परागत समाज की यह धारणा कि प्रभु जाति कोई उच्च जाति ही हो सकती है, अब परिवर्तित होने लगी है।

(3) **भू–स्वामित्व**–श्रीनिवास ने अपने अध्ययन के आधार पर यह ज्ञात किया कि किसी भी गांव अथवा क्षेत्र में केवल वही जाति–समूह प्रभु जाति बन पाता है जिसके पास गांव की कृषि योग्य भूमि के एक बड़े भाग पर स्वामित्व हो। ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी भू–स्वामित्व परम्परागत प्रभुता को निर्धारित करने वाला महत्वपूर्ण तत्व है। के0 एल0 शर्मा ने अपने अध्ययन के आधार पर यह स्पष्ट किया कि 'बोवारी गांव' में जाट और गूजर प्रभु जातियां हैं। यहां गांव की सम्पूर्ण 705 एकड़ भूमि में से 383 एकड़ भूमि पर जाटों का और 200 एकड़ भूमि पर गूजर जाति का स्वामित्व है।

(4) **प्र"ाासनिक स्थिति**–यह देखा गया है कि गांव में जिस जाति के अधिक सदस्य विभिन्न श्रेणियों की प्र"ाासनिक सेवाएं प्राप्त कर लेते हैं वही जाति कुछ समय के बाद गांव में प्रभु जाति बन जाती है। इसका कारण यह कि एक ओर ऐसी जाति के सदस्यों को विभिन्न क्षेत्रों में अधिक सुविधाएं प्राप्त होने लगती हैं तथा दूसरी ओर अन्य जातियों पर उनका मनोवैज्ञानिक और आर्थिक दबाव स्थापित हो जाता है।

(5) **राजनैतिक प्रभुत्व**–भारत की वर्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था में किसी भी वर्ग के राजनैतिक प्रभुत्व का निर्धारण उसकी सदस्य संख्या के आधार पर होता है किसी वि"ोष क्षेत्र में जिस जाति के सदस्यों की संख्या जितनी अधिक होती है वह उस क्षेत्र की शक्ति संरचना में उतनी ही उच्च स्थिति ग्रहण कर लेती है। व्यावहारिक रूप से आज भारत के प्रत्येक भाग में वे जातियां ही प्रभु जातियों के रूप में पाई जाती हैं जिनके पास राजनैतिक सत्ता को प्रभावित करने की शक्ति है। उत्तर भारत के गांवों में इन प्रभु जातियों को 'अजगर' नाम से सम्बोधित किया जाता है क्योंकि ये जातियां अपनी शक्ति से अन्य जातियों को स्वयं में मिला लेती हैं। ये जातियां क्रम"ाः अहीर, जाट, गूजर तथा राजपूत हैं जिन्हें समन्वित रूप से अ, ज, ग तथा र अथवा 'अजगर' कहा जाता है। उत्तर प्रदे"ा के अतिरिक्त अन्य प्रान्तों में भी कुछ जातियां अपने राजनैतिक प्रभुत्व के कारण प्रभु जाति के रूप में मान्य हैं।

(6) **आधुनिक ि"ाक्षा**–ि"ाक्षा को भी प्रभु जाति के निर्धारण का एक महत्वपूर्ण तत्व स्वीकार किया जाता है। गांव में आज जिस जाति के अधिक सदस्यों ने, आधुनिक ि"ाक्षा प्राप्त करके सरकारी नौकरियों में अधिक स्थान प्राप्त कर लिए हैं, उनका अन्य जातियों पर प्रभुत्व स्थापित हो गया है। के0 एल0 शर्मा ने 6 गांवों के अध्ययन द्वारा यह पाया कि प्रत्येक गांव में प्रभु जाति के अन्तर्गत आधुनिक ि"ाक्षा का प्रसार अन्य जातियों की तुलना में अधिक था। इस अध्ययन से भी यह स्पष्ट हो

जाता है कि ि"ाक्षा एक ऐसा महत्वपूर्ण आधार है जिसे कुछ जाति समूह स्वयं को प्रभु जाति के रूप में परिवर्तित कर सकते हैं।

(7) **आर्थिक सम्पन्नता**–परम्परागत रूप से ग्रामीण समाज में आर्थिक सम्पन्नता का निर्धारण केवल भू–स्वामित्व के आधार पर होता था, परन्तु आज केवल अधिक भूमि का स्वामी होना ही किसी व्यक्ति अथवा जाति की श्रेष्ठता की कसौटी नहीं है। उदाहरण के लिए आज भी गांवों में अनेक बड़े भू–स्वामी है, लेकिन कृषि के नवीन साधनों का उपयोग न कर सकने के कारण वे अपनी परम्परागत स्थिति को बनाये रख सकने में सफल नहीं हो सके हैं। ऐसी स्थिति में प्रभु जाति के निध्रारण में पुराने जमीदारों की अपेक्षा उस वर्ग को अधिक ऊॅची स्थिति प्राप्त हो गई है जिन्होनले आर्थिक जीवन में अधिक सफलता प्राप्त की है। गांवों का यह सम्पन्न वर्ग चाहे किसी भी जाति से सम्बद्ध हो, उसका ग्रामीण नेतृत्व तथ्ता गांवों के निर्णयों में कहीं अधिक महत्व दिखाई देता है।

(8) **विकास योजनाओं से लाभ की सीमा**–ग्रामीण विकास के वर्तमान युग में वे जातियां प्रभु जातियों के रूप में परिवर्तित हो गई है जिन्होंने विभिन्न विकास योजनाओं तथा मुख्य रूप से सामुदायिक विकास योजनाओं के अधिकाधिक लाभ प्राप्त किए हैं। उदाहरण के लिए दलिएट ने यह निष्कर्ष दिया है कि आन्ध्र प्रदे"ा में अधिकां"ा प्रभु जातियां वे हैं जिन्होंने सामुदायिक विकास योजनाओं से अधिक लाभ प्राप्त किया है। यह सच है कि विभिन्न योजनाओं का उद्दे"य बिना किसी पक्षपात के सभी ग्रामीणों का समान रूप से लाभ पहुंचाना है, लेकिन तो भी कुछ जातियां अपनी ि"ाक्षा, जागरूकता एवं स्थानीय प्रभाव के कारण इन योजनाओं से अधिक लाभान्वित हो जाती है जबकि अनेक दूसी जातियों की स्थिति पहले से भी निम्न हो जाती है। इस स्थिति में लाभान्वित जाति–समूह द्वारा एक प्रभु जाति बन जाना अत्यधिक स्वाभाविक प्रतीत होता है।

(9) **सम्पूर्ण गांव की एकता, न्याय और कल्याण के लिए कार्य**–प्रभु जाति गांव की एकता को बनाये रखने में योग देती है और ऐसे कार्य करती है जिससे सारे समुदाय की भलाई हो। यह सारे गांव में झगड़े निपटाने एवं न्याय का कार्य भी करती है। प्रभु जाति अन्य जातियों के नियमों का सम्मान करती है। अन्य जातियों के लोग विवाद हल करने के लिये प्रभु जाति के वयोवृद्ध व्यक्तियों के पास जाते हैं। प्रभु जाति निष्पक्ष और तटस्थ होती है। केवल वे मामले ही जो जाति से सम्बन्धित होते हैं, पास के गांवों में रहने वाले अपनी जाति के वयोवृद्ध व्यक्तियों के पास ले जाते हैं। सार्वजनिक उत्सवों एवं सभाओं में प्रभु जाति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। स्पष्ट है कि प्रभु जाति अपनी संख्या, उच्च सामाजिक स्थिति, आर्थिक सम्पन्नता, राजनैतिक शक्ति, ि"ाक्षा आदि के कारण गांव में प्रभुत्व"ाली मानी जाती है। प्रभु जाति का नेता भी गांव में शक्ति"ाली व्यक्ति होता है। सामान्यतः यह गांव में सर्वाधिक सम्पन्न अथवा वयोवृद्ध व्यक्ति हो सकता है या अपने व्यक्तिगत गुणों एवं सेवा भावना के कारण लोग उसको आदर एवं सम्मान की दृष्टि से देखते हैं तथा उसका मार्गद"ान प्राप्त करते हैं।

प्रभु जाति की उपर्युक्त वि"ोषताओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रभु जाति के विभिन्न आधारों में भी समय–समय पर परिवर्तन होता रहता है। ब्रिटि"ा काल के पूर्व प्रभु जाति का निर्धारण जिन आधारों पर होता था, ब्रिटि"ा काल में वे आधार पूर्णतः परिवर्तित हो गये। इसी प्रकार ब्रिटि"ा काल में जो आधार महत्वपूर्ण थे, उनके स्थान पर अब नये आधार प्रभु जाति की कसौटी बन गये हैं। अतः स्पष्ट है कि प्रभु जाति स्वयं एक परिवर्तन"ाील अवधारणा है।

11.5 प्रभु जाति की अवधारणा की आलोचना

श्रीनिवास द्वारा प्रस्तुत प्रभु जाति की अवधारणा की कई विद्वानों ने समीक्षा की है। कुछ विद्वानों की आलोचनाएं निम्नलिखित हैं–

एस0 सी0 दुबे ने प्रभु जाति की अवधारणा की आलोचना करते हुए कहा है कि यह आव"यक नहीं है कि संख्या की अधिकता के कारण कोई जाति प्रभु जाति बन जाये। हो सकता है कि अधिक संख्या होने पर भी उस जाति के सदस्यों में एकता और जागरूकता का अभाव हो। इसके विपरीत सम्भव है कि कम संख्या वाली जाति में एकता, दृढ़ता एवं जागरूकता होने पर वह शक्ति"ाली बन जाये। दुबे का मत है कि आर्थिक एवं राजनैतिक शक्ति भी प्रभु जाति के लिए उसी समय आधार बन सकती है जब इसका प्रयोग सम्पूर्ण जाति की भलाई के लिए किया गया हो। किन्तु अक्सर यह होता है कि इसका प्रयोग व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए किया जाता है और जाति में फूट पड़ जाती है। दुबे आर्थिक एवं जाति पद क्रम उच्च स्थिति को प्रभु जाति के लिये आव"यक नहीं मानते क्योंकि एक जाति की उच्चता को सभी जातियाँ स्वीकार करें यह आव"यक नहीं है। इसी प्रकार से पा"चात्य f"ाक्षा व व्यवसाय भी जाति प्रभुत्व के लिए आव"यक नहीं हैं। यद्यपि ये जाति की आर्थिक एवं सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि करते हैं। दुबे प्रभु जाति के स्थान पर प्रभुत्व"ाली व्यक्ति का प्रयोग करते हैं।

डी0 एन0 मजूमदार ने 'मोहाना गांव' के अध्ययन में प्रभु जाति की अवधारण का परीक्षण किया और यह निष्कर्ष निकाला कि एक जाति सदा ही अपनी संख्या के कारण प्रभु जाति नहीं होती। एक जमींदार अपने विस्तृत नातेदारों के कारण अथवा कुछ परिवार भू–स्वामित्व एवं उच्च जीवन स्तर के कारण गांव में प्रभाव"ाली हो सकते हैं तथा विभिन्न जातियों को जोड़ने वाली कड़ी का कार्य कर सकते हैं। यह भी आव"यक नहीं है कि जो जाति संख्या की दृष्टि से प्रभाव"ाली है, वह सामाजिक दृष्टि से भी प्रभाव"ाली होगी ही। यह तभी सम्भव है जब अन्य गांवों में भी उस जाति की सामाजिक स्थिति प्रभाव"ाली हो। बहुसंख्यक की अवधारणा आधुनिक प्रजातंत्र की देन है। भारतीय गांवों में कभी भी बहुसंख्यकों का शासन नही रहा है और न ही उनका निर्णय स्वीकार किया गया। कई बार गांव में संख्या, जाति संस्तरण तथा आर्थिक व राजनैतिक दृष्टि से एक से अधिक जातियाँ प्रभुत्व"ाली होने का दावा करती हैं। ऐसी स्थिति में यह निर्णय करना बड़ा कठिन होता है कि

उनमें से किसे प्रभु जाति कहा जाये। ऐसी द"ाा में हमें प्रभु जाति के स्थान पर प्रभु जातियाँ दिखाई पड़ती हैं।

भारत के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में प्रभु जाति के निर्धारक तत्व या वि"ोषता एक दूसरे से पर्याप्त भिन्न हैं। इस दृष्टिकोण से किसी एक क्षेत्र में किये गये अध्ययन के निष्कर्षों को दूसरे क्षेत्र में लागू नहीं किया जा सकता। इसके प"चात भी श्रीनिवास द्वारा प्रतिपादित प्रभु जाति की अवधारणा विभिन्न जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा ग्रामीण एकता को समझने के लिए अत्यधित महत्वपूर्ण है। इस अवधारणा की सहायता से न केवल ग्रामीण शक्ति संरचना की प्रकृति को समझा जा सकता है बल्कि विभिन्न गांवों के पारस्परिक सम्बन्धों को समझाना भी सरल हो जाता है। मैकिम मेरियट ने लिखा है कि राजनैतिक आधार पर एक गांव के लोग दूसरे गांव के लोगों से प्रभु जाति के आधार पर ही जुड़ते हैं। यही कारण है कि गांवों में विभिन्न जातियों के पारस्परिक सम्बन्धों तथा ग्रामीण नेतृत्व की प्रकृति को समझने के लिए ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों की रूचि प्रभु जाति के अध्ययन में निरन्तर बढ़ती जा रही है।

11.6 बोध प्र"न–01

---

1. प्रभु जाति की अवधारणा स्पष्ट कीजिऐ।
2 प्रभु जाति की वि"ोषताऐं बताइये।

ग्रामीण गुट : समाज कोई अखण्ड व्यवस्था नहीं है, अपितु वह अनेक इकाईयों से मिलकर बनने वाली एक व्यवस्था व संगठन है। वे इकाइयां समाज में ही पाये जाने वाली विभिन्न समिति और संस्थाऐं होती हैं और उनमें एक अन्तःसम्बन्ध व अन्तःनिर्भरता होती है। इसके फलस्वरूप समाज के विभिन्न समूह, समिति या संस्थाऐं एक समग्रता के रूप में या यूं कहिये कि अनेक फूलों के एक गुलदस्ते के रूप में प्रगट होती हैं। पर कभी–कभी ऐसा भी होता है कि कुछ नि"चित सामाजिक आधार जैसे जाति, सम्पत्ति, सत्ता आदि के आधार पर समाज के ये विभिन्न समूह एक–दूसरे से पृथक प्रतीत होने लगते हैं और उनमें अपने पृथक अस्तित्व के लिये आपस में प्रतिस्पर्धा होती है तो ऐसे समाज को गुट समाज (faction society) कहते हैं । इसी दृष्टिकोण से भारतीय ग्रामीण समुदायों की विवेचना हम इस इकाई में करेंगे। पर उससे पूर्व 'गुट' के वास्तविक अर्थ को समझ लेना उपयोगी होगा।

11.7 गुट का अर्थ

अंग्रेजी शब्द Faction का ही हिन्दी रूपान्तर 'गुट' है। साधारण बोलचाल में 'गुट' शब्द का प्रयोग उस समूह के लिये किया जाता है जिसके सदस्यों ने कुछ सामान्य स्वार्थों के आधार पर अपने को इस भांति संगठित या दलबद्ध कर लिया है कि वे उन स्वार्थों की पूर्ति के रास्ते पर रूकावट डालने वालों का विरोध

सफलतापूर्वक कर सकें। इसीलिये गुट शब्द से ही उस तनावपूर्ण सम्बन्ध का आभास होता है जो कि एक स्वार्थी समूह दूसरे समूहों से रखता है। परन्तु 'सामान्य स्वार्थ' और 'तनाव' का मतलब यह नहीं है कि एक गुट दूसरे गुट से सदा लड़ता–झगड़ता ही रहता है अथवा उनका पारस्परिक सम्बन्ध सदा द्वेष व घृणा से ही भरपूर होता है। ऐसा न कभी हो सकता है और न ही दो गुट केवल आयु तथा जातीय स्थिति के आधार पर अपने पृथक अस्तित्व को बनाये रखने में सफल हो सकते हैं। इसीलिये ढिल्लन ने लिखा है कि यद्यपि दूसरे समूहों के प्रति शत्रुता गुटों का सामान्य गुण है और लड़ाई –झगड़ों के परिणामस्वरूप ही बहुधा नये गुट बनते हैं, फिर भी यह शत्रुता की भावना ही एकमात्र या प्रमुख कारक या शक्ति नहीं है जो कि गुटों को एक साथ बांधे रहती है।

11.8 गुट के स्थायित्व के कारण

उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि गुट के स्थायित्व का सबसे प्रमुख कारक सामान्य स्वार्थ है, दूसरों से लड़ाई अथवा झगड़े नहीं। एक गुट के सदस्य सदैव ही कुछ सामान्य स्वार्थों द्वारा बंधे होते हैं और यह इच्छा करते हैं कि उन स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति हो। इसीलिये जो भी दल या समूह उन स्वार्थों की पूर्ति के रास्ते में रोड़ा बन जाता है उसी को वह गुट अपने रास्ते से हटा देना चाहता है, चाहे उसके लिये उसे झगड़ा व विवाद ही क्यों न मोल लेना पड़े। इस प्रकार सामान्य स्वार्थ गुट के स्थायित्व का एक प्रमुख कारक बन जाता है।

परन्तु सामान्य स्वार्थ के अलावा भी कुछ अन्य कारक या द"ाायें भी गुट के स्थायित्व के लिये आव"यक होते हैं। ऑस्कर लेविस ने उन द"ाओं को इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

(1) एक गुट के सदस्यों में पर्याप्त एकता होना बहुत आव"यक है ताकि वह एक इकाई के रूप में कार्य कर सकें और जिन्दा रह सकें।

(2) एक गुट में सदस्य संख्या इतनी अव"य होनी चाहिये कि वह एक सामाजिक समूह के रूप में पूर्ण हो और कुछ सामाजिक क्रियाओं को स्वयं कर सके, बाहर से सहायता लेने की जरूरत न पड़े।

(3) एक गुट के पास इतने पर्याप्त साधन होने चाहिये कि वह बिना दूसरों से सहायता लिये अपने अस्तित्व को बनाये रख सके। इस सम्बन्ध में आर्थिक साधन वि"ोष रूप से उल्लेखनीय हैं। इसीलिये प्रत्येक गुट के पृष्ठ–पोषक या संरक्षक के रूप में कुछ मालदार या धनी परिवार अव"य होने चाहिये जो कि गुट की आर्थिक आव"यकताओं की पूर्ति करते रहें। कभी कभी झगड़े फसाद के फलस्वरूप उत्पन्न मुकदमे लम्बे खिंच सकते हैं, तो कभी गरीब सदस्यों को उधार देने की आव"यकता हो सकती है। इन सब कामों के लिये गुट के पास आर्थिक साधन पर्याप्त होने चाहिये नहीं तो विरोधी गुट उसे दबा डालेगा और उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जायेगा।

11.9 गुट समाज की प्रकृति

जैसा कि प्रारम्भ में कहा गया है कि गुट समाज वह समाज होता है जिसके अन्तर्गत एकाधिक सामाजिक समूह या दल एक–एक गुट के रूप में क्रिया"ाील रहते हैं और अपने–अपने सामान्य स्वार्थों की पूर्ति के लिये आपस में प्रतिस्पर्धा एवं आव"यकता पड़ने पर आपस में लड़ाई झगड़े भी करते रहते हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि गुट समाज एक विघटित समाज होता है अपितु इसका तात्पर्य केवल इतना है कि एक गुट समाज से पृथक अस्तित्व रखने वाले दलों को इसमें देखा जा सकता है। गुटों का पृथक अस्तित्व इस कारण और भी स्पष्ट दिखता है क्योंकि एक गुट के सदस्यों के बीच बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध पाये जाते हैं और वे सभी अपने गुट के प्रत्येक क्रियाकलाप में एक ही परिवार के सदस्य के रूप में भाग लेते हैं। उनमें 'हम' की भावना बहुत तीव्र होती है और इसलिये वे हर सुख–दुख में एक दूसरे के साथ रहते हैं । एक गुट के सदस्यों का केवल अपने ही गुट के लोगों के साथ सम्बन्ध अर्थात अन्तःगुट सम्बन्ध ही नहीं होता अपितु दूसरे गुटों से भी सम्बन्ध अर्थात अन्तर्गुट सम्बन्ध भी होता है। ये बाहरी गुट दो तरह के होते हैं–एक तो मित्र गुट, जिनके साथ औपचारिक सम्बन्ध होते हैं और इसीलिये सामाजिक उत्सव आदि में इन मित्र गुटों को आमंत्रित तो किया जाता है, पर घनिष्ठता के अभाव के कारण एक परिवार के सभी लोग इस निमंत्रण में नहीं आते अपितु औपचारिकता के लिये एक परिवार से केवल एक व्यक्ति और वह भी पुरूष, निमंत्रण रक्षा के लिये चला जाता है। दूसरा शत्रु गुट होता है। इन गुटों के साथ तनावपूर्ण या संघर्षपूर्ण सम्बन्ध होता है, इसीलिये इन्हें किसी उत्सव में निमंत्रित नहीं किया जाता।

11.10 भारतीय ग्राम–गुट समाज के रूप में

(1) **आधार व प्रकृति**–उपरोक्त विवेचना के सन्दर्भ में यह स्पष्ट ही है कि भारतीय गांव भी गुट समाज हैं। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण यह है कि भारतीय गांव अनेक जातियों एवं उपजातियों में न केवल बंटे हुए हैं अपितु उन विभिन्न जातीय समूहों में ऊँच–नीच के आधार पर पृथकता की भावना स्पष्टतः देखने को मिलती है। पहले भारतीय गांवों में जातीय विभाजन होते हुये भी जजमानी व्यवस्था के आधार पर विभिन्न जातियों के बीच एक प्रकार्यात्मक सम्बन्ध पाया जाता था और इस प्रकार्यात्मक लेन–देन के बीच विभिन्न जातीय समूह एक सामान्य सूत्र. में बंधे हुये थे और उनका सम्बन्ध तनावपूर्ण नहीं होता था। पर अब जजमानी व्यवस्था तेजी से टूटती जा रही है और विभिन्न जातीय समूहों के बीच पृथकता या भेदभाव बढ़ता जा रहा है। आज जातीय आधार पर भारतीय गांवों में अनेक गुट पनप रहे हैं और उनके बीच का सम्बन्ध भी प्रायः तनावपूर्ण हो गया है। जाति–प्रथा स्वयं ऊँच–नीच की भावना पर ही आधारित है, अतः प्रत्येक जातीय समूह अपना एक गुट बनाकर अपने स्वार्थों की रक्षा करने का प्रयत्न करता है। इतनी ही नहीं–

(अ) एक भारतीय गांव में यदि किसी जाति वि"ोष की सदस्य संख्या अधिक है तो वहां उस जाति के सदस्य अपना एक गुट बनाकर अन्य लोगों पर अपना सिक्का जमाने का प्रयत्न करते हैं, चाहे जातीय संस्तरण में उस जाति का स्थान नीचे ही क्यों न हो। जिस गांव में क्षत्रिय या ठाकुरों की संख्या अधिक होती है वहां उनका प्रभुत्व भी ज्यादा होता है और उस प्रभुत्व को बनाये रखने के लिये वे गुटों का निर्माण करते हैं। ऐसा नहीं है कि एक जाति के सभी सदस्य एक ही गुट में सम्मिलित हो जाते हैं, अपितु एक ही जाति में एकाधिक गुट भी हो सकते हैं और उनके बीच का पारस्परिक अन्तर्गुट सम्बन्ध औपचारिक मित्रता से लेकर खुलकर शत्रुता तक हो सकता है। बहुसंख्यक जाति–समूह द्वारा इस प्रकार गुट बना लेने का परिणाम यह होता है कि अन्य अल्पसंख्यक जाति–समूह भी अपने–अपने हितों की रक्षा अथवा कम से कम प्रभुत्व गुट से अपना बचाव करने के लिये अलग गुटों का निर्माण कर लेते हैं।

गुटों के बीच का सम्बन्ध तनावपूर्ण एवं संघर्षपूर्ण उस द"ाा में होता है जबकि गांव का प्रभुत्व गुट उच्च जाति का होता है और निम्न जातियों पर अन्याय व अत्याचार का सिलसिला चलता रहता है। इसके फलस्वरूप निम्न जातियों में भी गुट बन जाते हैं। उसी प्रकार जब गांव में प्रभुत्व गुट जाटव, अहीर आदि निम्न जाति का होता है तो वे अपनी गुट शक्ति के आधार पर उनके ऊपर उच्च जातियों द्वारा लादे गये प्रतिबन्धों को न केवल अस्वीकार करते हैं अपितु उच्च जातियों से नाना उपाय से बदला भी लेते रहते हैं फलतः संघर्ष होता है, लाठियां चलती हैं और सिर फूटते हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट हैं कि भारतीय गांवों में विभिन्न जातियों की संख्या शक्ति गुट निर्माण का ही नहीं अपितु संघर्ष और प्रभुत्व का भी एक महत्वपूर्ण आधार है। यह स्वाभाविक बात है कि जब संख्या शक्ति के आधार पर कोई जाति अपने गुटों का निर्माण करती है तो उस प्रभुत्व समूह का सामना करने के लिये, उनके अत्याचारों पर रोक लगाने के लिये तथा अपने हितों की रक्षा के लिये अन्य जाति समूह भी अपना–अपना गुट बना लें। उत्तर भारत के एक गांव का अध्ययन करते हुये ऑस्कर लेविस ने उस जाति के प्रभुत्व समूह जाटों में 6, ब्राह्मणों में 1, चर्मकारों में 2, सफाईकर्मियों में 2 तथा कुम्हारों में 1 गुट का उल्लेख किया है।

(ब) जातीय संख्या शक्ति के अलावा श्रीनिवास के अनुसार, आर्थिक व राजनैतिक शक्ति भी भारतीय गांवों में गुटों के बनने का आधार होता है। वि"िाष्ट आर्थिक और राजनैतिक शक्ति सम्पन्न समूह अपनी–अपनी शक्ति को बनाये रखने के लिये गुटों का निर्माण करते हैं और जहां एक ओर अपने से कम शक्ति"ाली गुटों को दबाये रखने का प्रयत्न करते हैं, वहीं दूसरी ओर अपने बराबर शक्ति वाले गुटों के साथ औपचारिक सम्बन्ध बनाये रखते हुये भी अप्रत्यक्ष हथकण्डों द्वारा मौका मिलने पर उन्हें नीचा दिखाने का प्रयत्न करते हैं। चुनाव के समय यह तनाव व संघर्ष उभरकर सामने आ जाता है जबकि विभिन्न राजनैतिक गुट अपने लिये अधिकाधिक वोट प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। फलतः अक्सर संघर्षपूर्ण स्थिति उत्पन्न हो जाती है और खूब डटकर लाठी व बन्दूकें चलती हैं।

(स) उपरोक्त आधार व कारणों के अलावा भारतीय गांवों में विभिन्न झगड़ों के आधार पर भी गुटों का निर्माण हो जाता है। ऑस्कर लेविस ने रामपुर ग्राम का अध्ययन करके निम्न प्रकार के झगड़ों को भी गुटों के बनने का कारण बताया है। वे झगड़े हैं–

(1) पुत्र को गोद लेने पर झगड़ा।
(2) भूमि के उत्तराधिकार का झगड़ा।
(3) यौन सम्बन्धी झगड़े।
(4) भूमि, सिंचाई, मकान और जायदाद सम्बन्धी झगड़े।
(5) हत्यायें।
(6) विविध जातीय झगड़े।

इन झगड़ों में कुछ परिवार के सदस्य एक साथ मिलकर एक गुट बना लेते हैं जबकि कुछ अन्य परिवार के सदस्य भी एक साथ मिलकर एक दूसरा गुट बनाकर प्रथम गुट का विरोध करते हैं और उससे मोर्चा लेते हैं।

(2) **संगठन**–भारतीय गांवों के गुटों के आधार तथा प्रकृति का वर्णन करने के प"चात् अब हम उनके संगठन के विषय में भी कुछ बता सकते हैं। गुटों का संगठन जातीय या दलीय आधार पर होता है। एक गुट के सदस्यों का सामान्य हित वह सूत्र होता है जो कि उन्हें संगठित करने को बाध्य करता है क्योंकि संगठन के बिना हितों की रक्षा नहीं हो सकती। चुनाव आदि के समय गुटों का आन्तरिक संगठन और दृढ़ हो जाता है। गुट समाज वास्तव में सामाजिक विभाजन की ओर संकेत करता है जिसमें विभिन्न समूह अपने–अपने वि"ाष्ट उद्दे"यों या स्वार्थों की पूर्ति के लिये आपस में ही बंट जाते हैं और अपने को इस रूप में संगठित करने का प्रयास करते हैं कि उन स्वार्थों की अधिकतम पूर्ति सम्भव हो। गुटों के संगठन का आधार परिवार होता है अर्थात कुछ परिवार के सदस्य एक साथ मिलकर एक गुट का निर्माण करते हैं। परन्तु एक गुट में कितने परिवार होंगे यह संख्या नि"चत नहीं होती। कभी कभी तो यह भी देखा जाता है कि एक ही परिवार के विभिन्न सदस्य अलग–अलग गुट से सम्बन्धित हैं। जैसा कि पहले ही लिखा जा चुका है भूमि के उत्तराधिकार सम्बन्धी मामले, सिंचाई से सम्बन्धित मामले, जातिवाद, चुनाव जीतना, यौन सम्बन्धी झगड़े आदि के आधार पर एक गुट न केवल पनपता है अपितु संगठित भी हो जाता है।

(3) **पारस्परिक सम्बन्ध**–गुट समूहों के पारस्परिक सम्बन्ध हमे"ाा तनावपूर्ण ही होंगे, ऐसी बात नहीं है। उनका सम्बन्ध मित्रतापूर्ण भी हो सकता है। उदाहरणार्थ, एक गुट के पास खेत या जमीन है और दूसरे गुट के सदस्य उस जमीन पर काम करते हैं तो इन दोनों गुट में अच्छे सम्बन्ध हो सकते हैं। ब"ार्ते भू–स्वामी गुट दूसरे गुट का आर्थिक शोषण न करे। चुनाव में लड़ाई–झगड़े व मुकदमेबाजी में सहायता करने वाले गुटों के पारस्परिक सम्बन्ध भी घनिष्ठ हो जाते हैं–मित्र गुट, शत्रु गुट और तटस्थ गुट। मित्र गुटों में पारस्परिक सम्बन्ध कम से कम औपचारिक तौर पर अच्छे व तनाव रहित होते हैं। ये एक दूसरे से मिलते जुलते रहते हैं और आव"यकता पड़ने पर एक दूसरे को कुछ मदद भी कर सकते हैं। इसके विपरीत

शत्रु गुटों में पारस्परिक सम्बन्ध बहुत ही तनावपूर्ण एवं संघर्षपूर्ण होता है। वे अक्सर लाठी और बन्दूक से ही एक दूसरे से बात करते हैं। इसके फलस्वरूप उनमें फौजदारी और कत्ल की घटनायें बहुधा घटित हो जाती हैं और दो शत्रु गुटों की अक्सर मुलाकात अदालत में ही होती है। इन दोनों प्रकार के गुटों के विपरीत तटस्थ गुट किसी झगड़े फसाद में नहीं पड़ना चाहता और न ही किसी से कोई सहायता लेकर उसकी दया का पात्र बनना चाहता है। इसलिये यह गुट अपने को आत्म–निर्भर बनाने का प्रयत्न करता है और साथ ही किसी का कुछ बिगाड़ना भी नहीं चाहता। इसीलिये ऐसे गुटों का पारस्परिक सम्बन्ध अच्छा ही होता है।

(4) **अकार्य और प्रकार्य**–गुटों के कुछ अकार्य होते हैं और उनमें सबसे प्रमुख अकार्य यह है कि ये गुट समाज को कुछ स्वार्थ समूहों में न केवल बांट देते हैं अपितु उनमें गला–काट प्रतिस्पर्धा, ईर्ष्या, तनाव, लड़ाई–झगड़े यहां तक कि हत्या तक की घटनाओं को बढ़ावा देते हैं। गुटों से ये हानियां होते हुये भी इनके कुछ अच्छे परिणाम (प्रकार्य) भी होते हैं। गुटों के माध्यम से वि"ाष्ट आव"यकताओं की पूर्ति, पारस्परिक सहयोग, अहं की सन्तुष्टि, हम की भावना का विकास आदि सम्भव होता है। कहा जाता है कि गांवों में चलने वाली सामुदायिक विकास योजनाओं के विस्तार में गुट समूह सहायक हो सकते हैं। यह तो हम जानते ही हैं कि प्रत्येक गुट का एक नेता होता है जो उस गुट की सभी क्रियाओं को संचालित करता है और अपने गुट के सदस्यों पर अपना प्रभाव डाल सकता है। लोग उसकी बात मानते व स्वीकार करते हैं। यदि हम एक विकास कार्यक्रम के सम्बन्ध में एक गुट नेता को समझाकर राजी करने में सफल हो जायें तो फिर उसके माध्यम से ही उस गुट के अन्य सदस्यों का सहयोग भी हमें सरलता से मिल सकता है। इस प्रकार विकास कार्यक्रमों के विस्तार में मदद मिल सकती है।

पर कुछ भी हो, गुटों की क्रिया"ाीलता के कारण भारतीय गांवों में लड़ाई–झगड़ा, हत्या, ईर्ष्या व तनाव का जो वातवरण उत्पन्न हो जाता है उसे किसी भी अर्थ में स्वस्थ एवं लाभदायक नहीं कहा जा सकता। इससे भारतीय ग्रामीण समुदायों के पुनर्निर्माण का कार्य बहुत कुछ धीमा पड़ गया है। संगठन, एकता व प्रगति के पथ पर गुटबाजी एक बड़ी बाधा है।

11.11 बोध प्र"न–02

---

1. ग्रामीण गुट किसे कहते हैं ?
2. गुट समाज की प्रकृति समझाईये।
3. गुट समाज के रूप में भारतीय ग्रामों का वि"लेषण कीजिऐ।

11.12 सारां"ा

इस इकाई में हमने ग्रामीण समाज"ाास्त्र की दो महत्वपूर्ण अवधारणाओं प्रभु जाति और ग्रामीण गुट को समझने का प्रयास किया। स्पष्ट हुआ कि एक जाति तब प्रभु

जाति कही जाती है, जब वह संख्या के आधार पर गांव या स्थानीय क्षेत्र में शक्ति"ाली हो और प्रभाव"ाली आर्थिक व राजनैतिक शक्ति रखती हो। यह आव"यक नहीं है कि वह परम्परागत जाति पदक्रम सोपान में सर्वोच्च जाति ही हो। एम0 एन0 श्रीनिवास, बी0 आर0 चौहान, आनन्द चक्रवर्ती, के0 एल0 "ार्मा तथा ऑस्कर लेविस आदि अनेक ग्रामीण समाज"ाास्त्रियों ने प्रभु जाति की अवधारणा का अध्ययन किया है। हालांकि एस0 सी0 दुबे, डी0 एन0 मजूमदार व एंथनी कार्टर आदि विद्वानों ने प्रभु जाति की अवधारणा की आलोचना भी की है।

यह बात भी स्पष्ट हुई कि गांव में मैत्री सम्बन्धों के आधार पर गुट भी पाये जाते हैं। एक गुट के सदस्य मुकदमें लड़ने तथा विवाह एवं दाह संस्कार आदि के अवसर पर एक दूसरे की सहायता करते हैं। मुख्य रूप से ऑस्कर लेविस ने ग्रामीण गुट की अवधारणा का अध्ययन किया है। सारां"ा के रूप में हम कह सकते हैं कि गुटों की उपस्थिति ग्रामीण जीवन में परम्परात्मक घटना है।

10.13 प्रयुक्त शब्दावली

प्रभु जाति : एक जाति को प्रभु जाति तब कहा जाता है जब वह संख्यात्मक आधार पर किसी गांव अथवा स्थानीय क्षेत्र में शक्ति"ाली हो तथा आर्थिक एवं राजनैतिक रूप से अपने प्रभाव का प्रबल रूप से प्रयोग करती हो। यह आव"यक नहीं है कि परम्परागत जातीय संस्तरण में वह सर्वोच्च जाति के रूप में ही हो।

ग्रामीण गुट : ग्रामीण समाज में क्षेत्र तथा जातियों के आधार पर स्थापित होने वाले मैत्री सम्बन्धों के द्वारा जिन समूहों का निर्माण होता है, उन्हें ही ग्रामीण गुट कहा जाता है।

11.14 अभ्यास प्र"न

1. प्रभु जाति की अवधारणा किस समाज"ाास्त्री ने दी है–
   (क) एम0 एन0 श्रीनिवास (ख) ए0 आर0 देसाई
   (ग) बृजराज चौहान (घ) एस0 सी0 दुबे
2. प्रभु जाति के सम्बन्ध में श्रीनिवास ने किस गांव का अध्ययन किया है–
   (क) तंजौर (ख) शमीरपेट
   (ग) रामपुरा (घ) कि"ानगढ़ी
3. प्रभु जाति की वि"ोषता है–
   (क) संख्यात्मक शक्ति (ख) आर्थिक व राजनैतिक प्रभुत्व
   (ग) आधुनिक ि"ाक्षा व नवीन व्यवसाय (घ) उपरोक्त सभी
4. 'दि डोमिनेन्ट कास्ट इन ए रीजन ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया' अध्ययन किसका है–
   (क) ए0 सी0 मायर (ख) ऑस्कर लेविस
   (ख) आन्द्रे बैते (घ) मैकिम मेरियट

5. 'कास्ट डोमिनेन्स एण्ड फेक्”ानलिज्म : कॉन्ट्रिब्यू”ान टू इण्डियन सोि”ायोलॉजी' पुस्तक के लेखक हैं–

(क) एस0 सी0 दुबे (ख) ए0 आर0 देसाई

(ग) एम0 एन0 श्रीनिवास (घ) आन्द्रे बैते

6. ऑस्कर लेविस ने उत्तरी भारत के किस गांव के अध्ययन के दौरान गुट की अवधारणा का प्रयोग किया–

(क) शमीरपेट (ख) रामपुरा

(ग) रामपुर (घ) तंजौर

11.15 अभ्यास प्र”नों के उत्तर

---

1 (क) एम0 एन0 श्रीनिवास 2 (ग) रामपुरा 3 (घ) उपरोक्त सभी 4 (क) ए0 सी0 मायर 5 (क) एस0 सी0 दुबे 6 (ग) रामपुर।

11.16 निबन्धात्मक प्र”न

1– प्रभु जाति की अवधारणा की आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

2. भारतीय ग्रामों को गुट समाज के रूप में प्रस्तुत कीजिए।

11.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

–अटल, योगे”ा, 'द चेन्जिंग फ्रंटिअर्स ऑफ कास्ट' (1968), ने”ानल पब्लि”िांग हाउस, देहली।

–बेली, एफ0 जी0, 'कास्ट एण्ड दि इकोनोमिक फ्रंटिअर' (1957), यूनिवर्सिटी प्रेस, मेनचेस्टर।

–गफ0, ई0 के0,'कास्ट इन तंजौर विलेज', 'इन लीच (एडि0) आस्पेक्ट्स ऑफ कास्ट इन साउथ इण्डिया, सिलोन एण्ड नॉर्थ वेस्ट पाकिस्तान, (1960), कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी, कैम्ब्रिज ।

–मजूमदार, डी0 एन0, 'कास्ट एण्ड कम्यूनिके”ान इन एन इण्डियन विलेज' (1958), ए”िाया पब्लि”िांग हाउस, बॉम्बे।

–मेरियट, मैकिम, 'विलेज इण्डिया' (1961), ए”िाया पब्लि”िांग हाउस, बॉम्बे।

11.18 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

–देसाई, ए0 आर0, 'भारतीय ग्रामीण समाज”ाास्त्र' (1997), रावत पब्लिके”ान्स, जयपुर।

–दोषी, एस0 एल0 एण्ड पी0 सी0 जैन, 'रूरल सोि”ायोलॉजी' (1999), रावत पब्लिके”ान्स, जयपुर।

इकाई 12 ग्रामीण भाक्ति संरचना और ग्रामीण नेतृत्व
Rural Power Structure and Leadership

इकाई की रूपरेखा

12.1 उद्दे"य
12.2 प्रस्तावना
12.3 समाज में शक्ति संरचना
12.4 भारतीय गांवों में शक्ति संरचना
12.5 शक्ति का परिवर्तन"ाील चरण
12.6 बोध प्र"न–01
12.7 ग्रामीण नेतृत्व का अर्थ एवं परिभाषाऐं
12.8 ग्रामीण नेतृत्व की वि"ोष्ट प्रकृति
12.9 ग्रामीण नेतृत्व के सामान्य गुण
12.10 ग्रामीण नेता के कार्य
12.11 ग्रामीण नेताओं के प्रकार
12.12 ग्रामीण नेतृत्व के विषय में कुछ सुझाव
12.13 भारतीय ग्रामों में नेतृत्व का उभरता हुआ प्रतिमान
12.14 बोध प्र"न–02
12.15 सारां"ा
12.16 प्रयुक्त शब्दावली
12.17 अभ्यास प्र"न
12.18 अभ्यास प्र"नों के उत्तर
12.19 निबन्धात्मक प्र"न
12.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
12.21 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

12.1 उद्दे"य

इस इकाई के अध्ययन के प"चात आप यह जान सकेंगे कि–

–ग्रामीण शक्ति संरचना से क्या अभिप्राय है ?
–शक्ति संरचना में किस प्रकार परिवर्तन आ रहे हैं ?
–ग्रामीण नेतृत्व किसे कहते हैं ?
–ग्रामीण नेतृत्व के गुण कौन–कौन से हैं ?
–ग्रामीण नेता के कौन–कौन से कार्य हैं ?
–ग्रामीण नेतृत्व का वर्तमान स्वरूप किस प्रकार का है ?

12.2 प्रस्तावना

भारतीय ग्रामीण समाज में शक्ति संरचना, ग्रामीण अध्ययनों का महत्वपूर्ण विषय रही है। अल्टेकर और पुरी, हेनरी मेन, ऑस्कर लेविस और योगेन्द्र सिंह ने भारतीय ग्रामों में शक्ति संरचना के व्यापक नेतृत्व के प्रतिमानों की अध्ययन पद्धति का उल्लेख किया है। इनके साथ ही चन्द्र प्रभात, लीला दुबे और एल0 पी0 विद्यार्थी जैसे समाज"ाास्त्रियों ने ग्रामीण शक्ति संरचना के आधार पर निर्धारित होने वाले ग्रामीण नेतृत्व को अपने अध्ययनों में सम्मिलित किया है। इसका कारण यही है कि ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना में नेतृत्व का प्रमुख स्थान है। जे0 बी0 चिताम्बर का कहना है कि प्रत्येक समाज की शक्ति संरचना में कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो लोगों को प्रोत्साहित करते हैं और उन्हें प्रेरणा देते हैं, उनका मार्गद"ान करते हैं या फिर लोगों को किया करने के लिये प्रभावित करते हैं। ऐसी किया को हम नेतृत्व और ऐसे व्यक्तियों को हम नेता कहते हैं। भारतीय ग्रामीण समाज में नेतृत्व की अवधारणा और नेताओं के कार्यों में वर्तमान समय में परिवर्तन का दौर चल रहा है। इस इकाई में हम ग्रामीण शक्ति संरचना, ग्रामीण नेतृत्व व नेतृत्व में आ रहे परिवर्तनों को सामने ला रहे हैं।

12.3 समाज में शक्ति संरचना

सर्व–सामान्य मनुष्य अथवा समूहों के अन्तर्सम्बन्धों में लाए जा रहे परिवर्तनों को समझने के लिए वर्तमान–"ाक्ति संरचना को जानना आव"यक है। राजनीतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण संगठनों में वे सभी समूह आ जाते हैं जो जनसम्बद्धता अधिकारी तंत्र (नौकर"ाही), विधान मण्डल, कानूनी न्यायालय और अन्य संगठनों से सम्बन्ध रखते हैं। इसमें से नौकर"ाही को, जिसमें नेता तथा न्यायपालिका भी सम्मिलित हैं, प्रायः राज्य के रूप में देखा जाता है। चूंकि इन संगठनों का कार्य क्षेत्र राज्य के साथ सम्बद्ध अन्य संगठनों की अपेक्षा व्यापक होता है इसलिये हम सर्व सामान्य मनुष्य शब्द का प्रयोग करते हैं जिसमें राज्य के राजनीतिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाले सभी समूह आ जाते हैं।

वास्तव में शक्ति आचरण की दृष्टि से संगठित प्रत्येक समूह एक प्राधिकार होने के साथ–साथ नियंत्रण संरचना को भी प्रदर्"ात करता है। वस्तुतः एक सर्व–सामान्य मनुष्य न केवल सत्ता का वरन सभी मूल्यों की एक अन्तर्वैयक्तिक प्रकिया का भी प्रद"ान करता है। इस प्रकार सर्व सामान्य मनुष्य राजनीतिक दृष्टि से एक संगठित समाज होता है। कार्ल मानहीम के अनुसार 'सर्व सामान्य मनुष्य से हमारा तात्पर्य उन सभी समूहों तथा नेताओं से है तो समाज के संगठन में सक्रिय भूमिका पूर्ण करते हैं'। समाज"ाास्त्रीय दृष्टि से समझने पर सर्व–सामान्य मनुष्य इन सभी राजनीतिक और राजनीति सम्बन्धी इकाइयों में निहित रहता है। जब हम 'राजनीतिक सम्बद्ध' पद का प्रयोग करते हैं तो वहां राजनीतिक शब्द का प्रयोग

जनता के लिये होता है। साथ ही इसमें परिवार अथवा रोजगार के विषय भी आ जाते हैं। कार्ल मानहीम यह भी कहते हैं कि राजनीतिक समाज"ाास्त्री का कार्य एक प्रदत्त सामाजिक संरचना में व्याप्त सभी राजनीतिक समूहों के मध्य सहयोग के प्रकारों का वर्णन करना होता है। यहां की प्रमुख समाज"ाास्त्रीय समस्या समूहों तथा उनके नियंत्रण के सम्बन्धों की होती है जो प्रजातांत्रिक अर्थों में पद सोपानित संघीय अथवा समन्वयकारी प्रकार की भी हो सकती है।

दूसरे शब्दों में, हम उन सभी समूहों पर विचार करेंगे जो शासन करने, नेतृत्व करने, समन्वय करने आदि की अनेक राजनीतिक प्रक्रियाओं को जोड़ते हैं। इस वि"लेषण के अन्तर्गत राजनीतिक समाज"ाास्त्र को यह अवसर मिलता है कि एक ओर वह उन सामाजिक शक्तियों की ओर उचित ध्यान दे जो परम्परात्मक दृष्टि से राज्य द्वारा नियंत्रित नहीं है और अधिकारी तंत्र की सीमा में नहीं आते और दूसरी ओर राज्य तथा समाज के पुराने द्विवाचक विचार को समाप्त कर सके।

'"ाक्ति' के अर्थ की राजनीतिक व मनोवैज्ञानिक ढंग से पृथक रूप में व्याख्या की जाती है जबकि समाज"ाास्त्रीय ढंग से शक्ति की व्याख्या बिलकुल पृथक प्रकार से की जाती है। वास्तव में शक्ति को सामाजिक संरचना में राजनीतिक व्यवस्था से मिलता जुलता ही नहीं मानना चाहिये बल्कि इसमें संरचना और स्तरीकरण का समन्वयात्मक पक्ष भी समाहित है। योगेन्द्र सिंह ने शक्ति की व्याख्या करते हुए लिखा है कि '"ाक्ति की समाज"ाास्त्रीय व्याख्या में समाज के भीतर अन्तःक्रिया करने वाले, ऐसे सभी व्यक्तिगत, सामाजिक, ऐतिहासिक तथा आर्थिक तत्व सम्मिलित किऐ जा सकते हैं जिनके परिणामस्वरूप प्रभुत्व और अधीनता अथवा स्वार्थों का नियंत्रण और नियंत्रित व्यक्तियों की और नियंत्रकों ,अर्थात शक्तिधारी व्यक्तियों की संरचना के अन्तर्गत सामाजिक सम्बन्धों की एक विधि का विकास होता है।'

वास्तव में '"ाक्ति' वह केन्द्र बिन्दु है जो सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक गत्यात्मकता को प्रभावित करती है। सामाजिक संतुलन और असंतुलन की समस्त प्रक्रियायें बदलती हुई शक्ति संरचना को केन्द्र में रखकर ही समझी जा सकती हैं।

12.4 भारतीय गांवों में शक्ति संरचना

भारत एक कृषि प्रधान दे"ा होने के नाते भूमि के स्वामी के पास शक्ति केन्द्रित रही है। अंग्रेजी शासनकाल में शक्ति–संरचना जमींदारी व्यवस्था पर आधारित थी। जमींदार ही संपूर्ण ग्रामीण–आर्थिक व्यवस्था को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से संचालित एवं नियंत्रित करता था। इस तरह अंग्रेजी शासनकाल में ग्रामीण शक्ति–संरचना सामन्ती समाज के हाथों में थी। इन जमींदार और ताल्लुकेदारों के पास असीमित कृषिभूमि थी। ये अथाह सम्पत्ति के स्वामी थे। सम्पूर्ण ग्रामीण आर्थिक व्यवस्था और जातीय संगठन पर इनका एकाधिकार था। इसलिए ये भू–स्वामी अत्यधिक शक्ति"ाली थे। '"ाक्ति' का प्रतिनिधित्व ये सामन्त ही करते थे। पंचायती

व्यवस्था पर भी इनका काफी प्रभाव व दबाव था। अंग्रेजी सरकार ने जमीदारों को मालगुजारी वसूल करने का अधिकार प्रदान किया और इसी नीति ने इन्हें अत्यधिक शक्ति"ाली बना दिया। जमींदार और ताल्लुकेदारों को भूमि के स्वामित्व में न्यायिक अधिकार भी दिये गये। ये व्यक्ति ही भूमि के स्वामी समझे जाते थे और बाकी लोग 'रैयत' कहलाते थे जिन्हें मात्र भूमि के जोतने और लगान देने के एवज में उस पर केवल खेती करने का अधिकार था। सेवक और शूद्र जातियां भी पूर्ण रूप से जमींदारों के आदे"ाों के अनुसार कार्य करती थीं। इस तरह अंग्रेजी शासनकाल में सामन्तों के पास असीमित अधिकार और शक्ति थी। जैसा चे चाहते थे वैसा ही गांवों में होता था। उनकी इच्छा के विरूद्ध गांव में कुछ भी घटित नहीं हो सकता था।

गांव पंचायतें—गांव पंचायतें ग्रामीण समाज की शक्ति की महत्वपूर्ण साधन रही हैं किन्तु इस संस्था पर भी जमींदारों का वर्चस्व था। जमीदारों की राय लेकर ही इसमें प्रतिनिधि रखे जाते थे चाहे वे किसी भी वर्ग और जाति के क्यों न हों। जमीदारों के वि"वासपात्र और सेवक ही इसमें स्थान प्राप्त करते थे। ये एक ऐसी महत्वपूर्ण संस्था थी जो संपूर्ण ग्रामीण व्यवस्था को नियंत्रित रखती थी। यह जाति पंचायतों की अपीलें भी सुनती थी और भूमि—संबंधी झगड़े भी।

जाति पंचायतें—ग्रामीण संरचना में "ाक्ति के रूप में जाति पंचायतों का अपना स्थान रहा है। ये वि"ोष जातियों की रक्षा करती थीं। ये विभिन्न जातियों के व्यक्तियों की उनके शत्रुओं से रक्षा करती थीं। यद्यपि अंग्रेजी शासनकाल में सामन्तों को अत्याधिकार देकर जाति पंचायतों को शक्तिहीन बना दिया गया था। इनका अस्तित्व समाप्त हो गया था। अंग्रेजी पुलिस व्यवस्था ने भी जाति पंचायतों की शक्ति और संगठन को काफी आघात पहुँचाया। जमींदारी समाप्त होने तक जाति पंचायतें मृत समान थीं। नीची जातियों में ही इन्हें विघटित रूप में देखा जाता था। जाति पंचायतों का मुख्य कार्य अपनी जातियों की रक्षा करना और यदि कोई व्यक्ति जाति नियमों का उल्लंघन करता है तो उसे दण्ड देना था। जातिगत नीतियों को बनाये रखने में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। आज गांव पंचायत व्यवस्था ने अपनी संकीर्ण सीमाऐं बना ली हैं। अपनी जाति की रक्षा करना इनका मुख्य उद्दे"य है और दूसरी जातियां यदि इन्हें प्रताड़ित करती हैं तो उनका सामना करना है। इन सबके कारण ग्रामीण क्षेत्र में जातिगत गुटबंदी अधिक हो गई है। ये पंचायतें अब शक्ति को हथियाने में लगी हुई हैं जिससे विभिन्न जातियों के मध्य तनाव, संघर्ष व घृणा में वृद्धि हो रही है।

12.5 शक्ति का परिवर्तन"ाील चरण

ग्रामीण समाज की निर्धनता, दरिद्रता और पिछड़ेपन का मूल कारण जमींदारी प्रथा और सामन्ती राज्य था। इस वर्ग ने ग्रामीण निर्धन, अ"िाक्षित अन्धवि"वासी और भाग्यवादी ग्रामीणों का शताब्दियों तक शोषण किया। इसलिये स्वतंत्रता के प"चात जमींदारी प्रथा को समाप्त करने के लिए प्रत्येक राज्य में कानून बनाए गए। सन 1948 में उत्तर प्रदे"ा पंचायत राज्य अधिनियम और सन 1951 में उत्तर प्रदे"ा

जमींदारी उन्मूलन अधिनियम बनाये गये। जमींदारी प्रथा समाप्त होते ही भू–स्वामी और जमींदारी की शक्ति में केवल कमी ही नहीं आई बल्कि आज उनकी शक्ति समाप्त हो गयी है। इसके स्थान पर गांव पंचायतों और न्याय पंचायतों की स्थापना हुई है जो ग्रामीण प्र"ाासन के लिये है। उनके लड़ाई झगड़ों का समाधान करती है। आज ग्रामीण संरचना में शक्ति का परम्परात्मक स्वरूप समाप्त हो गया है। गांव पंचायत और सहकारी समितियों के पदाधिकारियों के चुनाव होते हैं। इसलिए नेता ग्रामवासियों को अपने पक्ष में करने के लिए जातिवाद, गुटबंदी, पार्टीवाद आदि चीजों के माध्यम से चुनाव जीतने का प्रयास करता है।

स्वतंत्रता के प"चात ग्रामीण शक्ति की संरचना में केवल परम्परात्मक ढांचा ही नहीं बदला वरन उसके स्थान पर नवीन आयामी ढांचा भी उत्पन्न हुआ है। भूमि के आधार पर शक्ति को प्राप्त करने की प्रथा समाप्त हो गयी है। जमींदारों और सामन्तों के हाथ से शक्ति निकलती जा रही है, शोषित वर्ग, अल्प संख्यक वर्ग, पिछड़ा वर्ग, निम्न और निर्धन वर्ग में समय के साथ जागरूकता उत्पन्न हुई है। वे अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने लगे हैं। ग्रामीण शक्ति आज वास्तविक रूप में गांव के एम0 एल0 ए0, एम0 पी0 और उसी क्षेत्र के मंत्रियों के हाथों में है। लोकतांत्रिक पद्धति से आज शक्ति को प्राप्त किया जाता है। जातिगत सम्पत्ति के आधार पर और भू स्वामी होने के कारण आज कोई व्यक्ति एम0 एल 0ए0, एम0 पी0 या मंत्री नहीं बन सकता है। यहां तक कि वह गांव का प्रधान भी नहीं बन सकता है जब तक कि वह चुनाव में विजयी नहीं होता है। इस तरह स्वतंत्रता के प"चात ग्रामीण शक्ति संरचना का प्रतिमान पूर्णतया परिवर्तित हो गया है। इस शक्ति को हथियाने के लिए ग्रामीण क्षेत्र में जातिवाद, गुटबंदी, पार्टीबंदी, दबाव आदि में अत्यधिक बृद्धि हुई है। इसने संपूर्ण गांव के व्यक्तियों में अलगाव, संघर्ष, प्रतिस्पर्धा, मनमुटाव और तनाव जैसी चीजों को उत्पन्न किया है। ग्रामीण समाज भी इसीलिए नगर की भांति विघटित हो गए हैं।

12.6 बोध प्र"न–01

---

1. शक्ति संरचना की अवधारणा समझाइये।
2. भारतीय गांवों में शक्ति संरचना की स्थिति को स्पष्ट कीजिए।
3. ग्रामीण शक्ति संरचना किस प्रकार परिवर्तित हो रही है ? समझाइये।

ग्रामीण नेतृत्व (Rural Leadership)

व्यक्तित्व की अतिरिक्त प्रतिभा तथा सामाजिक परिस्थितियाँ मनुष्य में नेतृत्व जागृत कर देती हैं। वह नेता बन जाता है। नेतृत्व एक सार्वभौमिक एवं वि"वव्यापी घटना है। जहां जीवन है वहीं समाज है और जहां समाज है वहां नेतृत्व है। एस0 सी0 दुबे का कथन है कि यूं तो नेतृत्व की अवधारणा मानव समाज में ही नहीं बल्कि प"ाु समाज में भी आरम्भ से ही प्रचलित है फिर भी व्यावहारिक रूप में

ग्रामीण नेतृत्व ग्रामीण पृष्ठभूमि में बहुत कुछ आधुनिक है। परम्परागत रूप में गांव में सरपंच आदि नेतृत्व के स्पष्ट प्रतीक थे पर आधुनिक समय में ग्रामीण नेतृत्व को एक नवीन रूप प्राप्त हो गया है। वास्तविकताा यह है कि ग्रामों के नगरीकरण ने तथा शहर के सम्पर्क ने नेतृत्व के रूप को आज नई दि"ाा प्रदान की है।

12.7 ग्रामीण नेतृत्व का अथ एवं परिभाशाऐं

लॉपीयर तथा फार्न्सवर्थ के अनुसार, 'नेतृत्व वह व्यवहार है, जो दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार को उससे कहीं अधिक प्रभावित करता है जितना कि उन दूसरे लोगों का व्यवहार नेता को प्रभावित करता है।' इस प्रकार जब एक सेनाध्यक्ष आदे"ा देता है और उस आदे"ा का पालन होता है तो वह नेतृत्व का निर्दे"ान है। इसी प्रकार जब ि"ाक्षक बोलते हैं और विद्यार्थीगण सुनते हैं तो ि"ाक्षक नेतृत्व करते हैं, और जब मां बच्चे को पैर धोने के लिये कहती है और बच्चा तदनुसार व्यवहार करता है तो मां का व्यवहार नेतृत्व का ही परिचायक होता है।

उपर्युक्त परिभाषा से यह स्पष्ट है कि नेतृत्व के दो पक्ष होते हैं–एक तो वह जो कि नेतृत्व करता है, अर्थात नेता और दूसरे वे लोग जो कि उस नेतृत्व को ग्रहण करते हैं, अर्थात अनुयायी लोग। लोकप्रिय धारणा यह है कि केवल नेता का व्यवहार ही अनुयायियों को प्रभावित करता और चूंकि प्रथम पक्ष नेता है इसलिये वह दूसरों के प्रभावों से विमुक्त है, अर्थात नेता पर अनुयायियों का कोई प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि नेता के पद पर आसीन व्यक्ति अधिक कु"ाल, योग्य, ज्ञानी और अनुभवी होता है। परन्तु यह धारणा जैसा कि उपर्युक्त परिभाषा से स्पष्ट है, गलत है। नेतृत्व नेता और अनुयायियों के बीच पाये जाने वाले वि"िाष्ट सम्बन्धों का परिचायक है। यह सम्बन्ध एकतरफा नहीं होता अर्थात नेतृत्व उभयपक्षीय या दोतरफा विषय है। नेतृत्व के सम्पूर्ण प्रतिमान में नेता और अनुयायियों का पारस्परिक सम्बन्ध अभिव्यक्त होता है। यदि नेता अनुयायियों के व्यवहारों को प्रभवित करता है तो अनुयायियों के व्यवहारों द्वारा नेता स्वयं भी प्रभावित होता रहता है। इतना अव"य है कि इस पारस्परिक प्रभाव की मात्रा में अन्तर होता है। नेता पर अनुयायियों के व्यवहारों का प्रभाव जितना पड़ता है उससे कहीं अधिक प्रभाव अनुयायियों पर नेता के व्यवहारों का पड़ता है और नेतृत्व की अवधारणा के बने रहने के लिये यह आव"यक भी है।

ग्रामीण नेतृत्व को भी इसी संदर्भ में समझा जा सकता है। पार्क ने लिखा है कि ग्रामीण और नागरिक नेतृत्व में मुख्य अन्तर है कि ग्रामीण नेता अपने अनुयायियों से अपेक्षाकृत कम प्रभावित होता है, क्योंकि ग्रामवासियों में ि"ाक्षा व राजनैतिक जागरूकता कम होती है नगरों में इसके विपरीत होता है गांव का नेता एक वि"ोष सम्मान सूचक व्यक्तित्त्व का प्रतिनिधित्व करता है, साथ ही अनुयायी अि"ाक्षित, परम्परावादी तथा राजनैतिक तौर पर कम जागरूक होने के कारण अपने नेता को अधिक प्रभावित नहीं कर पाते । ग्रामीण नेता शहरों के नेताओं की अपेक्षा अधिक प्रभाव"ाील है। यद्यपि ग्रामीण नेतृत्व का क्षेत्र शहरों की तुलना में कुछ कम ही होता है। एक विद्वान के अनुसार ग्रामीण नेतृत्व में वि"ोषीकरण का बहुधा अभाव होता है।

शहर का नेता एक वि"ोष क्षेत्र का नेता है परन्तु गांव का नेता परिवार से लेकर राजनैतिक़ मामले तक अपने नेतृत्व को विस्तारित कर सकता है। जिमरमैन के अनुसार ग्रामीण नेतृत्व की एक और वि"ोषता यह है कि गांव में नेता होने के लिये समुदाय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध अधिक आव"यक है। नगरों में नेतृत्व अप्रत्यक्ष भी हो सकता है। ग्रामीण समुदाय का क्योंकि आकार छोटा होता है और घनिष्ठता पाई जाती है इसलिये वहां नेतृत्व प्रत्यक्ष होता है।

12.8 ग्रामीण नेतृत्व की वि"िाष्ट प्रकृति

ग्रामीण नेतृत्व का अर्थ तथा ग्रामीण 'नेतृत्व' व 'प्रभुत्व' के अन्तर व सम्बन्ध को समझ लेने के बाद हम 'ग्रामीण नेतृत्व' की वि"िाष्ट प्रकृति का वि"लेषण समुचित और संयत ढग से कर सकते हैं। ग्रामीण नेतृत्व की वि"िाष्ट प्रकृति में निम्नलिखित तत्व या वि"ोषताओं का उल्लेख अनिवार्य है–

(1) ग्रामीण नेतृत्व नेता तथा अनुयायियों के बीच पाये जाने वाले पारस्परिक व्यवहार प्रतिमान का द्योतक है, जिसमें अनुयायियों के व्यवहार का जितना प्रभाव नेता पर पड़ता है, उससे अधिक नेता के व्यवहार का प्रभाव अनुयायियों पर पड़ता है।

(2) इस प्रकार ग्रामीण नेतृत्व की प्रकृति की एक उल्लेखनीय वि"िाष्टता यह है कि नेतृत्व एक दो तरफा विषय है और वह भी इस अर्थ में कि यदि नेता का प्रभाव अनुयायियों पर पड़ता है तो अनुयायियों का प्रभाव भी नेता पर पड़ता है। ब्राउन के अनुसार सफल नेतृत्व का नियम ही यह है कि नेता को अनुयायियों के विचारों, भावनाओं, कियाओं तथा प्रतिकियाओं से अपना अनुकूलन करना पड़ता है। सफल नेतृत्व अनुयायियों के अधीन एक व्यक्तित्व की सार कथा है।

(3) ग्रामीण नेतृत्व को अनुयायियों के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। नेता तथा अनुयायी नेतृत्व के दो अभिन्न अंग है । ग्रामों में अनुयायियों को निकालकर नेता या नेतृत्व की कल्पना तक नहीं की जा सकती। नेतृत्व नेता तथा अनुयायियों के बीच पाये जाने वाले वि"िाष्ट सम्बन्ध का ही प्रतिनिधित्व करता है पर इस वि"िाष्ट सम्बन्ध की क्या प्रकृति होगी, यह एक वि"िाष्ट संस्कृति व सभ्यता के एक वि"िाष्ट स्तर से सम्बन्धित विषय है।

(4) ग्रामीण नेतृत्व में अनुयायियों में स्वेच्छापूर्वक समर्पण का भाव निहित होता है। ग्रामों में अधिकतर नेतृत्व का जीवन अनुयायियों के सहयोग तथा सद्भावना पर निर्भर करता है। डरा धमकाकर या बलपूर्वक लोगों को अधिक दिनों तक दबाकर नेता बने रहना सम्भव नहीं होता।

(5) लॉपीयर के अनुसार नेतृत्व की वि"िाष्ट प्रकृति में सबसे उल्लेखनीय बात यह है कि प्रत्येक प्रकार के नेतृत्व का सम्बन्ध एक वि"िाष्ट परिस्थिति से होता है। उसी परिस्थिति में नेतृत्व जन्म लेता है। परिस्थिति का तात्पर्य व्यवहार का एक नि"िचत क्षेत्र है। जो संगीत के क्षेत्र में नेतृत्व करता है, उसका कोई सम्बन्ध राजनीति के क्षेत्र के नेतृत्व से नहीं होता। श्रमिक संघ का नेतृत्व नृत्य कला दल के नेतृत्व से

बिलकुल भिन्न है और यदि श्रमिक संघ का नेता नाचने वालों का नेतृत्व करना चाहेगा भी तो उसे हंसी का पात्र बनकर ही रह जाना पड़ेगा। इसलिये केवल इतना कहना अर्थहीन है कि कोई एक व्यक्ति नेता होता है। इसके साथ ही यह भी कहना जरूरी है कि वह किस क्षेत्र का नेता है। नेतृत्व किसी न किसी प्रकार के कौ"ाल को पहले से ही मान लेता है, चाहे वह दूसरों की अपेक्षा अधिक जोर से और जल्दी जल्दी से बोलने की ही क्षमता क्यों न रखता हो। इस प्रकार का कोई भी कौ"ाल या क्षमता नहीं हो सकती, जो एक व्यक्ति को सभी प्रकार की परिस्थितियों में और सभी प्रकार के मनुष्यों पर नेतृत्व की क्षमता प्रदान कर सके। राजनैतिक नेता 'सिने जगत' में अपने समस्त कौ"ालों को अर्थहीन पा सकता है, और कलाकारों के नेता के सारे गुण श्रमिक जगत में बेकार सिद्ध हो सकते हैं। ग्रामीण समाज पर भी यह बात सत्य सिद्ध होती है। हां इतना अव"य है कि उच्च कोटि के नेताओं के व्यक्तित्व में अत्यधिक प्रेरणा शक्ति, आत्म–वि"वास, बुद्धि आदि कुछ सामान्य गुण सही ही पाये जाते हैं परन्तु भारतीय ग्रामीण समाज में ऐसा कम ही देखने को मिलता ळें

12.9 ग्रामीण नेतृत्व के सामान्य गुण

(1) **शारीरिक गुण**–विद्वानों का कथन है कि नेता बनने के लिये कुछ शारीरिक गुणों का भी होना परमाव"यक है। ये गुण इस प्रकार हैं–

(क) ऊंचाई–यह नेतृत्व का एक गुण बन सकती है। स्टागडिल के अध्ययन से पता चलता है कि नेताओं की ऊँचाई सामान्य रूप से अधिक होती है। कॉल्डवेज तथा वैलमैन के मतानुसार ऊंचाई अलग अलग नेताओं में अलग अलग हो सकती है। खिलाड़ियों के नेता लम्बे होंगे जबकि साहित्यिक समूह के नेता की लम्बाई कम भी हो सकती है। गोविन का कहना है कि लम्बाई नेतृत्व का एक महत्वपूर्ण गुण है क्योंकि लम्बाई व्यक्ति को असाधारणता प्रदान कर देती है और व्यक्ति दूसरों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करने में सरलता से सफल होता है। पर इस मत से पूर्णतया सहमत होना कठिन है, क्योंकि अनेक प्रसिद्ध नेता कम ऊंचाई के भी हैं। इसका सबसे उत्तम उदाहरण स्वर्गीय प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री हैं।

(ख) **वजन** भी नेतृत्व का गुण माना गया है। गोविन व नेट्रिज आदि के अध्ययन इस ओर संकेत करते हैं कि नेता बड़े और भारी शरीर वाले होते हैं। पर ऐसा नहीं भी हो सकता है। महात्मा गांधी इसका उदाहरण हैं।

(ग) **स्फूर्ति एवं स्वास्थ्य** को सामान्य ऊंचाई एवं वजन से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। अधिकतर अध्ययन इस मत की पुष्टि करते हैं कि साधारण व्यक्तियों से नेताओं में अधिक स्फूर्ति होती है और उनका स्वास्थ्य भी अधिकां"ातः अच्छा ही होता है।

(2) **बुद्धि**–सामान्यतः ग्रामीण नेता को अपने अनुयायियों से अधिक बुद्धि वाला होना चाहिये, क्योंकि उसे उनका निर्दे"ान तथा नियंत्रण दोनों ही करना होता है। लगभग

सभी अध्ययनों से पता चलता है कि बुद्धिमान व्यक्ति ही नेता बन पाते हैं। बेव ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि जिन सामूहिक उद्दे"यों की पूर्ति में ज्ञान और मानसिक योग्यता की आव"सकता पड़ती है उन क्षेत्रों में बुद्धिमान व्यक्ति ही नेता बनते हैं। पर जहां व्यावहारिक व औद्योगिक कार्य होते हैं उन क्षेत्रों में बौद्धिक योग्यता नेतृत्व का महत्वपूर्ण आधार नहीं होती। परन्तु इस सम्बन्ध में यह याद रखना चाहिये कि नेता और अनुयायियों की बुद्धि में बहुत अधिक अन्तर नहीं होता। यदि ऐसा होगा तो उनमें पारस्परिक अन्तःक्रियात्मक सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पायेंगे। **होलिंग वर्थ** ने अपने अध्ययन के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि नेतृत्व की सफलता के लिये नेता और अनुयायियों की बुद्धिलब्धि में 30 अंकों से अधिक का अन्तर नहीं होना चाहिये।

(3) **आत्मवि"वास**–आत्मवि"वास को ग्रामीण नेतृत्व का भी एक अत्यधिक महत्वपूर्ण गुण माना जाता है। ग्रामीण नेता को जनता के पथ प्रद"ाक के रूप में कार्य करना पड़ता है और स्वयं कठिन से कठिन परिस्थितियों के बीच से गुजरकर जनता को निरन्तर प्रोत्साहित करना होता है। यदि नेता में स्वयं ही आत्मवि"वास की कमी होगी तो अनुयायी नेता पर वि"वास खो बैठेंगे। कॉक्स ड्रेक, गिब आदि विद्वानों ने आत्मवि"वास और नेतृत्व में घनिष्ठ सम्बन्ध का उल्लेख किया है क्योंकि जो व्यक्ति आत्मवि"वास के साथ बोलता और आचरण करता है उसका दूसरों पर भी प्रभाव शीघ्रता से पड़ता है।

(4) **सामाजिकता–गुड एनफ** ने नेतृत्व और सामाजिकता के बीच बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध पाया है। नेता के लिये मिलनसार होना आव"यक है क्योंकि इस गुण के बिना वह न तो अपने अनुयायियों के मनोभावों, विचारों , प्रतिक्रियाओं आदि को समझ सकेगा और न आव"यक रूप से ही अपने व्यवहार का अनुकूलन कर सकेगा। कैटल तथा स्टाइस के मतानुसार सामाजिकता के आधार पर नेता और अनुयायियों के पारस्परिक सम्बन्ध दृढ़ होते हैं, और इस प्रकार नेतृत्व का स्थायित्व बढ़ता है । मूर तथा न्यूकाम्ब का कहना है कि व्यक्ति में जब तक सामाजिकता का गुण नहीं होगा तब तक न तो वह समाज या जनता की नब्ज पर हाथ रख सकेगा और न ही समाज का वास्तविक 'रोग' समझ सकेगा। सबल नेता बनने के लिये ये दोनों ही गुण आव"यक हैं, जो प्रायः सामाजिकता के आधार पर ही पनपते हैं। इसीलिये सफल उच्च कोटि के नेता सदैव मित्रता, सहयोग और सामाजिक जमघट पसन्द करते हैं। यह बात ग्रामीण नेता में भी होती है और होनी चाहिये।

(5) **संकल्प शक्ति**–ग्रामीण नेता को 'अग्नि–परीक्षायें' देनी होती हैं। कठिन से कठिन परिस्थितियों में संकल्पच्युत न होना नेता का एक बहुत बड़ा गुण है और यही गुण उसे अनुयायियों की निगाहों में आद"ार बना देता है। इस मत की पुष्टि हेनावाल्ट, हेमिल्टन, मॉरिस, स्टागडिल तथा हैनरी आदि विद्वानों के अध्ययन से होती है। स्टागडिल ने लिखा है कि नेता में निर्णय करने, उत्तरदायित्व सम्भालने, आत्म संयम रहने और प्रौढ़ता और संकल्प"ाीलता से काम करने के गुण साधारण व्यक्तियों से अधिक होते हैं।

(6) **परिश्रमप्रियता**–नेता वे ही बन सकते हैं जो परिश्रम से कभी जी नहीं चुराते। अधिकां"ा ग्रामीण नेता आज इसीलिये नेता हैं, क्योंकि वे अपने को अपने ही परिश्रम द्वारा सुप्रतिष्ठित करने में सफल हुये हैं। दुनिया के अनेक महान नेता बहुत साधनहीन परिवारों में पैदा हुए, पर वे अपने ही कठोर परिश्रम व लगन के कारण उच्च कोटि के नेता बनने में सफल हुए। आलसी और कामचोर व्यक्ति भी नेता बना हो, ऐसा उदाहरण इतिहास में नहीं मिलता।

(7) **कल्पना शक्ति**–नेता को अपने कर्तव्यों को सफलतापूर्वक निभाने में कल्पना शक्ति से बहुत सहायता मिलती है। इस शक्ति के आधार पर वह भविष्य की सम्भावित परिस्थितियों के विषय में अन्दाज लगा सकता है और उसी के हिसाब से अपने को उसका सामना करने के लिये तैयार कर सकता है। योजना बनाने तथा हल ढूँढने के कार्य में भी कल्पनाशीलता नेता की मदद करती है।

(8) **अन्तर्दृष्टि**–अन्तर्दृष्टि भी ग्रामों में नेतृत्व का एक आव"यक गुण है, क्योंकि इसकी सहायता से ही वह अपने अनुयायियों की प्रतिक्रियाओं को सरलता से समझ सकता है और अपना अनुकूलन उसके साथ कर सकता है। नेता की अन्तर्दृष्टि राष्ट्र के लिये भी हितकर होती है, क्योंकि इसी के बल पर वह भविष्यवाणी करता और राष्ट्र को आने वाले खतरों से सचेत करता है। फिर राष्ट्र के लिये पहले से ही सुरक्षात्मक कदम उठाना सम्भव व सहज हो जाता है।

(9) **परिवर्तन"ाीलता**–व्यक्तित्व में लचीलापन होना ही चाहिये, ताकि वह नवीन आव"यकताओं के अनुसार अपने विचारों व आचरणों को बदल सके। नेता का प्रगतिवादी होना जरूरी है। नेता परिवर्तनों का स्वागत करता है। यदि उनसे जनहित की आ"ाा हो तो जिन गति"ाील आधुनिक समाजों में सामाजिक परिस्थितियां व आव"यकतायें तेजी से बदलती रहती हैं वहां के नेता के लिये यह गुण और भी आव"यक हो जाता है।

(10) **उद्दीपकता**–उद्दीपकता के अन्तर्गत जैसे बातचीत में कु"ालता, प्रफुल्लता, स्फूर्ति, तत्परता, स्पष्टता, मौलिकता, प्रसन्नचित्तता और उत्साह आदि व्यक्तित्व के अनेक गुण सम्मिलित किये जाते हैं। अनेक विद्वानों ने अपने–अपने अध्ययनों द्वारा यह द"ार्ाने का प्रयत्न किया है कि उद्दीपन और नेतृत्व में बहुत ही घनिष्ठ सम्बन्ध है। ग्रामीण नेता में भी यह गुण होना चाहिये।

उपर्युक्त गुण ग्रामीण नेतृत्व के सामान्य गुण हैं। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि ग्रामीण नेता में और दूसरे गुण होते ही नहीं हैं। उसमें वि"ोष परिस्थितियों में अनेक अन्य गुणों का समावे"ा भी देखा जा सकता है। पर उपर्युक्त वर्णन से यह नही समझना चाहिये कि सभी नेताओं में उपर्युक्त दसों गुण समान रूप या मात्रा में पाये जाते हैं। अवस्था वि"ोष के अनुसार इनमें हेर–फेर भी हो सकता है। इन सामान्य गुणों में अन्तर्विरोध नहीं होता। ये सभी अथवा अधिकतर गुण किसी भी नेता में विद्यमान हो सकते हैं। पर स्मरण रहे कि कुछ वि"ोषताओं या गुणों के आधार पर ही कोई व्यक्ति नेता नहीं बन जाता। गांव का नेता तो वह तभी बनता है जब उन वि"ोषताओं का मेल या अर्थपूर्ण सामंजस्य या समूह के उद्दे"यों, आद"ार्ों तथा मूल्यों

के साथ हो जाता है। वि"ाष्ट सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थिति के संदर्भ में ही नेतृत्व को समझने का प्रयत्न करना चाहिये।

12.10 ग्रामीण नेता के कार्य

नेता के पद के साथ बड़े उत्तरदायित्व जुड़े होते हैं। यदि नेता उन उत्तरदायित्वों को ईमानदारी से निभाता है तो उसे अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ते हैं। ग्रामीण नेतृत्व का महत्व वास्तव में नेता द्वारा किये गये इन कार्यों में ही निहित है। पर इस सम्बन्ध में एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि हम किसी भी ग्रामीण नेता के कार्यों की विवेचना उसे उसकी सामाजिक–सांस्कृतिक परिस्थितियों से अलग करके नहीं कर सकते । नेता भी समाज व्यवस्था की एक इकाई है और इसलिये उसकी क्रियायें संस्कृति के प्रतिमान से सम्बन्धित होती हैं। संस्कृति जनता के आद"ार्ों, मूल्यों, विचारों और परम्पराओं को एक नि"चित स्वरूप प्रदान करती है और ग्रामीण नेता को कोई भी कार्य करते समय इन सभी बातों का पूरा पूरा ध्यान रखना पड़ता है। यदि वह इनके विरूद्ध काम करता है तो उसका नेतृत्व खतरे में पड़ जाता है। इसलिये यह कहा गया है कि 'जन–समूह संस्कृति को वहन करता है और उसी में नेतृत्व के वि"ाष्ट कार्य निहित होते हैं'। इस कथन का तात्पर्य यही कि नेता जो वि"ाष्ट कार्य करता है, वे सभी उस कार्य की सांस्कृतिक व्यवस्था या परिस्थितियों से सम्बन्धित होते हैं। फिर भी सभी संस्कृतियों में नेता के कुछ सामान्य कार्य भी होते हैं। उन कार्यों की विवेचना हम यहाँ कर सकते हैं। पर इससे भी पहले यह जान लेना आव"यक है कि नेता कहते किसे हैं ?

साधारणतः यह सोचा जाता है कि नेता वह व्यक्ति है जो एक नि"चित पद पर आसीन है और जो उस पदानुरूप कार्य करता है। शार्टेल तथा स्टागडिल ने लिखा है कि नेता वह व्यक्ति है जो ऐसे पद पर आसीन है जिसके सम्बन्ध में सोचा जाता है कि नेतृत्व की क्षमता रखने वाले व्यक्ति ही वहां ठीक रहेंगे। इसके विपरीत, रेडिल का मत है कि नेता वह व्यक्ति होता है, जिसके ऊपर समूह के सदस्यों का व्यवहार केन्द्रित रहता है। आपने नेता को ऐसा केन्द्रित व्यक्ति कहा है जिसे समूह के अन्य सदस्यों का प्रेम व श्रद्धा आदि प्राप्त होते हैं। नेता की एक अन्य परिभाषा इस प्रकार है, 'नेता समूह का सदस्य है, जो अपने सहयोगियों द्वारा उस रूप में चुना जाता है।' इसी प्रकार कुछ विद्वानों के मतानुसार, 'नेता समूह का वह सदस्य है जो अपने अनुयायियों पर सबसे अधिक प्रभाव डालता है।' इन समस्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट है कि नेता अपने समूह के अन्य सदस्यों के बीच एक उच्च पद को प्राप्त होता है, सबका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करता है और कुछ नि"चित दायित्वों को निभाते हुये दूसरों के व्यवहारों को निर्दे"ात व नियंत्रित करता है। वह अपने गुणों और कार्यों के कारण ही उस रूप में सम्मान पाता है। इस दृष्टि से ग्रामीण नेता के प्रमुख कार्य निम्नलिखित माने गये हैं–

(1) **प्रबन्धकारी कार्य करना**–ग्रामीण नेता को प्रबन्धक के रूप में महत्वपूर्ण कार्य करने पड़ते हैं। वह समूह के सदस्यों की क्रियाओं में सहसम्बन्ध स्थापित

करता है ताकि समूह के उद्दे"यों की अधिकतम पूर्ति हो सके। ग्रामीण समूह के नियम, नीति, आद"ार्श व परम्परा चाहे नेता द्वारा निर्धारित हो या किसी और के द्वारा, इन सबको कार्यान्वित कराने का उत्तरदायित्व वास्तव में ग्रामीण नेता पर ही होता है। यह बिलकुल आव"यक नहीं कि हर कार्य वह स्वयं ही करे, वह पूरे कार्यों का उचित विभाजन अन्य लोगों के बीच भी कर सकता है। इससे केवल नेता ही नहीं, अनुयायी भी सदैव सक्रिय रहते हैं। इसका एक और परिणाम यह होता है कि अनुयायियों में पारस्परिक सम्बन्ध बना रहता है तथा उसके और नेता के बीच का सम्बन्ध घनिष्ट होता है, क्योंकि उनके बीच प्रकार्यात्मक सम्बन्ध पनप जाते हैं।

(2) **योजना बनाना**–कोई भी व्यक्ति जिस समूह का नेता होता है, उसके कुछ उद्दे"य होते हैं। उन उद्दे"यों की प्राप्ति के लिये विस्तृत योजना बनाना भी नेता का ही एक महत्वपूर्ण कार्य है। वही यह निर्णय लेता है कि समूह के उद्दे"यों की प्राप्ति के लिये कौन कौन से रास्ते अपनाये जायें। उसे यह भी ध्यान रखना पड़ता है कि ये रास्ते या साधन व्यावहारिक और समूह की कार्य क्षमता की सीमाओं के अन्दर के हैं या नहीं ? वह प्रायः दो प्रकार की योजनायें बनाता है–तात्कालिक योजनायें और दीर्घकालीन योजनायें। जो समूह की तात्कालिक आव"यकतायें हैं, उनकी पूर्ति तात्कालिक योजनायें बनाकर की जाती हैं, जबकि समूह के स्थायी विकास व कल्याण के लिये कुछ दीर्घकालीन योजनाओं की आव"यकता होती है। ग्रामीण नेता का यह भी एक महत्वपूर्ण कार्य है।

(3) **नीति का निर्धारण करना**–ग्रामीण नेता का सबसे महत्वपूर्ण कार्य समूह के आद"ार्श, उद्दे"य और नीति नि"चित करना है। वह स्वयं नीतियां निर्धारित कर सकता है, उन्हें किसी अन्य स्रोत से प्राप्त कर सकता है या अपने से ऊपर के किसी नेता के निर्दे"ानुसार नि"चित कर सकता है। पर नेता का महत्व तो तभी अधिक बढ़ता है, जबकि वह स्वयं ही नीति निर्धारण करता है। केवल नीति का निर्धारण ही नहीं वरन उसे लागू करने का उत्तरदायित्व भी उसे स्वयं ही अपने ऊपर लेना पड़ता है। वह नीति को लागू करने के बाद उसके प्रति अनुयायियों की प्रतिक्रियायें बहुत ध्यान से देखता है और यदि प्रतिक्रियायें अत्यधिक प्रतिकूल हुईं तो नीति में आव"यक सं"ाोधन भी स्वयं ही करता है।

(4) **वि"ोषज्ञ के रूप में कार्य करना**–अपने से सम्बन्धित समस्त विषयों तथा कार्यों के मामले में नेता को सभी लोग वि"ोषज्ञ मानते हैं, वि"ोषकर नीति या योजना को क्रियान्वित करने के सम्बन्ध में जो भी अड़चनें सामने आती हैं, उन्हें दूर करना नेता का भी महत्वपूर्ण कार्य है। नेता बहुधा समूह के सदस्यों के लिये तैयार सूचना और तैयार हल का स्रोत होता है और इस उत्तरदायित्व को उसे ईमानदारी से निभाना होता है। इसी के आधार पर ग्रामीण नेता पर अनुयायियों की श्रद्धा व वि"वास उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है।

(5) **समूह का प्रतिनिधित्व करना**–कोई भी समूह समाज के अन्य समूहों से पृथक नहीं रह सकता। इनमें आपस में एक अन्तःसम्बन्ध किसी न किसी रूप में अव"य ही होता है। अपने समूह का दूसरे समूहों के सदस्यों के लिये आपस में सम्बन्ध स्थापित करना सम्भव नहीं होता। उस कारण बाह्य समूहों व सदस्यों से

मिलते समय या विचार विनिमय करते समय नेता ही पूरे समूह का प्रतिनिधित्व करता है। यह भी हो सकता है कि समूह वि"ोष की अपनी कुछ मांगे हों, जिनकी पूर्ति उच्चाधिकारियों द्वारा ही की जा सकती हो। उस अवस्था में नेता ही समूह की मांगों को उच्चाधिकारियों के सम्मुख प्रस्तुत करता है और समूह का प्रतिनिधित्व करते हुये उन मांगों के औचित्य के सम्बन्ध में अपने विचार सामने रखता है। लेविन ने नेता को समूह का 'द्वार–रक्षक' कहा है, यानी नेता समूह के स्वार्थों की रक्षा करते हुये बाहर की सूचना भीतर और भीतर की सूचना बाहर तक पहुंचाता है। ग्रामीण नेता पर भी यह बात लागू होती है।

(6) **आन्तरिक सम्बन्धों का नियंत्रण करना**–ग्रामीण नेता का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि वह अपने समूह के सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के ताने–बाने को टूटने न दे। साथ ही वह यह प्रयत्न भी करता है कि उसका समूह प्रगति करे और उसके सदस्यों के बीच सहयोग और सद्भावना बनी रहे। अपने इस कर्तव्य को निभाने के लिये उसके लिये यह जरूरी हो जाता है कि वह अपने समूह के सदस्यों के साथ अधिकाधिक घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये रखे। इसीलिये मेल मिलाप की प्रवृत्ति को नेता का एक आव"यक गुण माना जाता है।

(7) **पुरस्कार और दण्ड की व्यवस्था करना**–ग्रामीण समूह के सदस्यों की दृष्टि में ग्रामीण नेता का महत्व इस कारण भी होता है कि उसे पुरस्कार तथा दण्ड देने की शक्ति भी प्राप्त होती है। समूह उन लोगों को पुरस्कार देता है जो कि समूह के हित में सराहनीय कार्य करते हैं। इस प्रकार वह दूसरों को भी समूह के कल्याण के लिये कार्य करने की प्रेरणा देता है। दूसरी ओर जो लोग समूह के स्थापित नियमों का उल्लंघन करते या समूह के सामान्य हित को चोट पहुंचाते हैं, उन्हें ग्रामीण नेता दण्ड देने की व्यवस्था करता है। इस दण्ड और पुरस्कार की किसी भी पद्धति को नेता अपने निर्णय के अनुसार अपना सकते हैं। जैसे, कर्तव्यों का प्र"ांसनीय पालन करने पर एक सदस्य को पद सोपान में उच्च पद प्रदान करना अथवा समूह में वि"ोष रूप से प्रतिष्ठित करना। इसके विपरीत कर्तव्यों का पालन न करने पर सदस्य को पदच्युत करना अथवा अपमानित करना आदि।

(8) **पंच एवं मध्यस्थ के रूप में कार्य करना**–समूह के अन्दर सदस्यों में संघर्ष या तनाव की स्थिति पैदा हो जाने पर ग्रामीण नेता पंच एवं मध्यस्थ का कार्य करता है। संघर्ष के समय वह न केवल एक निष्पक्ष न्यायाधी"ा का कार्य करता है, बल्कि समूह के सदस्यों में अच्छे सम्बन्धों को फिर से स्थापित करने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। इस दृष्टि से नेता समूह के भीतर ही शक्ति व अन्य किसी आधार पर पनपने वाली गुटबंदी या ऐसी अन्य प्रवृत्ति को नहीं पनपने देता, जिससे समूह के संगठन में दरार पड़ने की सम्भावना हो।

(9) **आद"ार्ा बनना**–अनुयायियों के इस वि"वास को कि नेता एक आद"ार्ा पुरूष होता है, बनाये रखने का प्रयत्न करना भी ग्रामीण नेता का ही एक महत्वपूर्ण कार्य है। इसके लिये वह ग्रामीणों के सम्मुख आद"ार्ा व्यवहार करता है और सर्वोच्च चाल–चलन, चरित्र एवं लक्ष्यों के आद"ार्ा प्रस्तुत करता है। नेता के व्यवहार को देखकर वैसा ही व्यवहार करने की प्रेरणा अन्य सदस्य पाते हैं। वीर सेनापति के

लिये ही यह सम्भव होता है कि वह सैनिकों में वीरता के परम निर्दे"ानों को प्रस्तुत करने को प्रेरित कर सके। नेता का अपने को आद"ार्ा रूप से पे"ा करना अनुयायियों तथा समाज दोनों के लिये कल्याणकारी सिद्ध होता है।

(10) **समूह का प्रतीक बनना**–ग्रामीण नेता का एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी है कि उसे समूह का प्रतीक बनना पड़ता है। इसका तात्पर्य यह है कि नेता के आचरण, व्यवहार आदि को देखकर दूसरे लोग उसके अपने समूह की प्रकृति के बारे में स्पष्ट धारणा बना सकते हैं। समूह की आधारभूत वि"ेषताओं का मूर्तिमान रूप नेता ही होता है इसीलिये विभिन्न सदस्यों के बदल जाने पर भी समूह की उन आधारभूत वि"ोषताओं को ग्रामीण नेता ही स्थिरता प्रदान करता है।

(11) **समूह के पथ–प्रद"ार्क के रूप में कार्य करना**–ग्रामीण नेता का एक और महत्वपूर्ण कार्य यह है कि वह समूह के सदस्यों को निरन्तर राह दिखलाता है। वह प्रत्येक संकटकालीन परिस्थिति में अपने अनुयायियों के साथ रहता है, प्रत्येक अन्धकार भरे पथ पर उनको अपने अनुभव तथा ज्ञान का दीपक दिखाता है और प्रत्येक रचनात्मक कार्य में उनका ि"ाक्षक बनता है। आधुनिक ग्रामीण समाजों में नेता का यह कार्य वास्तव में उल्लेखनीय है, क्योंकि इन समाजों में समस्यायें अत्यधिक अनि"्चत तथा समाज व्यवस्था अत्यधिक परिवर्तन"ाील होती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति स्वयं कुछ भी निर्णय नहीं कर पाता। ऐसे मौके पर ग्रामीण नेता का पथ प्रद"ार्न का कार्य और भी महत्वपूर्ण हो उठता है।

.(12) **पिता का स्थान ग्रहण करना**–समूह के सदस्यों की संवेगात्मक आव"यकताओं की पूर्ति के लिये ग्रामीण नेता को उनके लिये पिता का स्थान ग्रहण करना पड़ता है। सदस्यों के स्नेह, श्रद्धा, आदर, आत्मीयता तथा अन्य संवेगात्मक भावनायें नेता के ही चारों ओर केन्द्रित हो जाती हैं। अनुयायियों के लिये नेता पिता तुल्य हो जाता है। पिता की भांति ही उसके आदे"ाों का भी प्रभाव सदस्यों पर पड़ता है और वे उसके साथ विनयपूर्वक व्यवहार करते हैं। दूसरी ओर नेता को भी पिता की भांति ही अपनी भूमिका अदा करनी पड़ती है–वह उन्हें स्नेह करता है, सुरक्षा प्रदान करता है, मार्ग दिखाता है, सान्त्वना देता है, प्रेरणा प्रदान करता है और उनके दुःख दर्द का साझीदार बनता है। वह अपने अनुयायियों के यदि सुख का साथी है तो दुःख का हिस्सेदार भी है। वह उनसे सम्मान व श्रद्धा लेता है तो बदले में देता भी बहुत कुछ है।

12.11 ग्रामीण नेताओं के प्रकार

गांव के नेता को दो भागों में बांटा जा सकता है–

(1) **औपचारिक नेता**–इनकी नियुक्ति सरकार द्वारा या राज्य के किसी कानून के द्वारा होती है। इनके पीछे सरकार की अभिव्यक्ति है। सरकार द्वारा स्वीकृत एवं मान्य ग्राम पंचायत के सदस्य, पटवारी व मुखिया आदि इस श्रेणी में आते ह।

(2) **अनौपचारिक नेता**–ये वे नेता हैं जो कि सरकारी दृष्टि से नेता न होते हुये भी परम्परागत रूप से या सामाजिक नियम के अनुसार नेता बन जाते हैं। पंचायत

आदि के नेता पंचायती राज बन जाने के बाद औपचारिक नेता के अन्तर्गत आ गये हैं जबकि पहले पंच या सरपंच भी अनौपचारिक नेता ही होते थे। जाति–पंचायत या वैसी ही अन्य सामाजिक संस्थाओं का भार संभालने वाले नेता भी अनौपचारिक नेता हैं। औपचारिक व अनौपचारिक नेता में सरकारी नियमों का अन्तर तो है ही इन दोनों के कार्यक्षेत्र, अधिकार तथा मान्यताओं में भी पर्याप्त अन्तर देखने को मिलता है। औपचारिक नेता के हाथ में कानूनी शक्ति होती है और इसीलिये कानून के बल पर वह दूसरों पर प्रभाव डालता है। दूसरे लोगों द्वारा न चाहते हुए भी औपचारिक नेता का अनुसरण करना पड़ता है। इस अर्थ में औपचारिक नेतृत्व बाध्यतामूलक है जबकि अनौपचारिक नेतृत्व लोगों की स्वेच्छा, श्रद्धा व सद्भावना पर आधारित होता है। भारतीय ग्रामीण व्यक्ति को कानून से उतना डर नहीं लगता जितना कि प्रथा, परम्परा इत्यादि से लगता है। वह केवल डरता ही नहीं अपितु एक आदर की भावना भी उसके दिल में होती है। जिन व्यक्तियों का आद"ार उच्च होता है, उनका ही समाज में आदर होता है। हेनरी ओरस्टीन ने अपने लेख में लिखा है, 'इस प्रकार के नेतृत्व के आव"यक लक्षण हैं–उच्च जातीय स्थिति, अच्छी आर्थिक स्थिति तथा एक ऐसी आयु जो आदर प्राप्त कर सके।'

ग्रामों के नेताओं को कुछ अन्य विद्वानों ने दो प्रकार का बताया है–

(1) **प्राथमिक नेता**–ग्रामीण जीवन में इनका अत्यधिक महत्व होता है। समूह इनसे पूर्णतया प्रभावित होता है। ऐसे नेता अधिकां"ातः उच्च परिवार के होते हैं। अनुभव, शरीर व मानसिक रूप से ये पूर्णतया प्रौढ़ता को प्राप्त होते हैं। अपने समूह के लिये ये सब कुछ करते हैं। इनकी स्थिति महत्वपूर्ण होती है। कानून, झगड़े इत्यादि में इनकी सलाह नहीं ली जाती है।

(2) **माध्यमिक नेता**–ये वे नेता हैं जो प्राथमिक नेताओं से कम सम्मान पाते हैं। पद, आयु प्रतिष्ठा, इत्यादि के दृष्टिकोण से इनकी स्थिति कम होती है। प्रायः प्राथमिक नेता इनसे सलाह लेते रहते हैं और साथ ही इनकी सहायता पर भी निर्भर देखे गये हैं।

सरकारी नेतृत्व का प्रभाव कम होता है–औपचारिक नेतृत्व के अन्तर्गत सरकारी नेतृत्व आता है। इसका प्रभाव समूह पर अपेक्षाकृत क्षीण होता है। इस असफलता के कुछ कारण हैं। ग्रामीणों पर नेतृत्व के स्वाभाविक प्रभाव हेतु यह आव"यक है कि उनके मूल्यों, आद"ाों एवं विचारों को भली भांति समझा जाये। कोई भी योजना व नियोजन तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि वह समूह के मूल्यों, आद"ाों व विचारों के अनुकूल न हो। सरकारी नेतृत्व में इस बात की कमी है। ऊपर से जबरन थोपे गए नेतृत्व से जन–सहयोग कदापि प्राप्त नहीं किया जा सकता । उनके साथ सहिष्णुता दिखाकर उनकी संस्कृति, मूल्य व विचारों को ध्यान में रखकर कार्य करने से नेतृत्व को सफल बनाया जा सकता है। भोले–भाले ग्रामीणों को उतने आर्थिक लाभ प्रिय नहीं हैं, जितने उनके मूल्य, आद"ा इत्यादि उन्हें प्रिय हैं।

भारतीय ग्रामों में जात–पांत, ऊँच–नीच, लड़ाई झगड़े व अन्धवि"वासों को भली प्रकार से समझ लेने पर ग्रामीणों का आर्थिक विकास किया जा सकता है। ये

लोग निरक्षर, परम्परावादी, अन्धवि"वासी होते हैं, इसलिये इनके हृदयों एवं मस्तिष्क पर विजय करने के लिये स"ाक्त, कियात्मक एवं संवेदन"ाील नेतृत्व की आव"यकता है। योजना आयोग की मूल्यांकन समिति ने अपनी रिपोर्ट में लिखा है कि ग्राम विकास कार्यकर्ता सीधी–सादी ग्रामीण जनता में घुलमिल नही सके हैं, कागजी कार्यवाही औपचारिक रूप से चलती आ रही है। अपने पढ़े–लिखे होने का थोड़ा सा अभिमान सरकारी नेताओं को है। वे गांव के केवल चन्द बड़े लोगों के साथ उठते–बैठते हैं। प्रत्येक के साथ सम्पर्क स्थापित नहीं करते। सरकारी नेतृत्व की असफलता का यह महत्वपूर्ण कारक है।

ऐसा भी देखा गया है कि सरकारी नेता स्वयं दलबन्दी व राजनीति के ि"ाकार हो जाते हैं। ग्रामों में आजकल दलबन्दी व गुट पाये जाते हैं, लोगों में राजनैतिक सजगता आ गयी है। ये लोग एक समूह में बैठते हैं तो दूसरा नाराज हो जाता है और यदि तटस्थ रहते हैं तो सभी समूह अप्रसन्न हो जाते हैं। यह एक महत्वपूर्ण कारक है जिससे इनका नेतृत्व सफल नहीं हो पा रहा है।

बड़ी प्रसन्नता का विषय है कि सरकार ने इस असफलता का अनुभव किया है। सामुदायिक विकास आन्दोलन को अब नया मोड़ दे दिया गया है। दे"ा में पंचायती राज एवं लोकतंत्रीय विकेन्द्रीकरण की योजना लागू की गयी है। पहले जन सहयोग से संचालित सरकारी आन्दोलन था अब इसे सरकारी सहयोग से संचालित जन–आन्दोलन का रूप प्रदान किया गया है। विकास योजनायें व कार्यक्रम अब ग्रामीण जन प्रतिनिधियों और स्थानीय संस्थाओं को सौंप दिये गये हैं। ग्राम स्तर पर पंचायत खण्ड, तहसील तालुका स्तर पर पंचायत समिति एवं जिला स्तर पर जिला परिषद की स्थापना की व्यवस्था की गई है। राजस्थान, आन्ध्र प्रदे"ा, असम, तमिलनाडु, कर्नाटक, उड़ीसा, पंजाब, महाराष्ट्र, गुजरात आदि राज्यों में यह व्यवस्था लागू की जा चुकी है। अन्य राज्यों में इसके शीघ्र लागू होने की पूर्ण आ"ाा है। इस नई व्यवस्था ने नेतृत्व सरकारी हाथों से छीनकर ग्रामीण जनता को सौंप दिया है। निरक्षर ग्रामीणों के निरक्षर नेताओं को सलाह–म"ाविरा, तकनीकी सहायता इत्यादि के लिये कुछ सरकारी अफसर भी नियुक्त किये गये हैं। विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी, समाज ि"ाक्षा अधिकारी, ग्राम सेवक सभी ग्रामवासियों की सहायता के लिये हैं।

12.12 ग्रामीण नेतृत्व के विषय में कुछ सुझाव

ग्रामीण नेतृत्व को सफल बनाने हेतु नेताओं में कुछ वि"ोषताओं का होना आव"यक है, उन्हें कुछ बातों का ध्यान रखना पड़ता है–

(1) नेतृत्व के विकास में व्यक्तित्व तथा परिस्थितियाँ दोनों का ही योगदान होता है। व्यक्ति में निहित नेतृत्व के लक्षण तभी स्पष्ट एवं विकसित होते हैं जब वह परिस्थितियों से अपना अनुकूलन कर लेता है। जो व्यक्ति परिस्थितियों से अपना सामंजस्य कर लेते हैं वे सच्चे नेता होते हैं। लोग उनका अनुसरण दबाव से नहीं बल्कि स्वेच्छा से करते हैं। प्रतिभा"ाली नेता अपने में एक चमत्कार उत्पन्न कर लेते

हैं, जब वे कठोर से कठोर परिस्थितियों के अनुसार अपने को ढाल लेते हैं। लोग इसी चमत्कार के पीछे दौड़ते हैं, उनके ह्रदय में अपने नेताओं के प्रति श्रद्धा व सम्मान होता है। ग्रामों में परम्परात्मक नेतृत्व में यह वि"ोषता देखी गयी है। इसे हमें नवीन मोड़ देना होगा, इसका सदुपयोग करना होगा।

(2) ग्रामीण नेता कृपालु व उदार प्रकृति का होना चाहिए। साथ ही साथ वह कठोर श्रम से घबराने वाला न हो।

(3) ग्रामों के नेता में सेवा करने की भावना होनी चाहिये, न कि अपनी स्थिति का लाभ उठाकर अपना प्रभुत्व जमाने की। जनता ने पंचायतों एवं पंचायत समितियों आदि का सदस्य बनाकर इन्हें अधिकार दिये हैं तो कर्तव्यों का भी पालन करना इनका धर्म है।

(4) आज के ग्रामीण नेता जातिवाद व दलबन्दी से ग्रस्त देखे गये हैं, पंचायतों या पंचायत समितियों में जाति–संघर्ष का अखाड़ा बनते देखा गया है। ये अपनी जाति के स्वार्थों के पीछे मर मिटने को तैयार रहते हैं चाहे समुदाय के हित का बलिदान करना पड़े। ये ठीक नहीं है। इन्हें जातिवाद व दलबन्दी को त्यागकर सम्पूर्ण समुदाय के हित को अपनाना चाहिये। अपने हृदय एवं मस्तिष्क को वि"ाल बनाना चाहिये।

(5) ग्रामीण नेताओं को ग्राम या समुदाय का नेता होना चाहिये न कि भीड़ का। भीड़ के अस्थाई नेता तो बहुत मिल जाते हैं परन्तु समुदाय के विकास में रान–दिन चिंतित नेताओं का अभाव है।

(6) ग्रामीण नेता राजनीतिक दांव–पेचों को त्यागकर ग्रामीण पुनर्निर्माण में अग्रसर हो जायें। उन्हें अपने अनुयायियों की अपार शक्ति को पुनर्निर्माण में लगाना चाहिये।

(7) भारतीय ग्रामों में आज बहुमुखी नेतृत्व की आव"यकता है। पहले एक प्रभाव"ाली व्यक्ति सभी क्षेत्रों में नेतृत्व करता था परन्तु आज विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न नेताओं की आव"यकता है जो वि"ोषकर अपने क्षेत्र में वि"ोषज्ञ हों। इसमें श्रम विभाजन की उपयोगिता स्पष्ट होती है। एकाकी नेतृत्व आज पुराना हो गया है। कृषि में कृषि वि"ोषज्ञ, महिलाओं को महिला कार्यकर्ता ही अच्छा निर्दे"ान दे सकती हैं। इसी प्रकार f"ाक्षा के क्षेत्र में f"ाक्षक, सहकारी समिति के प्रबन्ध कार्यकर्ता सहकारिता के क्षेत्र में उत्तम नेतृत्व दे सकते हैं। इससे सबसे बड़ा लाभ यह है कि नेतृत्व के दृष्टिकोण से एकाधिकार समाप्त हो जायेगा और विभिन्न क्षेत्रों में अनेक लोगों को अपनी प्रतिभा दिखाने का सर्वाधिक अवसर प्राप्त हो सकेगा। अतः स्पष्ट है कि बहुमुखी नेतृत्व एक ओर तो सर्वाधिक सन्तोष प्राप्त करायेगा और दूसरी ओर ग्रामीण समुदाय की सर्वाधिक उन्नति में सहायक सिद्ध होगा। इस दृष्टि से आज ग्रामों में बाल मण्डल, युवक दल, महिला मण्डल, सहकारी समितियां, कृषक दल सुचारू रूप से कार्य कर रहे हैं। बहुमुखी नेतृत्व के विकास हेतु ग्राम नेता प्र"िाक्षण कैम्प सराहनीय प्रयत्न है।

12.13 भारतीय ग्रामां में नेतृत्व का उभरता हुआ प्रतिमान

आधुनिक समय में गांव का सम्पूर्ण ढांचा तेजी से परिवर्तित हो रहा है। इसका कुछ श्रेय सरकारी प्रयत्नों को है और शेष सामाजिक शक्तियों को, जिसके अन्तर्गत ि"ाक्षा का विस्तार, यातायात तथा संचार के साधनों की उन्नति, नगरों में म"ाीनों का अधिक प्रयोग, गांव व नगरों में सम्पर्क तथा ग्रामीण समुदाय में राजनैतिक पार्टियों की अधिक क्रिया"ाीलता सम्मिलित है। इन सभी कारणों से ग्रामीण नेतृत्व का परम्परात्मक रूप दिन–प्रति–दिन बदलता जा रहा है।

परम्परागत रूप में गांव के बड़े–बूढ़े ही गांव के नेता होते थे और वह इस अर्थ में कि वही बहुधा गांव पंचायत, जाति–पंचायत या अन्य सामाजिक संगठन के अगुआ होते थे और उस रूप में वह दूसरों पर नाना प्रकार से प्रभाव डालते थे। उस समय नेतृत्व का आधार बहुत कुछ आयु था। आज की भांति व्यक्तिवाद का विकास नहीं हुआ था जिसके कारण बड़े–बूढ़ों के प्रति आदर, श्रद्धा की भावना आज जैसी मर नहीं गई थी। के० एल० शर्मा ने उत्तर प्रदे"ा के कुछ ग्रामों में अध्ययन करके परम्परागत नेतृत्व के सम्बन्ध में यह निष्कर्ष निकाला कि परम्परागत नेतृत्व अधिक निष्ठापूर्ण था। इसका सर्वप्रमुख कारण यह था कि पहले गांव का आकार छोटा होता था, प्रत्येक परिवार एक दूसरे को घनिष्ठ रूप से पहचानता था। सामाजिक सम्बन्ध का आधार वास्तव में पारिवारिक सम्बन्ध था। इसकी अभिव्यक्ति चाचा, ताऊ, नाना इत्यादि के रूप में वि"ोषता बन गयी थी। लोगों में अपनों का लिहाज था और उसके साथ जब बड़े–बूढ़ों के प्रति आदर की भावना मिल जाती थी तो ग्रामीण नेतृत्व अपने प्रभावित रूप में निखर उठता था।

आज उस द"ाा में परिवर्तन हो रहा है और कुछ हो भी गया है। ये परिवर्तन निम्नलिखित हैं–

(1) नेतृत्व आज वं"ाानुगत नहीं रहा, पहले पंच या सरपंच के पद वं"ाानुगत होते थे पिता का पद पुत्र को संभालना पड़ता था। अब स्थिति कुछ बदल गयी है। आज चुनाव के द्वारा नेता बनते हैं।

(2) ग्रामीण नेतृत्व में जाति का महत्व कम हो रहा है। पहले बहुधा ऊँची जातियों के सदस्य ही गांव के नेता होते थे परन्तु आधुनिक युग वयस्क मताधिकार का है और वह भी गुप्त चुनाव का है। इसलिये उच्च जातियों की पहले जैसी प्रभाव"ाली स्थिति अब नहीं है। वास्तव में गांव पंचायत आदि का सम्बन्ध अब किसी जाति वि"ोष से न होकर सम्पूर्ण गांव से हो गया है। अतः जाति का महत्व कम हो जाना भी स्वाभाविक है।

(3) आज की बदली हुयी परिस्थिति में ग्रामीण नेतृत्व में ि"ाक्षा का महत्व बढ़ गया है। बैकन हीमर के अनुसार ग्रामीण नेतृत्व के लिये ि"ाक्षा एक बहुमूल्य सम्पत्ति के रूप में विकसित हो रही है। नेता का ि"ाक्षित होना काफी आव"यक है। ि"ाक्षा आजकल ग्रामीण नेतृत्व का आधार है।

(4) ग्रामीण नेतृत्व में आज वि"ोषीकरण की प्रवृत्ति पायी जाती है। पहले गांव का नेता हरफनमौला था, प्रत्येक क्षेत्र में उसका हस्तक्षेप था और सब लोग उसी उसी रूप में मान्यता देते थे। परन्तु आज गांव में अलग–अलग क्षेत्र का एक वि"ोष नेता

होता है। ि"ाक्षा के क्षेत्र में ि"ाक्षक, महिला–कार्यक्रमों के संचालन हेतु महिला नेता तथा विकास के क्षेत्र में विकास अधिकारीगण इत्यादि अपने–अपने क्षेत्र में नेता होते हैं।

(5) ग्रामीण नेतृत्व में आयु का महत्व भी घट रहा है। पहले बड़े–बूढ़े गांवों के नेता होते थे पर आज यह आव"यक नहीं है। आज नई पीढ़ी में यह आव"यक नहीं है कि नेता बड़े–बूढ़े हों। इसका प्रमुख कारण यह है कि आज लोगों में एक प्रकार की जागरूकता पनप गयी है।

(6) ग्रामीण नेतृत्व में धन का महत्व अप्रत्यक्ष न होकर प्रत्यक्ष हो गया है। पहले धनी व्यक्ति वि"ोषकर जमींदार वर्ग बिना किसी होड़ के स्वतः ही नेता बन जाते थे अब अब वोटर खरीदने के लिये धन का तो उपयोग किया जाता है परन्तु चूंकि नेता अधिकां"ातः चुने हुये होते हैं इसलिये धन का महत्व परोक्ष मान लिया गया है। यद्यपि व्यावहारिक रूप में धन के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

(7) ग्रामीण नेतृत्व में जो परिवर्तन आधुनिक समय में हो रहे हैं, उनमें एक उल्लेखनीय परिवर्तन राजनैतिक जागरूकता है। नेता चाहे किसी भी क्षेत्र का हो वह किसी न किसी रूप में किसी न किसी राजनैतिक पार्टी का समर्थक बन जाता है।

(8) ग्रामीण नेतृत्व में कर्तव्य और अधिकार सम्बन्धी परिवर्तन भी आधुनिक समय में तेजी से हो रहा है। पहले कर्तव्य पर नहीं अधिकार पर अधिक बल दिया जाता था क्योंकि नेतृत्व वं"ाानुगत होता था और क्योंकि नेतृत्व पर उच्च जातियों का अधिकार था। आज अधिकार के साथ–साथ काम करके भी दिखाना पड़ता है नहीं तो अपने चुनाव में गद्दी छिन जाने का भय रहता है।

उक्त विवरण से भली प्रकार स्पष्ट है कि ग्रामीण नेता वे नहीं रहे जो पहले थे। गांवों में नेतृत्व इस परिवर्तित समाज में पुराना रूप खो रहा है और नया रूप धारण करता जा रहा है।

12.14 बोध प्र"न–02

---

1. ग्रामीण नेतृत्व की अवधारणा को स्पष्ट कीजिऐ।
2. ग्रामीण नेतृत्व के सामान्य गुण बताइये।
3. ग्रामीण नेता के कार्य समझाइये।
4. ग्रामीण नेताओं के प्रकार बताइये।
5. ग्रामीण नेतृत्व के उभरते हुए प्रतिमानों पर प्रका"ा डालिये

12.15 सारां"ा

ग्रामीण शक्ति संरचना ग्रामीण सामाजिक व्यवस्था का एक महत्वपूर्ण अंग है क्योंकि यह ग्रामीण नेतृत्व से सम्बन्धित विषय है। ग्रामीण समाज की शक्ति संरचना में जाति पंचायत के माध्यम से व्यापक परिवर्तन आ रहे हैं। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन ने जमींदारों से शक्ति छीन ली है। कहीं पर निम्न जातियां संख्या में अधिक

होने के कारण चुनावों में पंचायतों के पद पर विजय प्राप्त करके औपचारिक शक्ति ग्रहण कर बैठी हैं तो कहीं अधिक निर्भरता के कारण संख्या में अधिक होने पर भी निम्न जातियां उच्च जातियों के अधीन ही हैं। साथ ही संविधान द्वारा निम्न जातियों के लिये स्थान सुरक्षित किये जाने का लाभ भी तथाकथित अस्पृ"य जातियों ने उठाया है और शक्ति ग्रहण की है। सबसे सुखद पहलू यह है कि पंचायतों में महिलाओं को आरक्षण मिलने से ग्रामीण नेतृत्व में महिलाओं की शक्ति में बृद्धि हुई है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि जाति आधारित ग्रामीण नेतृत्व अब ि"ाक्षा और जागरूकता को प्रतिबिम्बित कर रहा है।

12.16 प्रयुक्त शब्दावली

शक्ति : शक्ति वह केन्द्र बिन्दु है जो सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक प्रक्रिया, सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक गत्यात्मकता को प्रभावित करती है। सामाजिक सन्तुलन और असन्तुलन की समस्त प्रक्रियाऐं बदलती हुई शक्ति संरचना को केन्द्र में रखकर ही समझी जा सकती हैं।

नेतृत्व : कुछ सामान्य हितों के लिये एक व्यक्ति और समूह के मध्य उनके द्वारा निर्धारित होने वाली स्थिति नेतृत्व कहलाती है।

12.17 अभ्यास प्र"न

1. शक्ति की व्याख्या करने का ढंग है–

(क) राजनैतिक (ख) मनोवैज्ञानिक

(ग) सामाजिक (घ) उपरोक्त सभी।

2. किसने कहा है,'दूसरों की क्रियाओं को नियंन्त्रित करने की क्षमता को ही शक्ति कहते हैं'–

(क) चन्द्र प्रभात (ख) एल0 पी0 विद्यार्थी

(ग) एम0 एन0 श्रीनिवास (घ) हर्टन एवं हण्ट

3. 'लीडर"िाप इन इण्डिया' पुस्तक के लेखक हैं–

(क) एल0 पी0 विद्यार्थी (ख) जे0 बी0 चिताम्बर

(ग) एस0 सी0 दुबे (घ) ए0 आर0 देसाई

4. 'रूरल लीडर"िाप इन इण्डिया' किसका कार्य है–

(क) चन्द्र प्रभात (ख) एल0 पी0 विद्यार्थी

(ग) एम0 एन0 श्रीनिवास (घ) एस0 सी0 दुबे

5. '"ाक्ति का संस्कृति से घनिष्ठ सम्बन्ध है' यह कथन है–

(क) सत्य (ख) असत्य

(ग) भ्रमपूर्ण (घ) कह नहीं सकते

6. योगेन्द्र सिंह ने परम्परात्मक भारतीय गांवों में शक्ति संरचना के कितने आधार बताये हैं–

(क) दो (ख) तीन
(ग) चार (घ) पांच

7. ग्रामीण शक्ति संरचना से सम्बन्धित अध्ययन करने वाले विद्वान हैं–
(क) ए0 सी0 मायर (ख) डेनियल कॉर्नर
(ग) पी0 सी0 जो"ाी (घ) उपरोक्त सभी

8. ग्रामीण नेतृत्व का सामान्य गुण है–
(क) शारीरिक (ख) बुद्धि
(ग) आत्मवि"वास (घ) उपरोक्त सभी

9. ग्रामीण नेता का कार्य है–
(क) समूह का प्रतिनिधित्व करना (ख) योजना बनाना
(ग) प्रबन्धकारी कार्य करना (घ) उपरोक्त सभी

10. 'ि"ाक्षा आजकल ग्रामीण नेतृत्व का आधार है।' यह कथन है–
(क) सत्य (ख) असत्य
(ग) अस्पष्ट (घ) कह नहीं सकते।

12.18 अभ्यास प्र"नों के उत्तर

1. (घ) उपरोक्त सभी 2 (घ) हर्टन एवं हण्ट 3 (क) एल0 पी0 विद्यार्थी 4 (क) चन्द्रप्रभात 5 (क) सत्य 6 (ख) तीन 7 (घ) उपरोक्त सभी 8 (घ) उपरोक्त सभी 9 (घ) उपरोक्त सभी 10 (क) सत्य।

12.19 निबन्धात्मक प्र"न

1. ग्रामीण शक्ति संरचना से आप क्या समझते हैं ? ग्रामीण शक्ति संरचना में आ रहे परिवर्तनों को समझाइये।
2. ग्रामीण नेतृत्व से आप क्या समझते हैं ? ग्रामीण नेतृत्व के सामान्य गुण बताइये।
3. ग्रामीण नेतृत्व की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए ग्रामीण नेता के कार्य बताइये।
4. ग्रामीण नेतृत्व के उभरते हुए प्रतिमानों पर अपने विचार लिखिए।

12.20 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

–चौहान, बी0 आर0, 'ए राजस्थान विलेज' (1967), एसोसिएटेड पब्लि"ांग हाउस, नई दिल्ली।
–खन्ना, बी0 एस0, 'पंचायती राज इन इण्डिया' (1994), दीप एण्ड दीप पब्लिके"ान्स, नई दिल्ली।
–कोठारी, रजनी, 'कास्ट इन इण्डियन पॉलिटिक्स' (1970), ओरिएन्ट लॉंगमैन, दिल्ली।

–मजूमदार, डी0 एन0, 'कास्ट एण्ड कम्यूनिके"ान इन एन इण्डियन विलेज' (1958), एि"ाया पब्लि"िांग हाउस, बॉम्बे।
–मेरियट, मैकिम, 'सो"ाल स्ट्रक्चर एण्ड चेंज इन ए यू0 पी0 विलेज' (1955), इन एम0 एन0 श्रीनिवास (एडि0), इडियन विलेज, एि"ाया पब्लि"िांग हाउस, बॉम्बे।

12.21 सहायक उपयोगी ग्रन्थ

–मेण्डल बाम, डेविड सी0, 'सोसायटी इन इण्डिया' (1970), यूनिवर्सिटी ऑफ ि"ाकागो प्रेस, कर्बले।
–मिल्स, सी0 राईट, 'दि पावर इलीट' (1956), ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क।